❑ नानेश वाणी -44
अखण्ड सौभाग्य

❑ आचार्य श्री नानेश

❑ अक्षय तृतीया, मई 2002, 1100 प्रतिया

❑ मूल्य 30/-

❑ अर्थ सहयोगी श्री साधुमार्गी जैन महिला समिति, नोखा

❑ प्रकाशक
श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ
समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर

❑ मुद्रक
अमित कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिन्टर्स, बीकानेर
दूरभाष 547073

प्रकाशकीय

हुक्मगच्छ के अष्टमाचार्य युग पुरुष श्री नानेश विश्व की उन विरल विभूतियो मे है जिन्होने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से समाज को सम्यक् जीवन जीने की वह राह दिखाई जिस पर चलकर भव्य आत्माएँ अपने कर्मो का क्षय कर मोक्ष की अधिकारिणी बन सकती हैं। यद्यपि आचार्य श्री जी के भौतिक व्यक्तित्व का अवसान हो चुका है तथापि उनके द्वारा चलाये गये विविध अभियानों मे वह सदा ही प्रतिच्छायित होता रहेगा। इस प्रकार उनका वह व्यक्त रूप ही पर्यवसित होकर उस कृतित्व मे समाहित हो गया है जो उनके द्वारा विरचित साहित्य के रूप में उपलब्ध है। एक क्रान्तिदर्शी आचार्य का यह प्रदेय साहित्य की वह अनुपम निधि बन गया है जो सासारिक प्राणियों के लिए प्रकाश स्तम्भ का कार्य करता रहेगा। इस स्तम्भ से विकीर्ण होने वाली प्रकाश रश्मियाँ युगो-युगो तक आलोक धारा प्रवाहित करती रहे, इसके लिए यह आवश्यकता है कि न तो उन साहित्य रश्मियों को क्षीण होने दिया जाये न ही उनकी उपलब्धता बाधित होने दी जाये वरन् आवश्यक यह भी है कि सर्व सामान्यजनो हित उनकी सुलभता सुनिश्चित रखी जाये। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ ने उस अनमोल साहित्यिक धरोहर को 'नानेश वाणी' पुस्तक शृखला के अन्तर्गत प्रकाशित करने का निर्णय किया।

इस सन्दर्भ में बैंगलोर निवासी सुश्रावक श्री सोहनलालजी सिपाणी ने अर्थ सबधी व्यवस्था में जो सद्प्रयत्न किया, वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प्रस्तुत कृति पूर्व मे अखण्ड सौभाग्य नाम से प्रकाशित पुस्तक की नई आवृत्ति है। इस कृति के प्रकाशनार्थ अर्थ प्रदान करने वाले श्री साधुमार्गी जैन महिला समिति, नोखा के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करना भी अपना दायित्व समझता हू।

यद्यपि सम्पादन-प्रकाशन में पूरी सावधानी रखी गई है तथापि कोई भूल रह गई हो तो सुधी पाठको से निवेदन है कि वे हमें अवगत करायें ताकि आगामी सस्करणों में भूल का परिमार्जन किया जा सके।

निवेदक

शान्तिलाल साड

सयोजक

साहित्य प्रकाशन समिति

श्री अ भा सा जैन सघ, समता भवन, बीकानेर

अर्थ सहयोगी परिचय

नानेश वाणी भाग 44 का प्रकाशन श्री साधुमार्गी जैन महिला समिति, नोखा के अर्थ सौजन्य से हो रहा है, जो एक महत्वपूर्ण व स्तुत्य प्रयास है। 23 अक्टूबर 1994 को मद्रास निवासी सुश्राविका श्रीमती उमरावबाई मूथा की अध्यक्षता मे गठित समिति धार्मिक, सामाजिक, जनकल्याणकारी आदि कार्यो मे निरन्तर प्रवृत्त है और इसी पृथक् पहचान है।

प्रारम्भ में महिला समिति स्वधर्मी भाई-बहिनो की आर्थिक सहायता तथा असमर्थ बच्चो की स्कूल फीस देकर सामाजिक क्षेत्र में कार्य किया था तथा 1996 मे बाढ पीडितो के लिए खाना व कपडे उपलब्ध कराने थे। समय समय पर आर्थिक स्थिति से कमजोर मरीजो के लिए दवाईयो की व्यवस्था भी समिति द्वारा की जाती है।

नवम्बर 1998 से श्रीमती भवरी देवी दुगड़ एव पुष्पा देवी काकरिया के योगदान से नागौर के 'वेलफेयर अनाथाश्रम' मे बच्चो के लिए प्रात नाश्ते की व्यवस्था प्रारम्भ की गई थी, जो अधावधि चल रही है। इसमे स्वधर्मी भाई-बहिनो का सहयोग भी प्राप्त हो रहा है तदर्थ समिति आभारी है। इसी क्रम मे उल्लेखनीय है कि गुजरात भूकम्प-पीड़ितो की सहायतार्थ महिला समिति ने भगवान महावीर विकलाग समिति, बीकानेर तथा महावीर इन्टरनेशरल, अहमदाबाद केन्द्र के माध्यम से 21000/- की राशि भूकम्प प्रभावित इलाको मे भेजी।

शिक्षा, चिकित्सा आदि क्षेत्रो के अतिरिक्त बहिनो ने तप,सयम, स्वाध्याय, धर्माराधना मे भी पूर्ण जागृति दिखाई है। पूज्य गुरुदेव के सानिध्य मे श्री ज्ञानमुनि जी म सा की प्रेरणा से अप्रेल 1997 मे नोखा मे तेले का जो क्रम प्रारम्भ हुआ उसे महाश्रमणी रत्ना श्री केशरकवरजी म सा आदि ठाणा की प्रेरणा तथा महिला समिति के प्रयासो ने दो वर्ष तक निरन्तर प्रगतिशील रखा। प्रथम वर्ष तो प्रतिदिन तेले का पच्चक्खाण हुआ एव द्वितीय वर्ष तेले उपरान्त तेले का पच्चक्खाण हुआ।

सम्प्रति महिला समिति की अध्यक्ष-श्रीमती झमकू देवी बोथरा एव मत्री श्रीमती विमला देवी मालू है। पदाधिकारियो एव सदस्याओ की सक्रियता से महिला समिति विकास पथ पर अग्रसर है।

नानेश वाणी क्रमाक 44 के प्रकाशनार्थ प्रदत्त अर्थ सहयोग हेतु सघ श्री साधुमार्गी जैन महिला समिति, नोखा के प्रति आभार ज्ञापित करता है।

बीकानेर

उदय नागोरी

सदस्य-साहित्य प्रकाशन समिति

1

ऐतिहासिक चम्पा नगरी के राज्य वैभव का वर्णन इतिहास के पृष्ठों मे अकित है। महाराजा दधिवाहन इसी नगरी में हुए तो इसी नगरी मे सती चन्दनबाला का जन्म भी हुआ। कई प्रकार के स्वभाव वाले राजा होते हैं, किन्तु चम्पा नगरी के राजा अधिकाशत समता भाव वाले हुए तथा वे राज्य लिप्सा से दूर जनहित के प्रति निष्ठावान रहे। राजा दधिवाहन का स्वभाव भी समता से ओतप्रोत था। जब उनका शत्रु आक्रान्ता बन कर उनके राज्य पर चढ आया, उस समय उन्होने ऐसा आदर्श प्रसग उपस्थित किया कि सब कुछ सुखद बन गया।

इसी परम्परा मे सम्राट चन्द्रसेन हुए। वे राजनीति मे निपुण थे किन्तु धर्मनीति मे वाछित रूप से निपुण नही थे। गृहस्थाश्रम मे रहते हुए मनुष्य अपने मन मे कई प्रकार की कामनाएँ करता है और उनकी पूर्ति की चिन्ता मे लगा रहता है। चन्द्रसेन भी ऐसी ही एक कामना से ग्रसित थे। उनके कोई सन्तान नही थी—इस कारण वे सोचते रहते थे कि जिस प्रकार मेरे पिता ने मुझे राज्य सौंपा, उसी प्रकार मैं भी अपने पुत्र को अपने राज्य का उत्तराधिकारी बनाऊँ, अत सन्तान की नितान्त आवश्यकता है। यह चिन्ता चन्द्रसेन के मन मे निरतर लगी रहती थी, किन्तु चाह से ही सन्तान हो जाय—ऐसा नही है। जब विवाह किये काफी समय गुजर गया और सतान की प्राप्ति नहीं हुई तक चन्द्रसेन का मन अधिकतर खिन्न रहने लगा।

चन्द्रसेन तब यह सोचने लगे कि सतान प्राप्ति के लिए क्या किया जाय ? जिस व्यक्ति को जितना ज्ञान होता है उसी के अनुरूप वह चिन्तन करता है। उनके मन मे विचार उठा कि शायद मेरे ऊपर देवी—देवताओ का प्रकोप है जिसके कारण ही सतान लाभ नहीं हो रहा है। यह सोचकर वे देवी—देवताओ की मनौतिया मानने लगे।

यह सोचने की बात है कि क्या देवी—देवता किसी को कुछ दे सकते हैं ? यदि ऐसा हो सकता हो तो कर्म सिद्धान्त ही विफल हो जाय। व्यक्ति जैसे कर्म करता है, वैसा ही फल उसे मिलता है। ऐसा नहीं होता कि कर्म करे और कोई और फल भोगे कोई। अच्छे और बुरे कर्म करने वाले को ही उनका अच्छा या बुरा फल भोगना पडता है। तब तक चन्द्रसेन सन्तो की सगत मे नहीं गये थे और न ही वीतराग वाणी सुनने का प्रसग आया था, अत वे इधर—उधर मिन्नते करते हुए भटकने लगे।

कई बार बहिनो मे पुरुषो की अपेक्षा भी अधिक जागृति होती है। महाराजा चन्द्रसेन की महारानी भी उनसे अधिक ज्ञानवती एव समतावती थी। वह नियमित रूप से सत्सग मे पहुँचा करती थी, सामायिक का विधि-विधान जानती थी एव कर्म बधन की प्रक्रिया मे भी विश्वास रखती थी कि मनुष्य जैसा कर्म करता है, वैसा ही उसको फल मिलता है।

इस रूप मे महारानी का व्यवहार चन्द्रसेन के लिए हितकर था किन्तु चन्द्रसेन को धर्मनीति तथा सत्सग के विषय मे समुचित ज्ञान नही था। इस कारण महारानी के सद्व्यवहार के बावजूद भी वे महारानी की भर्त्सना करते रहते कि तुम कैसी आई हो कि मेरे आगन मे सतान तक नही आ सकी। मेरे उत्तराधिकारी नही होगा तो मेरे राज्य का क्या होगा ? महारानी तो समता भाव लेकर चलती थी अत वह उत्तर देती कि आप सतान न होने का जो दोषारोपण मुझ पर करते हैं, वह योग्य नही है। आप सतान की प्राप्ति के लिए देवी-देवताओ की मनौतियाँ करते हैं-वह रास्ता भी गलत है। इस तरह आप अपनी आत्मा को विषम बना रहे हैं। देवी-देवताओ की मनौतियो से सतान नहीं होगी।

ऐसी बात सुनकर चन्द्रसेन रुष्ट हो जाते और क्रोध पूर्वक पूछते कि तब सतान कैसे होगी ? महारानी फिर समझाती कि जैसे कर्म होते हैं, वैसा फल मिलता है। अत समभाव मे रहिये और वीतराग वाणी का श्रवण कीजिये। लेकिन महाराजा को महारानी के ऐसे उत्तर से सतोष नही होता। उस दशा मे वे भाग्य को कोसने लगते।

अधिकाश मानव भाग्य को लेकर विक्षुब्ध होते हैं लेकिन वे नही जानते कि भाग्य आखिर होता क्या है ? भाग्य के भरोसे बैठे रहने वाले लोगो को पुरुषार्थी नही माना जाता है और हकीकत मे भाग्य अपने ही द्वारा पूर्व जन्म मे किये हुए कर्मो के अलावा और कुछ नही होता जिनका फल इस जन्म मे प्रकट होता है। इसी प्रकार इस जन्म मे जैसे कर्म किये जाते हैं, वे ही फल की दृष्टि से अगले जन्म का भाग्य बन जाते हैं। सतान नही होती है तो इसे कर्म का फल मानिये अथवा यह भी हो सकता है कि पुरुष या स्त्री मे किसी तरह की शारीरिक कमी हो। किन्तु इस प्रकार के विचारवान महाराजा चन्द्रसेन नहीं थे। वे अक्सर महारानी पर उत्तेजित हो जाया करते थे और जब महारानी धर्माचरण की बात कहती तो वे झिडक देते कि मुझे धर्म नही, सतान चाहिए।

महाराजा के अधिक उत्तेजित हो जाने पर एक दिन महारानी ने कह दिया कि सतान प्राप्ति के सम्बन्ध मे यदि उन्हे मुझ से सतोष नहीं है तो वे दूसरा विवाह कर सकते हैं, उसे कोई आपत्ति नही होगी। महारानी जैसी समभाव मे रहने वाली महिला ही ऐसी अनुमति दे सकती थी और महाराजा को ज्योही ऐसी अनुमति मिली तो उन्होने दूसरा विवाह करने का निश्चय कर लिया।

सयोग की बात है कि महाराजा का दूसरा विवाह भी जल्दी ही हो गया किन्तु दूसरे विवाह से भी उन्हे सतान की प्राप्ति नही हुई। महाराजा को तब तो यह स्थिति शूल की तरह चुभने लगी और वे नई महारानी को भी उलूल–जलूल बाते कहने लगे। आखिर नई महारानी भी क्या करती ? वह रोज उदास रहने लगी। उस समय मे बडी महारानी ने उसे स्नेह पूर्वक सात्वना दी कि चूँकि महाराज को सत्य सिद्धातो को ज्ञान नहीं है अत ऐसी बाते करते हैं किन्तु तुम घबराओ मत और समभाव के साथ रहने की कला सीखो। जैसे मैंने महाराजा को दूसरा विवाह करने की अनुमति दे दी थी, वैसे ही तुम भी उन्हे तीसरा विवाह करने की अनुमति दे दो। फिर जिस समभाव से मैं आनन्दमय जीवन बिता रही हूँ, उसी तरह तुम भी आनन्दमय जीवन बिताओ। पहले तो भीतरी कमजोरी के कारण नई महारानी कुछ ऊची–नीची हुई लेकिन गहराई से समझ पकडने के बाद उसे बडी महारानी की राय पसन्द आ गई।

जब चन्द्रसेन सतान न होने के कारण नई महारानी की भी उत्तेजनापूर्ण भर्त्सना करने लगे तो एक दिन उसने उन्हे तीसरा विवाह करने की अनुमति दे दी। महाराजा भी सतान के लिये पागल से हो रहे थे उन्होने तब तीसरा विवाह भी कर लिया किन्तु दुर्योग की बात कि फिर भी उनके सतान नहीं हुई। इस प्रकार महाराजा चन्द्रसेन ने लगातार बारह विवाह किये, फिर भी उन्हे सन्तान प्राप्त नहीं हुई।

किन्तु बडी महारानी के समतामय जीवन एव व्यवहार का ऐसा सुप्रभाव पडा कि आपस मे सौते होते हुए भी बारहो महारानियॉ परस्पर पूर्ण प्रेमभाव से रहने लगी। उनके आपस मे कभी भी कोई क्लेशपूर्ण परिस्थिति उत्पन्न नही होती थी।

कई व्यक्ति सोचते हैं कि हमारे जो सन्तान होगी, उसे ही अपना उत्तराधिकारी बनायेगे, किन्तु यह कल्पना मिथ्या है। राजा का बेटा ही राजा

बने–यह कोई आवश्यक नही है। योग्य व्यक्ति जनता मे से भी आकर उत्तराधिकारी बन सकता है। ऐसी कई ऐतिहासिक घटनाएँ भी हैं। किन्तु यह सिद्धान्त महाराजा चन्द्रसेन की समझ मे नही आ रहा था। सासारिक कामनाओ के माध्यम से विषमता मे पड जाना तो आसान होता है लेकिन समभाव की साधना करके उस विषमता से निकल जाना आसान नही होता है। चन्द्रसेन की बडी महारानी समभाव साधना की विधि जानती थी। वह अपने जीवन को शल्य रहित बनाकर चल रही थी। उसकी ही समभाव साधना का असर था कि ग्यारहो छोटी महारानिया भी समभाव की साधना के कारण सुखमय जीवन व्यतीत कर रही थी।

जब अपने रनिवास की ऐसी सुखद स्थिति और ऐसा आनन्दमय वातावरण महाराजा चन्द्रसेन के ध्यान मे आया तो वे विचार मे पड गये। वे आश्चर्य करने लगे कि मैं एक राज्य का राजा कहलाकर और सिहासन पर बैठ कर दडादेश देते हुए भी जब राज्य की व्यवस्था करता हूँ तब भी कई प्रकार की अव्यवस्थाएँ तथा विषमताएँ पैदा हो जाती हैं परन्तु सौते कहलाकर भी बारहो महारानियाँ जिस सुख और आनन्द के साथ जीवन बिता रही हैं, उसके पीछे कौनसी शक्ति काम कर रही है ? राजा के पास तो सेना होती है, शस्त्र होते हैं और दडशक्ति होती है फिर भी अशान्ति पैदा होती रहती हे। इसी अपेक्षा भी बारह पत्नियो के परिवार को सभालना ज्यादा कठिन रहता हे। किन्तु चन्द्रसेन के विस्मय का पार नही था कि उसके बिना सम्भाले ही उसका परिवार एकता और शान्ति के साथ कैसे चल रहा है ? तब उन्होने इसकी बारीक छानबीन करनी शुरू की।

यह बडी महारानी के समभाव का जादू था कि उस राज–परिवार की महारानियाँ तो ठीक लेकिन नोकर चाकर भी सद्भाव के साथ चल रहे थे। सद्भाव से सद्भाव उत्पन्न होता हे–यह बडी महारानी अपनी साधना के बल पर भलीभाति जानती थी। वह नौकरो को भी तुच्छ भाषा से नही, बल्कि भाई कहकर पुकारती थी नोकरानियो को बहिन का सम्बोधन देती थी। सोचिये कि एक महारानी नाकर–नोकरानियो को भाई ओर बहिन कहकर पुकारे तो उनका सद्भाव क्या नही उभर कर ऊपर आ जाए ? वे दौडकर सेवा मे निरत रहते थे ओर अपने सद्भाव का सद्भाव पूर्ण प्रतिफल पाते थे। इस प्रकार उस राज परिवार मे बडी महारानी की प्रेरणा से स्वर्ग जेसा सुखद दृश्य बना हुआ था। वह महारानी चतुर थी। वह सोचती थी कि समभाव की सामायिक को छोटे घर मे बन्द नहीं रखना चाहिये, बल्कि उसे दूर–दूर तक बाटते रहना

चाहिये। अत वह परिवार के अलावा अन्य स्त्रियो को भी एकत्रित करती और समतामय जीवन की शिक्षा देती। वह उन्हे समझाती कि यह जीवन पत्ते पर पडी हुई ओस की बूँद के समान है जो तब तक ही चमकती है जब तक कि हवा का झोंका उसे नीचे नहीं गिरा देता है। इस कारण इस जीवन की चमक को नष्ट होने से पहले ही अधिक प्रकाशमान बना लेना चाहिये। इस प्रकार बडी महारानी अपनी समता का अधिकाधिक विस्तार कर रही थी और अधिकाधिक जीवनो मे शान्ति तथा आनन्द का सचार कर रही थी।

महाराजा चन्द्रसेन ने इस सारी परिस्थिति की जानकारी ली तो वे भी इस सौम्य वातावरण से एव बडी महारानी की समभाव साधना से प्रभावित हुए बिना नही रह सके। उनकी तब तुरन्त ही बडी महारानी का सत्सग करने की इच्छा हुई। वे वहॉ पहुँचे और पूछने लगे कि राज परिवार की ऐसी सुखद व्यवस्था का क्या रहस्य है ? तब बडी महारानी ने गीत–सगीत के माध्यम से राजा की जिज्ञासा का उत्तर दिया।

बडी महारानी ने महाराजा चन्द्रसेन को सामायिक के सही विधि विधान की जानकारी दी और बताया की विधिपूर्वक की जाने वाली सामायिक से जीवन मे समता रस उतर आता है और जिसका जीवन समता रस से ओत–प्रोत बन जाता है वह जन–मन का प्रिय तथा मगलकारी हो जाता है। सन्त व सतियों के दर्शन को प्रियकारी तथा मगलकारी क्यो समझा जाता है ? इसीलिये कि सन्तजन मोह, माया एव तृष्णा का परित्याग करके समभाव की साधना में चल पडते हैं। इसीलिये भगवान् ने चार शरण बताये हैं—अरिहन्तो का शरण सिद्धो का शरण साधु का शरण एव दयामय धर्म का शरण, जिनकी शरण मे पहुँचने से जीवन के सद्गुणो का सरक्षण होता है।

महाराजा चन्द्रसेन की पटरानी भी ऐसा ही सद्गुणमय जीवन लेकर चल रही थी जिसने अपने दीपक की लौ से सारे राज–परिवार रूपी दीपकों को प्रज्वलित कर दिया था। बचा था तो एक दीपक–महाराजा स्वय जो प्रज्वलित नहीं हुआ था लेकिन तब वे प्रज्वलित होने की दिशा मे अवश्य अग्रसर होने लगे थे। वे अपनी ही पटरानी की साधना को समझने की चेष्टा कर रहे थे।

समता की साधना करने वाला व्यक्ति दुनिया को भी समता ओर साधना ही सिखाता है। जो व्यक्ति विषमता के दल–दल मे फसा हुआ होता है वह दूसरो को भी ममत्व भाव की ओर ही मोडता है। पटरानी होते हुए

भी वह धर्ममय महिला पूरी सादगी से रहती थी, स्नेह व आदर से बोलती थी और प्रत्येक को अपने मिष्ट व्यवहार से प्रसन्न कर देती थी। वह अपने जीवन मे राजसी पद अथवा वैभव को कोई महत्त्व नही देती थी। वह स्वय समता रस का पान करती थी और अपने सान्निध्य मे आने वाले सभी को समता रस का पान कराती भी थी।

चारो ओर समतामय जीवन के विस्तार को देखकर ही महाराजा अपनी पटरानी के प्रति पुन प्रभावित होने लगे थे। वे पटरानी से पूछना चाहते थे कि राज परिवार की व्यवस्था मे इतनी सुखद निपुणता केसे समा गई हे ? वे पटरानी से इसका रहस्य समझ कर सत्सग मे जाने का भी विचार करने लगे।

इसकी शिक्षा जनहितकारी, लेनी है हर बार।
कैसे आई इतनी निपुणता, पूछ रहे नर नार।।
जनमन प्यारी, मगलकारी
समता जग मे है सुखकार।

महाराजा सोचने लगे कि मैं किसी का स्वामी हू—यह अभिमान व्यर्थ है। मैं अपनी महारानियो का तो अपने आपको स्वामी मानता ही हू लेकिन क्या यह भी सच है ? असली स्वामिनी तो बडी महारानी है जिसने अपने आदर्श जीवन से सबका आध्यात्मिक एव मानसिक रूपान्तरण कर दिया है—ऐसा रूपान्तरण जो बडा कठिन होता है। स्त्रिया स्वभाव से ही राग–रग की प्रेमी होती हैं तथा सौन्दर्य प्रसाधनो के प्रयोग को चाहती हैं किन्तु बडी महारानी ही पूरी सादगी से नही रहती, बल्कि उसने सभी पर सादगी का पवित्र रग चढा दिया है। वे गहरे विचार मे डूब गये कि जब राज–परिवार मे सभी बडी महारानी का अनुसरण कर रहे हैं तो भला मैं ही उससे वचित क्यो रहू ? पहले मैं उससे यह तो पूछू कि सबके जीवन मे यह मोड कैसे आया ?

एक दिन पुन महाराजा अपनी बडी महारानी के कक्ष मे पहुँचें। महारानी ने उनका यथोचित स्वागत किया तथा उन्हे एक आसन पर बिठा कर वह कुछ दूर बैठ गई। महाराजा आश्चर्य करने लगे कि वह उनसे दूर क्यो बैठी है ? कारण महारानी की नैतिकता से सम्बन्धित था। एक बार जब नाशवान पदार्थो का ममत्व छूट जाता है और ब्रह्मचर्य व्रत अगीकार कर लिया जाता है, तब ससर्गगत नियमो की अनुपालना भी अनिवार्य हो जाती है।

महारानी भी उसी नैतिकता के पथ पर आगे बढ रही थी। महाराजा इस कारण को नही समझ पाये और विचार करने लगे कि जब वे महारानी को विवाह कर लाये थे तब उसकी मेरे प्रति दृष्टि और ही थी और आज वह दृष्टि ओर ही दिखाई दे रही है–ऐसा क्यो हे ? इस महिला मे इतना ज्ञान इतनी चतुराई और इतनी आत्मशक्ति कहाँ से आ गई है ?

महाराजा ने विस्मय के साथ प्रश्न किया– महारानी जी मैं क्या कहू ? महारानी जी शब्द भी कहना मुझे अच्छा नहीं लगता है क्योकि आज मुझे समझ मे आया है कि आप मेरे साथ उस रूप मे सम्बन्धित नहीं रही हैं। मैं आपसे पूछना चाहता हू कि नारी जाति की सदस्या होते हुए भी आपने अपने आपको विषय–विकारो से दूर करके समता रस मे कैसे रग लिया है ? क्या आप मुझे इसका रहस्य समझावेगी ? मैं अब भी विषमता मे झूल रहा हू, ओर सन्तान प्राप्ति की लालसा मे दु खी हो रहा हू, लेकिन चाहता हू कि मैं भी समता की दिशा मे आगे बढ़ू। आप सबको समता का उपदेश दे रही हैं तो क्या मुझे भी ऐसा उपदेश देकर कृतार्थ नही करोगी ?

महारानी महाराजा का ऐसा कथन सुनकर मन ही मन गद्‌गद् हो उठी और हर्षातिरेक मे बोलने लगी– 'स्वामी, आप यह क्या बोल रहे हैं ? मैं तो साधारण नारी हू। यह तो आपका बडप्पन है जो आप आज मुझे इतना अधिक महत्त्व प्रदान कर रहे हैं। मैं सोचती हू कि इस मनुष्य तन मे रहते हुए मुझे नाशवान पदार्थो के पीछे अभिमान करने की आवश्यकता नहीं है। आप मुझ से प्रश्न क्यो पूछते हैं ? आप तो राजाओ के भी स्वामी हैं और मैं आपको बताऊ भी क्या ? आप तो राजाओ के भी स्वामी हैं और मैं आपको बताऊ भी क्या ? यह समता मेरी देन नहीं, महात्माओ की देन है। इसलिये मैं आपसे नम्र अनुरोध करना चाहूगी कि आप सन्तों का सत्सग करे तथा समता के रहस्यो का ज्ञान ले। में सन्तों के पास जाती रहती हू और वीतराग वाणी का श्रवण करती रहती हू और वीतराग देवो के उपदेशो पर आचरण करके ही मनुष्य तन मे रहते हुए प्राणी सदा के लिये शान्ति प्राप्त कर सकते हैं।

महाराजा ने सकल्प प्रकट किया कि अब वे सन्तो के सत्सग मे अवश्य पहुचेगे किन्तु उस समय उन्होने महारानी से ही जीवन विकास के उपायो पर प्रकाश डालने का अनुरोध किया।

महारानी ने नम्रता से उत्तर दिया– 'राजन् इस साधना का प्रारम्भिक उपाय है विधिवत सामायिक करना। मैं प्रतिदिन विधिवत सामायिक करती

हू और आनन्द विभोर हो जाती हू। उसके बाद मेरा मन अपार शान्ति से भर उठता है, तब मैं उस शान्ति को दूसरो मे भी बाटने का पावन कार्य आरम्भ कर देती हू।

परम स्फूर्तिदायक उत्साह से परिपूरित होकर महारानी अपनी समभाव साधना का विस्तार से विश्लेषण करने लगी—"जब आन्तरिक शान्ति के प्रभाव से मस्तिष्क शान्त होता है, तभी मनुष्य प्रियकारी, मगलकारी तथा लोक हितकारी बाते सोचता है और उन पर दृढतापूर्वक आचरण करने के लिये कटिबद्ध हो जाता है। उस समय उसका मस्तिष्क कषाय तथा विषय–विकार की ओछी एव स्वार्थी बातो से ग्रस्त भी नही होता है। किन्तु जब भीतर मे शान्ति नहीं होती तो बाहर भी शान्ति नहीं रहती है और अशान्त मस्तिष्क जल्दी ही कषाय तथा विषय–विकार के लपेटे मे आ जाता है। रावण सरीखे तीन खण्ड के अधिपति का भी जब मस्तिष्क विकृत हो गया तो वह सीता जेसी पवित्र नारी को हर कर ले गया। अत राजन्, भीतर मे शान्ति की मौजूदगी बहुत जरूरी है और वह सामायिक की साधना से ही प्राप्त हो सकती है। यही नही, मनुष्य के प्रत्येक कार्य तथा समाज के प्रत्येक क्षेत्र मे शान्ति की परम आवश्यकता होती है। आप सम्राट हैं और यदि आप अशान्त रहते हैं तो क्या राज्य व्यवस्था सुचारू रूप से सचालित की जा सकती है ? इसलिये आप प्रतिदिन कुछ समय निकाल कर सामायिक की साधना आरम्भ कर दीजिये और सन्तो का सत्सग भी कीजिये, फिर देखिये कि आपके जीवन मे कितनी परम शान्ति और कितना दिव्य आनन्द पैदा हो जाता है।'

महाराजा ने महारानी का उपदेश बहुत ही ध्यान से सुना और वे मन ही मन सकल्प लेने लगे कि वे अब सामायिक की साधना के लिये अवश्य समय निकालेगे, सन्तो की सगत भी करेंगे तथा अपने जीवन का भी श्रेष्ठ रूपान्तरण होने देंगे। नये सकल्प के साथ गभीर बनते हुए महाराजा ने महारानी से कहा कि ऐसा उपदेश पहले क्यो नहीं सुनाया ताकि वे अपने जीवन मे पहले ही परिवर्तन ले आते। महारानी ने कहा कि अवसर आने पर ही कोई भी कार्य सम्पन्न होता है।

महाराजा के विचार बदले तो उनके जीवन म बहुत बडा परिवर्तन आ गया। पहले वे सन्तान क अभाव म भाग्य को दोष देते अथवा देवी–देवताओ की मनौतियॉ मनाते या महारानियों पर अपनी उत्तेजना बरसाते। परन्तु अब व सोचने लगे कि भाग्य तो मेरे अपने ही हाथ का खिलोना है—मैं अपने भाग्य

को जेसा बनाऊगा वैसा ही वह बनेगा। वास्तव मे जब दृष्टि बदल जाती है तो उसके लिये सारी सृष्टि भी बदल जाती है। ससार मे कोई भी व्यक्ति सभी को सतुष्ट नहीं कर सकता किन्तु दृष्टि बदल कर अपने मन को तो शान्ति से ओतप्रोत बना ही सकता है। अशान्ति सर्वत्र दु ख पैदा करती है तो शान्ति सुख ही सुख।

महाराजा चन्द्रसेन ने तब निश्चय किया कि अब वे महारानी के उपदेश के अनुसार ही चलेंगे तथा उसके सम्बन्ध मे कोई कुछ भी कहे तब भी उस पर वे कोई ध्यान नहीं देगे। वे बार–बार चितन करने लगे–"मैं अजर अमर चैतन्य देव का ध्यान करूगा। मैं अपने भाग्य का स्वय निर्माता बनूँगा। अब मेरी दृष्टि बदल गई है तो अपनी सारी सृष्टि को भी समता रस का पान कराऊँगा। सत्सग करके अपने जीवन में श्रेष्ठ परिवर्तन लाऊगा। ऐसा करके मैं अपनी प्रजा के समीप जाने का प्रयास करूगा और उसके दु ख हरूगा ताकि प्रजा का प्यार मुझे मिले। अपने आत्मीय भावो से समग्र जनता की सेवा करूगा। अपने सम्पूर्ण राजसी अभिमान को त्याग कर छोटे से छोटे प्रजाजन के साथ भी मैं एकमेक हो जाऊगा। अपने जीवन को समर्पित कर दूँगा '

इस चिन्तन के साथ ही एक नया परिवर्तन महाराजा के अन्तर्मन में जाग उठा।

आज के युग मे भी क्या राज चलाने वालों का मन कभी जागता है ? पुराने जमाने मे जब राजा लोग थे तब तो यह कहा जाता था कि राजा लोग प्रजा के साथ अन्याय व अत्याचार कर रहे हैं, लेकिन आज क्या वस्तुस्थिति चल रही है ? इसके बारे में मैं क्या कहूँ ? क्या आज के शासक सम्राट् चन्द्रसेन की तरह परिवर्तित हो सकते हैं अथवा वे राजमद मे चूर रह कर ही चल सकते हैं ? जनता जैसी है, वैसी ही रहे लेकिन हमारा सिहासन सुरक्षित रहना चाहिये–क्या ऐसी भावना नेताओ की नहीं है ? क्या ये नेता दिखाने के लिए ही जनता के सुख–दु ख की बाते नहीं करते हैं अथवा क्या उनके दिल मे सच्ची भावना भी रहती है ? किन्तु चन्द्रसेन महाराजा अब अपना सब सुख–दु ख भुलाकर जनता के सुख–दु ख का ही पूरा ध्यान रखने लगे।

महाराजा के इस जीवन–परिवर्तन से उनके राज्य की समग्र जनता भी प्रभावित होने लगी। जनता का विचार और जनता का चाल–चलन उसके साथ ही बदलने लगा लोग सोचने लगे कि महाराजा पहले कैसे थे और अब

ऐसा शुभ परिवर्तन कैसे आ गया है ? जनता की रुचि भी जागने लगी कि राजा की तरह ही वे भी अपने–अपने जीवन मे ऐसा सुखकारी परिवर्तन लाने का प्रयास करे।

दृष्टि परिवर्तन के लिये आदर्श भी प्रकाश स्तभ का कार्य करता है किन्तु उसके साथ–साथ तत्त्वो तथा सिद्धान्तो का ज्ञान भी आवश्यक हो जाता है जिनको आधार बना कर लाये गये परिवर्तन को स्थायित्व दिया जा सकता है। सोचिये कि मानव तन मे रहते हुए आपकी दृष्टि कैसी बने ? यदि आपको दृष्टि शाश्वत तत्त्व की तरफ मुड जाती है तो वह नाशवान तत्त्वो की तरफ नही जाएगी। कारण तब सुख की अनुभूति की दिशा ही बदल जाती है। बडी महारानी ने अपनी दृष्टि बदली तो राज परिवार की दृष्टि बदली और उसने जब स्वय महाराजा की दृष्टि बदली तो समग्र जनता की दृष्टि बदलने लगी।



2

दृष्टि बदलती है तो सृष्टि बदल जाती है और विचार बदलते हैं तो आचार भी बदलता है।

महाराजा चन्द्रसेन विषमता का रूप लेकर चल रहे थे। वे सोचते थे—यह राज्य मेरा है, इसका वैभव मेरा है तथा इसका अधिकार मेरा है। ममत्व भाव उन के माथे पर छाया हुआ था। इस तथ्य का भी उनके मन मे बडा मोह था कि जैसे मैं सम्राट हूँ, वैसे ही मेरा पुत्र भी सम्राट् बने और इसी कारण वे सन्तान की कामना से चिन्तित रहा करते थे। ये विचार उनके मन मे उस समय नहीं उठा करते थे कि न यह राज्य मेरा है और न यह सत्ता और सम्पत्ति मेरी है। वे यह भी नही सोचते थे कि यदि मेरे सन्तान नहीं है तो न सही—जनता मे से ही किसी योग्य व्यक्ति का चयन करके अपने राज्य की सत्ता उसी को सौंप दूगा। उस समय तो उनकी अपने राज्य एव अपने अधिकार के प्रति गहरी आसक्ति थी।

किन्तु पटरानी ने जब से उनका मानस बदल डाला है—वे और के और हो गये हैं। महाराजा ने सन्तो की समीपता भी प्राप्त की तथा सामायिक के स्वरूप को आन्तरिकता के साथ समझा। आज की मानसिकता मे वे सोचते थे कि यदि ऐसा परिवर्तन पहले आ गया होता तो वे राज्य और सन्तान की आसक्ति मे इतने लिप्त कभी नहीं होते। अब तो सामायिक की आराधना और समता भावना का पावन रस उनके इस अन्त करण मे इतना घुल गया है कि उनके इस परिवर्तन की कीर्ति राजप्रासाद और राजपरिवार तक ही सीमित नही रही बल्कि समाज और राज्य की सीमाओ तक प्रसारित होने लगी।

चन्द्रसेन सोचते कि यह परिवर्तन कितना व्यापक रूप ले रहा है ? इस सब का श्रेय बडी महारानी को है, जिन्होने मेरे कोप को भी सद्भावना के साथ सहन किया और जब मुझे प्रभावित करने का अवसर आया तो उस शुभ कार्य को भी बडी ही निपुणता के साथ पूरा किया। महाराजा के मन मे यह विचार उठा कि दृष्टि—कोण के इस परिवर्तन को अधिकाधिक व्यापक रूप दिया जाना चाहिए।

तब उनकी भावना दो रूपो मे बहने लगी। एक तो यह कि विचारों के परिवर्तन के साथ वे अपने आचार को भी परिवर्तित करे। दूसर इस नय दृष्टिकोण के अनुसार ही राज्य की नीति तथा व्यवस्था मे भी परिवर्तन लाये जाये।

भावना प्रवाहित हुई तो उसके साथ ही महाराजा की कर्मण्यता भी जागृत हो गई। सबसे पहले आचरण की दृष्टि से उन्होंने अपने जीवन मे आमूलचूल परिवर्तन कर दिया। उनके मन मे तत्परता जागी कि परिवर्तन के इस योग का लाभ उठा कर अपनी शक्तियो को आत्म–शुद्धि के लिए जुटा देना चाहिए। इसलिए उन्होने अपनी धारणाओ के आधार को ही बदल डाला। अब वे यह मानने लगे कि राज्य उनका नही है और न ही उस पर अधिकार भी उनका ही है। वे राज्य के एक ट्रस्टी मात्र हैं तथा इस दृष्टि से राज्य के हित मे वे जितना विवेक, सदाशय और श्रम लगा सकते हैं–लगा कर जनसेवा का उन्हे आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए। उन्होने सकल्प किया कि मुझे सारे कार्य नैतिकता के साथ करने चाहिए, किन्तु कोरी नैतिकता जिसके साथ लौकिकता जुडी रहती है हितावह नही हो सकती, अत उसके साथ धार्मिकता का पुट होना चाहिये।

महाराजा ने राज्य व्यवस्था के प्रति इस तरह एक नये दृष्टिकोण का विकास किया कि नीति केवल लौकिकता के साथ जुड कर प्राण विहीन न हो जाय। इसलिये नीति धर्म के साथ जुडना चाहिये। नीति और धर्म के सयोग से ही प्राणवान् क्रियाशीलता का प्रसार हो सकेगा।

धर्म और नीति के पारस्परिक सम्बन्ध भी एक ऐसा विषय है जिस पर सभी को बारीकी से विचार करना चाहिये। नीति और धर्म को एक नहीं मान सकते हैं। नीति और है तो धर्म और है। सफलता के लिए दोनो का सहयोग अवश्य ही लाभकारी सिद्ध होता है।

नीति की विवेचना करे तो उसका बहुत कुछ अर्थ लौकिकता के रूप मे लिया जाता है। इस दृष्टि से नीति का अर्थ माना जाता है लेन–देन का सम्बन्ध–इस हाथ से ले और उस हाथ से दे। आप समझते हैं कि मेरा पडौसी मेरे सुख–दु ख के समय मे मेरे काम आवे तो उसके लिये आप भी पडौसी की आवश्यकता के समय सेवा करने की तत्परता दिखाते हैं। इसके साथ ही यदि आपने पडोसी की सेवा की और आपके वह काम नही आया तो आप शायद सोच लेते हैं कि मैं भी अब उसके काम नहीं आऊगा। यह जो आदान–प्रदान का मामला है, उसे ही आप नीति कहते हैं। जब आदान–प्रदान का सम्बन्ध टूट जाता है तो दोनो पक्षो की पारस्परिक नीति भी टूट जाती हे। इसका यही कारण होता है कि उस नीति के साथ धार्मिकता का पुट नही होता हैं। लोग जव मात्र नीति को ही धार्मिकता समझ लेते हैं, तब उसका परिणाम विपरीत आता है। यह कैसे होता हे ?

आज दुनिया नीति और धर्म को अलग–अलग समझती है। किन्तु जहॉ–जहॉ नीति को ही धर्म समझ लिया गया है, वहॉ–वहॉ विपरीत परिणाम सामने आये हें। बहिने कभी–कभी धार्मिकता के कारण दान करती हैं और मुनियो को गोचरी बहराने को भी ये दान का ही एक रूप मानती हैं। वे यह भी समझती हैं कि यदि वे सावधानी रख कर बेहराती हैं तो उसका शुभ फल उन्हे मिलेगा और यदि सावधानी टूटती है तो उससे हानि होती है। साधु तो परिपूर्ण अहिसा के व्रतधारी होते हैं तथा सावद्य योग के परिपूर्ण त्यागी। अब सोचें कि यदि कोई बहिन साधु को शुद्ध आहार बेहराने की बजाय उनके निमित्त से तैयार करके आहार बनावे तो उसमें धार्मिकता नहीं मानी जाएगी। इसका एक उदाहरण समझ ले। एक सन्त के आयबिल था सो वैसे आहार के निमित्त वे गोचरी को गये। महाराज को आता देख बहिन जल्दी रसोईघर मे घुसी और उसने चट सारे फुलके घी से चुपड लिये। फिर वह महाराज को बेहराने लगी तो सन्त ने कहा कि उन्हें तो लूखा फूलका चाहिये। तब बहिन बोल उठी–मुझे लूखा फुलका भाता नहीं है और अगर मैं आपको लूखा फुलका बेहराऊँगी तो आगे मुझे भी लूखा फुलका ही मिलेगा। अब उस बहिन के ऐसे विश्वास को क्या कहेंगे–धर्म कहेंगे या नीति कहेंगे ?

सोचे कि कोई व्यापारी व्यापार करता है। उसको कहा जाय कि मैं तुम्हे इतने रुपये देता हूँ, तुम मुझे वापिस चुका देना। यह नीति है। और यह कहा जाय कि मैं इतने रुपये दे रहा हूँ, तुम मुझे अगले जन्म मे इतने ही रुपये वापिस दे देना। यह कैसा विचार है ? जहॉ धर्म नीति से जुड जाता है, वहॉ सोने मे सुहागा हो जाता है। पडौसी दूसरे पडौसी की सेवा करता है और अगर यह सोचता है कि बिना किसी स्वार्थ के मैं सेवा कर रहा हूँ–वह [illegible] दु ख–दर्द मे काम आवे या नहीं, मैं तो अपना धर्म समझ कर उसकी [illegible] कर रहा हूँ तो ऐसे स्थान पर समझिये कि नीति पर धर्म का पुट [illegible] है–वहॉ मात्र लेन–देन की भावना नहीं रही है। वह बहिन [illegible] बेहराते समय यदि इतना ही सोचती कि शुद्ध आहार [illegible] सयम–साधना मे सहायता कर रही हूँ तो वहॉ नीति [illegible] माना जाता।

धर्म का प्राण मिल जाने से नीति [illegible] आत्म–शुद्धि का कारण भी बन जाती है। [illegible] है कि नीति और धर्म दोनो को साथ [illegible] है कि साधु ठडा और बासी आहार [illegible]

गये उडद के बाकले वापिस किस जन्म मे मिले ? वे तो उसी जन्म मे मोक्ष पधार गईं। साधु के आचार मे समझौते का सवाल कभी पैदा नहीं होता है।

महाराजा चन्द्रसेन की भी ऐसी ही परिस्थिति थी। जब तक उनको सही दृष्टिकोण नही मिला तब तक वे अपने अशुद्ध विचारो के साथ ही चल रहे थे किन्तु जब पटरानी ने उनकी दृष्टि बदल दी तो वे धर्म और नीति का सम्यक् रूप से ताल–मेल बिठाने लगे। सत् सगति से ही उनको यह दृष्टि मिली थी जिसकी उपमा चन्दन वृक्ष से दी जाती है। चन्दन का वृक्ष जो भी उसकी समीपता मे आता है उसे अपनी सुगध और शीतलता प्रदान करता है। सन्तो के सान्निध्य मे जाना आरभ करके अब महाराजा चन्द्रसेन भी सत्सगति के अनूठे लाभ लेने लगे। इन अनूठे लाभो से सबसे बडा लाभ था समता के समरस का स्वय आस्वादन करना और उसका आस्वादन जो भी सम्पर्क में आवे अथवा अपने से सम्बन्धित हो, उन सबको कराना। महाराजा का मन समता के अनुभव से एकमेक होने लगा।

जिन पुरुषो ने समता की साधना मे प्रवेश किया है, उन पुरुषो की दृष्टि भी पूर्ण रूप से समतामयी बनी और उस समता दृष्टि के अनुरूप ही उनका समग्र व्यवहार भी ढला है। यही चन्द्रसेन के साथ भी हुआ। जब उन्होने समता का स्वरूप नहीं समझा था तब तक भिन्न–भिन्न व्यक्तियो के साथ भिन्न–भिन्न अवसरो पर उनका भिन्न–भिन्न व्यवहार होता था। उसके पीछे यह दृष्टि रहती थी कि जो मेरे मन के अनुकूल चलता है उसके साथ अच्छा व्यवहार किया जाय, अन्यथा मेरे प्रतिकूल चलकर कोई भी मेरे से अच्छे व्यवहार की अपेक्षा कैसे रख सकता है ? इस दृष्टि को प्रभावी बनाने के लिए उनके पास सत्ता का बल था, शक्ति और सेना का बल था। परन्तु उस दृष्टि के साथ राज्य व्यवस्था सुचारू रूप नहीं ले पा रही थी। इसका अनुभव उन्हे तब हुआ जब उनकी दृष्टि बदल गई–भेद की दृष्टि समता की दृष्टि बन गई। उनका व्यवहार जब समभाव पर आधारित होने लगा तो सारा वातावरण ही बदल गया।

समता दृष्टि ने चन्द्रसेन की सम्पूर्ण राज्य व्यवस्था में एक सुखकारी परिवर्तन ला दिया। और यह परिवर्तन आया स्वय अपनी पटरानी के समभावी जीवन को देखकर। पटरानी के पास सत्ता, शक्ति या सेना का कोई बल नहीं था, फिर भी वह सबसे आदर सम्मान पाती थी। यही नहीं, उसने राजपरिवार की व्यवस्था को जो सुचारू रूप दिया था वह अनुकरणीय था। चन्द्रसेन ने जब इस सुचारू जान लिया तो वे भी समभाव का अभ्यास

करने लगे और राज्य की सम्पूर्ण व्यवस्था तथा अपने समस्त व्यवहार को भी समता पर आधारित करने लगे। इसका वास्तव मे उन्हे लाभ मिलने लगा। पहले जहा उनकी सैन्य बल के आधार पर दूसरो को अत्याचार और परतन्त्रता देकर अपने राज्य का विस्तार करने की दुरिच्छा रहती थी, वह अब अब नहीं रही। वे अब स्नेह, मित्रता और सद्भाव मे विश्वास करने लगे। समता की दृष्टि ने ही उनकी समता को भी समाप्त कर दिया अत अब वैभव सचय की उनकी लालसा नहीं रही। अब तो उनका यह चिन्तन चलने लगा कि वे अपने सद्भाव और सहयोग से कितना अधिकाधिक लोक कल्याण साध सकते हैं ? उनके जीवन ने एक नया मोड ले लिया।

महाराजा चन्द्रसेन ने निश्चय कर लिया कि उनके राज्य की नीति अब विस्तारवादी नहीं रहेगी और जितना राज्य वर्तमान मे उनके अधीन है उसके नागरिको के साथ भी भय, आतक और प्रताडना की नीति नही चलेगी।

विस्तारवादी नीति की प्रतिकृति प्राचीन काल में भी देखी जा सकती थी और वर्तमान काल मे भी देखी जा सकती है। अधिकाश व्यक्ति विस्तारवादी नीति को मानने वाले हुआ करते हैं। ये अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए दूसरो पर आक्रमण करके उन्हे अपने अधीन बना लेते हैं। उन्हे अधीन बना कर इतना अशक्त कर दिया जाता है कि वे उनके अधिकार से बाहर न निकल सके। प्राचीनकाल मे भी दोनो नीतिया प्रचलित थीं--जन हितकारी नीति भी और विस्तारवादी नीति भी। रामायण को देखे तो जहा राम जन--हितकारी नीति के सचालक थे वहाँ रावण विस्तारवादी नीति का अनुसरण करता था। विस्तारवादी नीति के बल पर ही उसने अपना अपार वैभव जोडा तथा विषय--वासना के साधन इकट्ठे किये। इसी नीति का फल था कि उसके राज्य मे चारो ओर विषमता थी। इस विषमता ने ही उसे राक्षस बनाया। जो सब कुछ अपने ही लिये रखे उसे ही तो राक्षस कहते हैं। ऐसे राक्षस कहा करते हैं--मेरा है सो मेरा है, तेरा भी मेरा है।

इस तरह विस्तारवादी नीति होती है विषमता की नीति ममत्व की नीति जो मन के विकारो का ताडव मचा देती है। क्या आजकल भी इस तरह की नीति दिखाई देती है अथवा नहीं ? सत्ता पद और धन को प्राप्त करने के उपायो मे आज भी विस्तारवादी नीति किस प्रकार खुल कर खेल रही है--यह आप लोगो के सीधे अनुभव का अधिक विषय है। सभी लेना ही लेना चाहते हैं छोडने के नाम पर कोई कुछ भी छोडना नहीं चाहता। राम और रावण का अन्तर आज भी चल रहा है जिसे समतावाद के साथ ही मिटाया

जा सकता है।

महाराजा चन्द्रसेन के जीवन मे पहले जहाँ रावणपन की वृत्ति थी, वहाँ अब रामपन की झलक निखर आई थी। ऐसा रूपान्तरण कैसे सभव हुआ ? यह पटरानी के पावन सहयोग तथा उनके अपने दृढ सकल्प से सभव हुआ। महाराजा ने सोच लिया कि वे भौतिक सम्पत्ति की तृष्णा के स्थान पर ऐसी आध्यात्मिक सम्पत्ति का विकास करेगे जिसके कारण उनकी अपनी प्रजा भी उनको बडे सम्मान से दीर्घकाल तक याद करती रहेगी।

चन्द्रसेन कितने रूपान्तरित हो गये, उन्होने अपने जीवन मे कितना परिवर्तन कर दिया ? वे क्या थे और क्या बन गये ? ऐसा सुपरिणाम किसका होता है ? निश्चय ही सुसगति का, सासारिकता का सम्पूर्णत जो त्याग करके साधना मार्ग पर चलते हैं, उनकी छाया के ससर्ग का भी सुप्रभाव पडता है। ऐसे साधको की सगत मे आने वाले व्यक्ति के जीवन मे शुभ परिवर्तन आये बिना नही रहते। पहले का निर्दयी जीवन भी तब दयावान और मधुर बन जाता है।

कोयल को तो आप जानते होगे। क्या वह किसी को कोई आघात पहुचाती है ? पक्षी होकर भी वह कितनी निर्लिप्त होती है ? वह समता का सिद्धान्त पढी हुई नही होती, किन्तु इतनी चतुर होती है कि अपने अण्डे वह कौए के घौंसले मे देती है। कौवी उसे अपने अण्डो के साथ सेती रहती है और जब पक्षी बाहर निकलते हैं तब वह पहिचानती है कि अमुक पक्षी उसके नही है। वह फिर उन्हे मारने की चेष्टा करती है तो कोयल उन्हे बचा लेती है। कोयल का स्वर मधुर होता है और उसको सब चाव से सुनते हैं, जबकि कौए के कर्कश स्वर को कोई बर्दाश्त नहीं करना चाहता है। एक बार कोयल स्वर्ग मे चली गई तो वहाँ उसकी मधुर वाणी से सभी देव बहुत खुश हुए और उसे एक रत्नहार दे दिया। फिर पूछा कि तुम कहाँ से आई हो ? कोयल ने कहा कि वह पृथ्वी से आई है तो देवता पृथ्वी की सराहना करने लगे। कोयल वापिस लोट आई और कौए ने जब उसका वृत्तान्त सुना तो वह भी स्वर्ग मे पहुँचा आर काव-काव करने लगा। तब देवो ने उसका तिरस्कार किया। उसे भी पूछा कि वह कहाँ से आया है ? कौए ने कहा कि वह पृथ्वी से आया हैं। तब देवता आश्चर्य करने लगे कि 'कितनी सहनशीला है पृथ्वी जो कोयल को भी पालती है और कौए को भी ? यह एक रूपक है।

तो सोचिये कि वह पृथ्वी समभावी है या विषमभावी ? क्या पृथ्वी से शिक्षा लेकर अपने समभाव का विकास नही किया जा सकता है ? सामायिक की शुद्ध आराधना देव नहीं कर सकते, मनुष्य ही कर सकते हैं। इसी कारण देवता भी मनुष्य जीवन को प्राप्त करने की अभिलाषा रखते हैं। महाराजा चन्द्रसेन समभाव का विकास करके अपने मनुष्य जीवन को सफल बना रहे थे। जब जीवन मे जीवन का परिवर्तन होता है तो मनुष्य जिन विचारो में पला पोषा होता है, उनके स्थान पर नये विचारो का जन्म होता है और उस दृष्टि से उसका वह नया जन्म हो जाता है। जब मनुष्य का लक्ष्य बदलता है तो उसकी श्रद्धा का केन्द्र भी बदल जाता है। सम्राट चन्द्रसेन जब अपने ही सुख की चिन्ता कर रहे थे तब उनके राज्य की स्थिति समीचीन नही थी। लेकिन उनमे जब परिवर्तन शुरू हुआ तो उनका सोच अपने से हटकर जनता की तरफ हो गया। उसके बाद उस सोच से जो जनहितकारी कार्य महाराजा ने प्रारम किए तो वे जनप्रिय हो गये। जनता तब उन पर अपने प्राण निछावर करने लगी। चन्द्रसेन का भी चूकि विचार बदल गया था अत जनता के प्रेम से वे भी आनन्दित होने लगे। जनप्रेम उनके लिये शान्ति का स्त्रोत बन गया।

कहा गया है कि यथा राजा तथा प्रजा। अत जब राजा की नीति श्रेष्ठ बन जाती हे तो नैतिकता की दिशा मे प्रजा भी अग्रगामी हो जाती है। सन्त लोग इसके लिये एक रूपक देते हैं। एक राजा बड़ा ही दुष्ट था। उसकी नीति बहुत बुरी थी। वह निरपराघ प्राणियो के जीवन से खेला करता था और हिसक कार्यो मे लगा रहता था। एक बार शिकार के निमित्त वह एक घनघोर जगल मे पहुंच गया। उसका घोडा इतनी तेजी से भाग रहा था कि उसे रूकाने के लिए भी तरकीब सोचनी पडी। एक वृक्ष की झुकी हुई शाख को उसने जब पकड लिया तो वह भागते हुए अपने घोडे से अपना पिड छुडा सका। राजा शाखा से नीचे उतरा और इधर–उधर रास्ता ढूढने लगा। वह एक किसान के खेत पर पहुँच गया। उसे जोर की प्यास लगी हुई थी। वह सोचने लगा कि कहीं से रस्सी और लोटा मिल जाय तो कुए से पानी खींच कर अपनी प्यास बुझा ले। तभी उसे एक अस्सी वर्ष की बुढिया दिखाई दी। उसने उससे कहा कि वह रस्सी–लोटा हो तो उसे दे–वह बहुत प्यासा है। बुढिया के पास रस्सी–लोटा तो नही थे। वह खेत में गई और एक गन्ना उखाड लाई। उसने उसका रस हाथ से निचोड कर राजा को पीने के लिये दिया। राजा उसे पीकर तृप्त हो गया। तब राजा के मन मे यह दुष्ट विचार जागा कि किसान इतनी इच्छी फसल लेते हैं और उसे बहुत कम टैक्स देते

हैं। उसने बुढिया से पूछ कर पता कर लिया कि वह खेत उसके ही राज्य का था। राजा ने राजधानी पहुँच कर पहला काम यह किया कि किसानो पर टैक्स बढा दिया। अरसे बाद फिर ऐसा सयोग बैठा कि राजा जगल मे भटक कर फिर उसी खेत पर पहुँच गया। तब भी वह बहुत प्यासा था। वही बुढिया उसे मिली। तब बुढिया चार गन्ने लाई फिर भी उतना रस नहीं निकला कि राजा पूरी तरह से तृप्त हो सके। राजा ने इस अन्तर का कारण जानना चाहा तो बुढिया ने बेबाक कहा कि राजा बदनीयत हो गया तो प्रकृति ने भी अपना फल बदल दिया, बाकी हमारा श्रम तो उतना ही लग रहा है। राजा ने यह सुना तो उसकी चेतना जागी और उसने यथा राजा तथा प्रजा की उक्ति का सार समझा।

आज राजाओ का जमाना तो चला गया। अब जनता के चुने हुए प्रतिनिधि शासक हो गये हैं। यदि जनता के प्रतिनिधियो की भावना जनता के प्रति अच्छी होती है और जनता के दु ख–सुख मे वे सहायक बनते हैं तो जनता भी उनके लिए पलक पावडे बिछाती है। लेकिन यदि नेता की भावना क्रूर और स्वार्थ भरी होती है तो जनता की श्रद्धा भी उसे नहीं मिलती है एव न ही वह शान्ति की नीद ले सकता है। आप किसी भी नेता को पूछिये कि उनको शान्ति की नींद क्यो नहीं आती है और फिर उनके उत्तर को सुनिये।

चन्द्रसेन को जब तक पटरानी का शुभ सहयोग नही मिला तब तक उनके प्रति जनता के विचार कैसे थे और जब उनमे परिवर्तन आ गया तो वे जनप्रिय बन गये और शान्ति की नीद सोने लगे। अब उनकी विचार धारा चलने लगी कि मेरे पास धन है, वैभव है और सत्ता है तथा मैं अपनी शुभता मे भी आगे बढ रहा हूँ। ऐसे समय मे मुझे क्या करना चाहिये ? महारानी ने मुझे अच्छा मार्ग बताया है, वह मेरी परम उपकारी है। मुझे सन्तो का लाभ दिलाने का श्रेय भी उसी को है। कई बार बहिनो की प्रेरणा से भाइयो का जीवन बदलता है। बीकानेर मे श्रीश्रीमालजी कभी सन्तो के समीप नहीं जाते थे किन्तु उनकी धर्मपत्नी ऐसी निष्ठावान आई कि उसकी प्रेरणा से वे सन्त समागम मे रम गये। चन्द्रसेन भी न सिर्फ सन्तो की सगत मे आने–जाने लगे बल्कि सत्सगति मे सराबोर हो गये। परिणाम–स्वरूप उनकी साधना अति सुदृढ बनने लगी। उनके पास भौतिक सुखो की कमी नहीं थी–एक पुत्र ही नहीं था, किन्तु पुत्र के लिये भी अब उनकी आसक्ति बहुत कम हो गई थी। लेकिन इस अभाव के कारण उनकी प्रजा में अवश्य खिन्नता का वातावरण बना हुआ था।

यह जनता की खिन्नता महाराजा के लिए कष्टदायक हो रही थी किन्तु स्वय की सन्तान–लालसा नहीं। उनके मन मे यही आ रहा था कि मैं जनता के साथ समभाव से कैसे रहू ? मैं स्वय दुख सह सकता हूँ, किन्तु जनता को कष्ट में नहीं देख सकता हूँ। इस भावना के साथ उनकी जनता के प्रति आत्मीयता प्रगाढ हो जाती है और जनता उन्हे अपना हृदय–सम्राट मानने लगती है।

समता की साधना करके चन्द्रसेन अब जनवत्सल और जन–वल्लभ हो गये थे। यह जनमत बन गया कि चन्द्रसेन जैसा समभावी नायक मिलना बहुत कठिन है।

विचार करे कि जो समता–भाव की साधना करता है, उसका वर्तमान जीवन भी कितनी गहराई से प्रभावित होता है। वहा कुछ लोग ऐसे थे जिन पर उस जीवन का कोई प्रभाव नहीं पडा। कई व्यक्ति एक ही बात को भिन्न–भिन्न दृष्टियो से देखते हैं–चाहे वे प्रकट रूप मे अपनी विरोधी दृष्टि को जाहिर न करे किन्तु उनके मन मे वह बात उभरती अवश्य है कि अमुक व्यक्ति साधना कर रहा है, फिर भी दुख पा रहा है। उसे पेट भर खाने को भी नहीं मिलता, जबकि अमुक पाप करने वाले मजे उडा रहा है। किसी अविचारी ने तो यह तुकबदी भी करदी–करो पाप खाओ धाप और करो धरम फूटे करम। ऐसा कहने वाले तो मिलते हैं मगर इसका अर्थ करने वाले नहीं मिलते। समता एक धर्म है–सिर्फ मानव के लिये ही नहीं बल्कि प्राणी मात्र के लिये। समता साधना करने वाला वर्तमान जीवन मे दुख पा रहा है तो यह उसके पूर्वजन्म के कर्मो का फल है। इसी तरह पूर्व जन्म के पुण्य हैं तो उनका शुभ फल इस जन्म में पाप करने वाले को भी मिलता है। जब पुण्योदय समाप्त हो जायेगा तो उसके बाद उसकी दशा बिगडेगी ही। इसका आध्यात्मिक विधि से यही समाधान है कि समता की साधना करने वाले व्यक्ति के पूर्व जन्म के अशुभ कर्म टूटते हैं। कहा है–

एक घडी आधी घडी आधी मे पुन आध।
तुलसी संगत साधु की कटे कोटि अपराध।।

समता की ऐसी ही साधना के बल पर चन्द्रसेन जनता के वल्लभ बन गये थे। सत्संग से जब उन्हे ज्ञान मिला तो वे सोचने लगे कि सन्तान हो तो क्या और नही हो तो क्या–अपने अमूल्य जीवन को इस चिन्ता से विद्रूप नहीं बनाना चाहिये। यह अमूल्य मानव जीवन चिन्तामणि रत्न के समान है। किसी

को चिन्तामणि रत्न मिल जाय और वह उसका शिला पर चटनी बाटने मे उपयोग करे तो उसे क्या कहा जाएगा ? उस चिन्तामणि रत्न का तो फिर भी मूल्य हे, किन्तु यह मानव जीवन तो अमूल्य होता है, अत उसका श्रेष्ठ साध्य की प्राप्ति हेतु साधन रूप सदुपयोग ही करना चाहिये—यह चन्द्रसेन ने मन ही मन निश्चय कर लिया था।

किन्तु जन समुदाय के मन मे एक तरह की खिन्नता और जिज्ञासा उभर रही थी। लोग सोच रहे थे कि किसी दिन जब ये महाराजा नही रहेगे तो चूकि इनके कोई सन्तान नही है अत पता नहीं कि किस स्वभाव वाला शासक इस राज्य व्यवस्था की बागडोर सभालेगा। कुछ समझदार लोगो ने अपना यह मत जाहिर किया कि अगर इन्ही महाराजा के सन्तान हो जाये तो भविष्य मे ऐसा ही शासक हमे मिल सकेगा। कारण, सन्तान मे अपने माता—पिता तथा वश—परम्परा के सद्गुणो का अवश्य ही समावेश होता है। चन्द्रसेन जेसे सममावी एव जन हितकारी महाराजा तथा समतामय जीवन की अनुगामिनी महारानी की सन्तान अवश्य ही उनके इन गुणो के अनुरूप होगी, बल्कि कभी पुत्र अपने पिता से भी आगे बढ जाता है। जनता के इस विचार के साथ निश्चय किया कि उनके प्रतिनिधियो का एक शिष्टमडल महाराजा चन्द्रसेन की सेवा मे पहुँचे तथा उनके सन्तान होने की शुभ कामना व्यक्त करे।

इस निश्चय के साथ विशिष्ट नागरिको का एक शिष्टमडल महाराजा की सेवा मे पहुँचा। महाराजा ने भी शिष्टमडल के सदस्यो को आदर सहित बिठाया और पूछा कि उन्होने किस निमित्त से कष्ट किया है ? महाराजा ने यह भी कहा कि उन लोगो ने यह कष्ट क्यो किया ? अगर जनता का कोई कार्य होता तो आप मुझे वहीं बुला लेते—मेरा जीवन तो जनसेवा हेतु समर्पित है। महाराजा का यह कथन सुनते ही सबका हृदय गद्गद् हो गया। महाराजा ने फिर कहा—आप किस समस्या के समाधान हेतु यहाँ आये हैं ? किसी भी वस्तु की कमी हो या अन्य कोई अभाव हो तो मैं कष्ट उठाकर भी उसकी पूर्ति जनता के लिए करना चाहूगा। आप अपना मतव्य बताव।

शिष्टमडल के नेता ने उत्तर दिया—राजन् आप जिस हार्दिकता से [illegible] कर रहे हैं वैसी अवस्था मे जनता को किस अभाव का कष्ट हो [illegible] ? हम तो अपनी एक भावना आपके समक्ष व्यक्त करने के लिए आये [illegible] कि आपके जैसा ही महान् सममावी शासक हमे भविष्य [illegible]। हमारी इस भावना की सफलता के विषय मे आपके विचार—विमर्श [illegible] हम आपकी सेवा मे उपस्थित हुए हैं। हमारी अभिलाषा है

कि आपका पुरुषार्थ सफल हो तथा आपको पुत्र रत्न की प्राप्ति हो जो हमारा आप जैसा ही महान् शासक भविष्य मे हो सके।

महाराजा चन्द्रसेन ने समझाया—आप भद्रिक लोग हैं और आपकी भावना अच्छी है। मैं भी सन्तान की कामना रखता था अत एक—एक करके मैंन बारह विवाह किये फिर भी सन्तान नहीं मिली तो यह कर्म फल के अधीन है। आप लोग भी सन्तो के ससर्ग मे जावे तो ज्ञात हो जायेगा कि कर्म फलानुसार ही ऐसी प्राप्तियाँ होती हैं। सन्तो के पास अगर आप एकाधिक बार जायेगे तो आप को जीवन के कई रहस्य समझ में आ सकेगे। सम्राट् की बात सुनकर शिष्टमडल आशान्वित हुआ। तभी सम्राट ने मन ही मन यह निर्णय लिया कि सन्तान प्राप्ति का कोई भी ऐसा प्रयास वे नहीं करेगे जिससे उनकी सामायिक की साधना पर आच आती हो या किसी प्रकार की मिथ्या—दृष्टि प्रकट होती हो। शिष्टमडल अपनी भावना व्यक्त करके चला गया, और महाराजा भी अपनी साधना मे सुखपूर्वक तन्मय रहने लगे।

प्रकृति प्रत्येक परिस्थिति मे अपना प्रभाव दिखाती है। शीतकाल के बाद ग्रीष्मकाल की उष्णता प्रकट होती है, लेकिन वही जब तापतप्त कर देती है तो वर्षाकाल एक नवीन सुखमय आशा को जन्म देती है—मनुष्य के जीवन को शीतलता और धरती को धन की समृद्धि प्रदान करता है।



3

समय एक सा नही रहता। राजा और प्रजा की नीति एव धर्म मे जब उच्चता व शुद्धता का स्तर विकसित होता है तो उसका प्रभाव भी समय पर पडता है। यो परिवर्तन समय का धर्म होता है। महाराजा चन्द्रसेन यही सोच रहे थे कि उनके जीवन मे जिस शुभ परिवर्तन का उदय हुआ है, उसका श्रेय धर्म को ही दिया जा सकता है। धर्म ने ही उनके विचार बदले और विचार बदले तो आचार बदला। जब उनके जीवन का आचार बदला तो समूची राज्य व्यवस्था की नीति और व्यवहार ही बदल गया। उनके हृदय मे यह सत्य गहराई से पेठ गया कि दृष्टि बदली तो सृष्टि बदली।

महाराजा का जीवन सामायिक की साधना से ओतप्रोत हो चुका था। पहले सन्तान प्राप्त न होने के कारण उनका मन चिन्तित रहा करता था परन्तु समता की आराधना के साथ ही उनकी वह चिन्ता समाप्त हो गई। इस चिन्ता को समाप्त करने मे सन्तो का निमित्त मिला। उन्होने सन्तो से जीवन का वास्तविक स्वरूप समझा और तत्त्व दृष्टि का ज्ञान किया। फिर वे प्राप्त ज्ञान पर चिन्तन किया करते। इसी चिन्तन धारा मे उन्हे विदित हुआ कि इस नाशवान शरीर से शुभ या अशुभ जो भी कार्य किये जाते हैं उनसे कर्मो का सयोग जुटता है। जो कर्म निकाचित होते हैं, उनका तो फल भोगना ही पडता है अन्यथा अन्य कर्मो से छुटकारा पाया जा सकता है। इस चिन्तन के साथ चन्द्रसेन ने विचार किया कि सन्तान प्राप्ति के लिये चिन्ता नहीं की जाय, किन्तु पुरुषार्थ भी करते रहे। कर्त्तव्य और पुरुषार्थ की दृष्टि से सलग्नता रखते हुए जो भी भविष्य हो उसे स्वीकार कर ले। ऐसे चिन्तन के साथ ही महाराजा ने जैसे अपने मन को आज्ञा दे दी कि उसे सन्तान प्राप्ति की चिन्ता मे [illegible] रहने की जरूरत नहीं है—वह अपनी सारी सक्रियता प्रजा के हित मे नियोजित कर दे। उनका मन साधना के प्रभाव से पक्का आज्ञाकारी बन चुका था इसलिये वह आज्ञानुसार मुडकर कार्यरत हो गया।

सकेगा। मत्री की बात सुनकर महाराजा ने आश्वासन दिया– मैं आपकी बात पर चिन्तन करूगा लेकिन सासारिकता युक्त विषय वासना की भावना के साथ नहीं बल्कि तब जब निर्मल बुद्धि के साथ धर्म साधना मे बैठूगा। धर्माराधना का प्रारम्भ सामायिक से होता है अत उस समय ही व्यवस्थित मन से आपकी बात पर विचार करूगा।

अगले दिन प्रातकाल महाराजा को जनता और मत्री की भावना का ख्याल आया और तभी सामायिक की साधना करने का भी। किन्तु पहले बहिर्गमण करने की उनकी इच्छा हुई ताकि शुद्ध वायु का सेवन किया जा सके। वे अपने उद्यान की तरफ चले गये। वहा कुछ समय तक घूमते रहे और सामायिक करने की भावना से पुन प्रासाद की ओर चल पडे।

उसी रात्रि को अच्छी वर्षा हो गई थी अत राजभवन जाते हुए मार्ग मे महाराजा को एक किसान दिखाई दिया जो हल–बैलो के साथ बीज बोने के लिए अपने खेतो की तरफ जा रहा था। किसान के साथ उसका पुत्र भी था मानो वह अपने पिता से कृषि का व्यावहारिक शिक्षण लेने के लिये जा रहा हो। किसान ने जब राजा को देखा तो एक बार वह राज–दर्शन से प्रसन्न हुआ किन्तु दूसरे ही क्षण उसका मन खिन्न हो उठा।

कृषक खिन्नता मन मे आई एक दु स्वप्न के कार।
घर पर लौटा पुत्र साथ मे करता विचित्र विचार।।
जन मन प्यारी मगलकारी
समता है जग मे सुखकार।

किसान के मन मे आई खिन्नता का एक कारण था। वैसे तो राजा उसके लिये पिता तुल्य थे किन्तु उसका विश्वास था कि जब वह बीज बोने के लिये जा रहा है और सामने पुत्रहीन पुरुष मिल जाय तो वह शुभ फल का सकेत नही है। इस विचार से ही उसका मन खिन्नता से भर गया था। वह सोचने लगा कि वह बारह महीनो के जीवन–निर्वाह के साधन रूप खेती की शुरूआत करने के लिये जा रहा है सो यह शकुन ठीक नही हुआ।

कर लेते हैं। कई बार इस तरह की विचारणा से मानसिक रोग तक हो जाते हैं। कही बिल्ली के रास्ता काट लेने से पुरुषो का पौरुष घट जाता है सो सोच लेते हैं कि काम नही होगा। कदाचित् सामने विधवा बहिन मिल जाय तब भी आप अपशकुन मानते हैं। क्या ऐसी धारणा भी अच्छी है ? विधवा बहिन तो ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करती है और तपस्या करते हुए शुद्ध जीवन बिताती है भी उसके सामने आने को अपशकुन मानना अज्ञान नही तो और क्या है ? सामने चरित्रहीन सधवा मिल जाय सो तो शकुन अच्छा और सच्चरित्र विधवा मिल जाय सो शकुन खराब–कैसी विचित्र बात है ? यह अज्ञान का ही नमूना है।

शकुन खराब हुआ है– यह मानकर वह किसान अपने पुत्र तथा बैलो को लौटा कर खेत पर पहुँचने की बजाय वापिस अपने घर मे चला गया। ज्यो ही किसान घर की ओर लौटा, महाराजा की दृष्टि उस ओर चली गई। महाराजा विचार मे पड गये कि हर्षित मन से बीज बोने के लिए जा रहा यह किसान इस तरह खिन्न होकर वापिस घर को क्यो लौट पडा है, जबकि सामने से सिवाय उसके अन्य कोई भी व्यक्ति नही आया है ? और यदि यह किसान मुझे ही देखकर वापिस लौट चला है तो इसका कुछ न कुछ रहस्य अवश्य होना चाहिए। महाराजा के मन मे तरह–तरह के विचार उठने लगे।

महाराजा उद्यान से लौटकर राजभवन पहुँचे और सामायिक की साधना मे बैठ गये। किन्तु हमेशा जिस विधि से उनके मन की एकाग्रता सधती थी, वैसी एकाग्रता उस दिन नहीं सध रही थी। मन स्थिर नही हो रहा था और बार–बार यही बात उठ रही थी कि वह किसान बीज बोने के शुभ कार्य हेतु जाते हुए उसे देखकर वापिस क्यो लौट पडा ? हार थक कर महाराजा ने अपनी बुद्धि को आज्ञा दी कि वह इस घटना के रहस्य का पता लगावे। तब बुद्धि ने उन्हे परामर्श दिया कि इसका रहस्य जानने के लिए किसी गुप्तचर को किसान के पास भेजना चाहिए। सामायिक पूर्ण करके महाराजा ने इस बात का पता करने के लिए और किसान को बुला कर लाने के लिए एक गुप्तचर को किसान के पास भेज दिया।

गुप्तचर किसान के पास पहुँचा और उससे बोला–तुम्हे महाराज बुला रहे हे। सो मेरे साथ चलो। महाराजा के बुलाने की बात सुन कर किसान का मन आशकित हो उठा। उसके मन मे सुबह वाली बात ही घूम गई और यह शका जागी कि शायद उसके इस तरह से लौटने को महाराज ने अपना

अपमान समझ लिया हो। अब महाराजा के सामने यदि मैं सच्ची बात कह दूगा तो मेरा क्या हाल होगा ? अब उसे शकुन की बात सोचकर अफसोस होने लगा। उसका मन अशात हो गया।

किसान के मन मे भय और कायरता का एक साथ प्रवेश हुआ कि न जाने महाराजा उसे कैसा दड देगे ? मनुष्य का मन जैसा कातरता से आतकित होता है वैसे वीरता से उत्साहित भी। जब मन मे वीरता के भाव आते है तो मनुष्य सच्चाई के साथ आगे बढता है और कायरता के आतक से उसका मन बुझ जाता है। यही नहीं, शारीरिक शक्ति तक ठडी पड जाती है। सुना होगा कि यकायक चोर को घर मे घुसा हुआ देखकर नीद से जगा व्यक्ति इतना घबरा जाता है कि उसकी जीभ हकला जाती है और बोली तक नही निकलती। शरीर का ऐसा हाल मन की स्थिति के अनुसार बनता है। किसान धर्म सकट मे पड गया कि सच बोले तो बुरा और सच नही बोले तो क्या बोले ? मन की कायरता से वह किसान हतप्रभ सा हो गया।

जब गुप्तचर ने किसान को महाराजा के सामने उपस्थित किया तो वह थर–थर काप रहा था। महाराजा ने उसे देखा और बडे प्रेम से पूछा–भाई आज सुबह जब खेत पर बीज बोने के लिये जाते हुए तुम्हे मैं सामने मिला तो तुम अपने घर को वापिस क्यो लौट पडे–इसका कारण मुझे समझ मे नहीं आया इसीलिए मैंने तुम्हे बुलाया है। इसमे डरने की कोई बात नही है। जिस प्रश्न से किसान बुरी तरह से डर रहा था वही प्रश्न जब उसके सामने खडा हो गया तो वह दिग्भ्रमित सा खडा ही रहा। कई लोग ऐसी परिस्थिति पैदा हो जाती है तो झूठ बोलकर गलत उत्तर देने की चेष्टा करते हैं यह सोचकर कि सामने आये हुए सकट को टाल ले। कई बार गलत उत्तर देने का तय करने के पहले पुन भय सताता है कि एक झूठ बोलकर न जाने उन्हे कितनी बार झूठ बोलना पडेगा और इस झूठबाजी मे कहीं न कहीं फसने का फदा तैयार हो ही जाएगा। तब यही मन बनता है कि सच बोले बिना छुटकारा नही है। महाराजा के वचनो की मधुरता ने भी किसान को प्रभावित किया और इस तरह उसने सच बात ही कह देने का निश्चय किया। फिर भी मन धडका और डरते डरते बताया।

किन्तु उसी समय मुझे याद आया कि एक आवश्यक वस्तु मैं घर पर ही भूल आया हू अत उसे लेने के लिये मैं वापिस घर की तरफ लौटा। किसान का यह उत्तर सुन कर महाराज मन्द–मन्द मुस्कुराने लगे।

चन्द्रसेन महाराजा का मन सामायिक की साधना के कारण रौद्रता त्याग चुका था। कोई अपराध भी होता तब तक भी उन्हे क्रोध नही आता। यहॉ तो अपराध जैसी कोई बात भी नही थी, फिर भी किसान को झूठ बोलते देखकर उन्हे हसी आ गई। वे मन मे समझ रहे थे कि किसान भयवश ही सच बात को छिपा रहा है। झूठी बात सुनकर भी महाराजा की मधुरता कम नहीं हुई, बल्कि उन्होने कोमल शब्दो मे फिर किसान से पूछा–भाई, तुम निर्भय रहो और सत्य बात कहो। तुम सत्य तथ्य को झुठलाओ मत। आवश्यक वस्तु लेना भूल गये थे, तो वह वस्तु तुम पुन घर से खेत जोतने क्यो नही गये ? फिर आवश्यक वस्तु तुम अपने पुत्र को भेजकर भी तो मगवा सकते थे। इसलिये जिस कारण से तुम मुझे देखकर वापिस लौटे, उसका स्पष्ट विवरण बताओ। किसी तरह का सकोच मत करो। लगता है कि वहॉ से घर लौटने के पीछे तुम्हारे मन मे कोई और बात थी जिसको तुम मेरे सामने प्रकट करने से सहम रहे हो।

महाराजा अधिक मधुरतापूर्वक कहते गये–भाई, तुम मुझे आत्मा के समान ही लग रहे हो। तुम स्वय सोचो कि घर से आवश्यक वस्तु लाने का क्या तुम बहाना मात्र नही बना रहे हो ? तुम अपने भीतर की बात को मुझ से छिपाओ मत। तुम्हारे मन मे शायद दड का भय होगा लेकिन तुम यह नही सोचते कि एक झूठ बोलकर सत्य को छिपाने के लिए कितने झूठ बोलने पडते हैं फिर भी सत्य नहीं छिपता है। झूठ बोलने से जीवन ही बरबाद होता है।

चन्द्रसेन ने किसान को सत्य भाषण के लिये पूरी तरह आश्वस्त किया और समझाया–तुम तो धरती पर अपना पसीना बहा कर धान पैदा करते हो और सबका पालन करते हो। तुम्हारे तो मन मे झूठ का ख्याल भी नही आना चाहिए। किसान के मुह से तो सदा सत्य ही निकलना चाहिये। राजनेता ही अधिकतर ऐसा असत्य भाषण करते हैं। इसी कारण उनकी कथनी और करणी मे एकरूपता मुश्किल से ही मिलती है। क्या तुम नही जानते कि जब जीवन मे सत्य के टुकडे किये जाते हैं तो सारा जीवन ही असत्य मे डूब कर कलकित हो जाता है। इसके सिवाय भी यदि तुम्हारे मन मे राजदड का भय होतो म उसे दूर कर देना चाहता हू। तुम सच–सच बात बता दो–चाहे वह

चोरी भी होगी। तुम्हे किसी तरह का दड नही दिया जायेगा।

किसान ने महाराजा की सारी बात बडे ध्यान से सुनी। उसकी आत्मा भी जागृत थी। जब वह राजदण्ड के सम्बन्ध मे आश्वस्त हो गया तो उसने मन ही मन निश्चय किया कि वह महाराजा को सत्य बात ही बता देगा क्योकि ऐसे दयावान राजा के सामने व्यर्थ ही झूठ बोलना उचित नही है।

किसान पढा-लिखा नही था किन्तु बुद्धिशाली था और शुद्ध हृदय वाला भी था।

कितना ही पढा-लिखा विद्वान् होशियार और चतुर व्यक्ति क्यो न हो उसकी चतुराई काम नही आती, किन्तु बिना पढे लिखे, पर सहृदय व्यक्ति से अन्तर की बात खुलवा लेना ज्यादा मुश्किल नही होता है। किसान सोचने लगा कि मै सच्ची बात नही बताऊँगा तब भी महाराजा अपने गुप्तचरो से सच्ची बात का पता करा लेगे इसलिये सच्ची बात का अब छिपाने मे सार नही है।

महाराजा चन्द्रसेन के सामने भी एक समस्या पैदा हो गई-उनके मन के किसी कोने मे छिपा बैठा चोर जैसे उचक-उचक कर मुह निकाल रहा हो। किसान ने उनकी उलझन को बहुत बढा दी थी और वे उसको सुलझा लेना चाहते थे बशर्ते कि उसका कारण स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया जाय।

किसान ने तब स्पष्ट रूप से सही बात कह देना ही उचित समझा। उसने कहा-राजन् आप बुरा नही माने तो मै सत्य-सत्य निवेदन कर दूँ। राजा ने पूरा आश्वासन दिया, तब वह बोला-मै अपने पुत्र व बैलो को लेकर खेत जोतने के लिये जा रहा था-वह मेरे परिवार के लिये पूरे वर्ष भर के निर्वाह का प्रश्न था और तभी आप सामने से पधार रहे थे। तब तक मुझे कोई भी अपने सामने नही मिला था अतः पहला पहला आपका सामना होने से मेरे

किसान कहता गया—महाराज, जैसे कोई व्यापारी कमाने के लिये परदेश जाता है तो प्रस्थान के समय शुभ शकुन देखता है, वैसे ही हम किसान भी वर्ष भर की पैदावार के निमित्त से जब खेत जोतने जाते हैं तो शुभ शकुन की प्रतीक्षा करते हैं। शकुन अच्छा होने पर हम कल्पना करते हैं कि पैदावार बहुत अच्छी होगी तथा हमारे परिवार का जीवन सुखी रहेगा। इसके विरूद्ध यदि उस समय अपशकुन हो जाय तो उसे हम इष्टकारी नहीं समझते और वैसी दशा मे उस दिन को बेकार करके वापिस घर को लौट जाना ही उचित समझते हैं।

अग्रिम रूप से क्षमा याचना करते हुए किसान ने नम्रतापूर्वक कहा—मैं उस समय शकुन का विचार ही मेरे मस्तिष्क मे यह उठा कि आप नि सन्तान हैं याने कि फलहीन। अत फलहीन को सामने पाकर फल की आशा कैसे रखी जा सकती है ? फल से निराश होकर फल के लिये श्रम का श्रीगणेश करने के लिये फिर जाना निरर्थक ही था।

महाराजा द्वारा अभयदान देने के फलस्वरूप ही किसान उनके सामने अपने भीतर की बात स्पष्ट रूप से रख गया। महाराजा ने अपने ही विषय की अपितु निन्दात्मक पक्ष की बात भी ध्यान से सुनी। पहली बार यह मान्यता उनकी जानकारी मे आई कि सन्तानहीन व्यक्ति का शुभ काम के लिये जाते हुए किसी के सामने पड जाना अपशकुन माना जाता है। इतनी कडवी बात सुनकर भी वे रूष्ट नहीं हुए।

महाराजा की यह कैसी सहनशीलता थी ? आपके सामने यदि इस प्रकार का कोई प्रसग आ जाय तो शायद उत्तेजना आए बिना न रहे। कहा जाता है कि काने को भी काना कहकर नही पुकारना चाहिए क्योंकि काने को भी काना पुकारा जाना अच्छा नही लगता है। किन्तु जो साधक सामायिक का अभ्यासी बन जाता है, वह सहनशीलता का भी धनी हो जाता है। जब तक समता का समरस महाराजा ने नहीं पिया था, तब तक वे ऐसी बात को—बात को तो क्या विचार तक को अपना अपमान समझते थे, लेकिन समभावी बनने के बाद किसान की ऐसी स्पष्ट बात मुख पर ही कही जाने के उपरान्त भी महाराजा शान्तचित्ती ही बने रहे। इस रूप मे उनकी सामायिक का व्यावहारिक प्रभाव झलक रहा था।

समता से दूर मनुष्य जब तक ममता में ही उलझा रहता है तो उसे अपनी भौतिक कामनाओं के सम्बन्ध मे प्रफुल्लता या खिन्नता का अनुभव

होता है तथा मानापमान की भावना के साथ राग-द्वेष की प्रबलता प्रकट होती है। किन्तु जब सामायिक की नियमित साधना के साथ मन पर नियन्त्रण साधा जाता है तो भौतिक कामनाओ के सम्बन्ध का सम्पूर्ण व्यवहार ही तुच्छ लगने लगता है, बल्कि स्वय उन कामनाओ के परित्याग का सकल्प बन जाता है। वैसी मन स्थिति मे न किसी का सम्मान मन को लुभाता है और न ही किसी के अपमान से विक्षुब्धता उत्पन्न होती है। चन्द्रसेन भी ऐसी समतामयी मन स्थिति मे विचरण कर रहे थे। आप भी जरा सा अपने-अपने मन मे ध्यान ले कि आप कितने वर्षो से बराबर सामायिक की साधना करते हुए चले आ रहे हैं ? किन्हीं को 40 तो किन्हीं को 50-60 वर्ष तक भी व्यतीत हो गये होगे तो क्या कोई यह बतावेगे कि मन मे समता का समरस कितनी गहराई तक उतर गया है ? समभाव की स्थिति कितनी परिपुष्ट हुई है ? यह आपके ही चिन्तन का विषय है। आपका क्रम ऐसा समझ मे आता है कि सामायिक करके आप उठे और दुकान पर पहुँचे। वहाँ आपको किसी मुनीम की भूल दिखाई दी तो उस समय मे एक तरफ तो आपका मन कहेगा कि सामायिक करने के बाद क्रोध करना उचित नहीं है किन्तु दूसरी ओर धन की हानि आपको असह्य लगती है और आप मुनीम को डाटना-फटकारना शुरू कर देते हैं। इस बात से ही अनुमान लगाया जा सकता है कि आपकी सामायिक की साधना नष्ट हो-यह आपको सह्य हो जाता है लेकिन धन की छोटी सी हानि भी सही नहीं जाती, तो सोचिये की समता का समरस आपके अन्त करण मे कितना उतरा है ? सामायिक का वास्तविक स्वरूप जब तक भीतर नहीं उतरेगा तब तक सासारिकता के प्रति ममत्व भी कम नहीं होगा।

महाराजा ने किसान से कहा–भाई, कैसी भी हो लेकिन आखिर तुमने सच्ची बात कह दी जिससे मुझे बडी प्रसन्नता हुई है। यह अच्छा किया कि इस बात को तुमने जगह–जगह नही कही और मेरे ही मुह पर कहदी। पुत्रहीन होना तो मेरे हाथ की बात नही है–यह तो कर्मो के अधीन है। जब तक निकाचित कर्मो का क्षय नही होता है तब तक मनुष्य को इच्छित वस्तु की प्राप्ति नही होती है। किन्तु तुम मेरे कारण उस दिन खेत जोतने और बीज बोने के लिए नही जा सके, इस कारण उतना अन्न तुम मेरे भण्डार से प्राप्त कर लो जितनी तुम्हारी वर्ष भर की पैदावार होती।

किसान तो महाराजा के सद्व्यवहार को देखकर दग रह गया। वह तो उस समय नही समझ पाया किन्तु ऐसा सद्व्यवहार महाराजा की सामायिक की साधना का सुफल था।

महाराजा के आदेश से किसान को वाछित अन्न की मात्रा भण्डार से दिला दी गई। किसान महाराजा की भूरि–भूरि प्रशस करता हुआ तथा प्रसन्न होता हुआ अपने घर चला गया।

चन्द्रसेन जब एकान्त मे पहुँचे तो किसान की कही हुई बात ही उनके मष्तिष्क मे चक्कर काटने लगी। वे समझ चुके थे कि सन्तान प्राप्ति कर्मो के अधीन है अत ममत्त्वपूर्ण चिन्ता भी वे छोड चुके थे। परन्तु जनता मे उनके नि सन्तान होने से सम्बन्धित जो भ्रान्ति फैली हुई थी उसकी जानकारी उन्हे उस किसान के माध्यम से हुई थी। उनके दिल को यह समझ कर चोट भी पहुँची थी कि राजा तो दर्शनीय होता है लेकिन वही पुत्रहीन होने के कारण अदर्शनीय हो जाता है। महाराजा ने किसान की बात पर बडी गहराई से विचार किया और इस निर्णय पर पहुँचे कि मेरे विषय मे जनता मे ऐसी भ्रान्ति का फैली रहना और तब भी मेरा उसी जनता के बीच मे रहना–ये दोनो बाते एक साथ नहीं चलेगी।

अपने लिये अपशकुनता की भ्रान्ति से महाराजा का चित्त दु खी होने लगा। व सोचने लगे कि यो जनता मे उनकी सेवाओ का बहुत ही प्रेम और सम्मान है लेकिन यह भ्रान्ति ऐसी है जो सोने की थाली मे ताबे की मेख के समान महसूस होती है। मेरे पुत्र क्यो नही है–इसका कारण तो ज्ञानीजन ही जान सकते हैं किन्तु नि सन्तान होने से यह अपमानपूर्ण जो स्थिति है, वह असह्य है। महाराजा को ऐसा लगा कि इस स्थिति के साथ जीवित रहना ही श्रेयस्कर नहीं है।

इस खेदकारी विचारो के बीच मे ही सामायिक से सधा हुआ उनका मन आन्तरिक चेतना की दृष्टि को समक्ष प्रस्तुत करते हुए बोल पडा—अहो तुम ऐसी क्या विचारणा कर रहे हो ? तुमने सामायिक का रस पाया है—ऐसे निराशाजनक भाव तुम्हारे अन्त करण मे उठने ही नही चाहिये। मन ने तभी महाराजा के खेदकारी विचारो की लगाम खींच ली। महाराजा पुन अपने भीतर स्थित हुए और सोचने लगे कि जनता के मन मे मेरे प्रति कैसी भी भावना हो—किन्तु मेरा तो कर्त्तव्य यही है कि मैं उसे शान्तिपूर्वक सहन करू और जनहित के कार्यो मे अपने उत्साह को किसी प्रकार से घटाऊ नहीं।

तभी जैसे महाराजा के अन्त करण मे एक प्रकाश रेखा सी चमकी और उनके मन मे एक नये पुरुषार्थ का सचार होने लगा जिसने उनके विचारो की सारी खिन्नता धो डाली। उन्हे अपनी उत्साहप्रद भावनाओ की एक ताजगी सी महसूस हुई और वे वहाँ से उठ खडे हुए। किसान के कथन ने उनके दिल पर जो एक चोट लगाई थी वह पलभर मे ही मिट गई। उनका हृदय हल्का ही नही हुआ बल्कि एक नये पुरुषार्थ की उमग से आह्लादित हो उठा। समता की सहृदयता एव मधुरता उनकी मुखाकृति पर उभर आई।

समभावी साधक पुरुषार्थ मे रत रहता है किन्तु पुरुषार्थ की फल प्राप्ति को लेकर अपने मन को उद्विग्न नही बनाता है। ऐसा पुरुषार्थ भी अन्तत निष्फल नही रहता किन्तु जब तक सूर्य का आतप धरती के कण—कण को तपा नही देता है तब तक वर्षा काल की बौछार भी शीतलता प्रदान नही करती है।



4

समता की साधना मे जिस शक्ति–नियोजन से जीवन सुस्थिर होता है, वही शक्ति सच्चा पुरुषार्थ है। कामना पूर्ति की दौड मे जो शक्ति चिन्तातुरता पैदा करे–वह सत्पुषार्थ नहीं कहलाता। सत्पुरुषार्थी सदैव इसी सत्य का चिन्तन करता है कि उसका धर्माधार सुदृढ बना रहे और इसी तथ्य की सतर्कता बरतता है कि उसका वह आधार उसकी किसी भी वृत्ति अथवा प्रवृत्ति से हिले नहीं। सन्तानहीन होने के कारण अपशकुन होने की बात ने महाराजा चन्द्रसेन के मन को कुछ समय के लिये कष्ट पहुँचाया किन्तु उन्होने शीघ्र ही उस मन स्थिति को नियन्त्रण मे ले लिया। उन्होने निश्चय किया कि वे चिन्ता कभी नही करेगे लेकिन उनका वह पुरुषार्थ भी सत्पुरुषार्थ की सीमा मे ही होगा।

वस्तुत जो अपने जीवन को समता पर आधारित करके धर्ममय बना लेता है, उसका चिन्तन भी सदा ही शुभ होता है। जैसे विचार बनते हैं, वैसी ही मुह से वाणी निकलती है तथा वाणी के अनुसार ही आचरण का स्वरूप ढलता है। मन, वाणी और कर्म की एकरूपता मनुष्य के सबसे बडे सत्पुरुषार्थ के रूप मे प्रकट होती है। जीवन की जब ये तीनो शक्तियॉ एकाकार हो जाती हैं, तब वैसे जीवन मे न तो बाह्य पदार्थो की कामना ही ठहरती है और न ही वैसी कामनाओ के लिये चिन्ता करने का प्रश्न उत्पन्न होता है। वास्तव मे तब बाह्य पदार्थों के लिए चिन्ता करने की आवश्यकता ही नही रह जाती है। तब वे बाह्य पदार्थ स्वत ही उस जीवन के चरणो मे लोटपोट हो जाते हैं। कामनाओ के साथ जो उन बाह्य पदार्थों को पकडना चाहता है, उससे वे दूर भाग जाते हैं किन्तु निष्काम बनकर जो उनसे अपनी आसक्ति हटा लेता है, वे सभी बाह्य पदार्थ उसके पीछे–पीछे चलने लगते हैं। महाराजा चन्द्रसेन भी इसी जीवन शैली मे ढल रहे थे कि कामनाओ के पीछे अपनी जीवनी शक्ति विनष्ट नही की जानी चाहिये। वे यह धार चुके थे कि सत्पुरुषार्थ की लीक पर चलने से ही जीवन का विकास अविरल गति से आगे बढता जाता है।

उनकी आन्तरात्मा ने चन्द्रसेन महाराजा को प्रबुद्ध बनाया क्योकि उन्होने अपने जीवन की आन्तरिक वृत्तियो मे सम–भावना का समुचित विकास कर लिया था। समता जब विकसित हो जाती है तो वह जीवन की गति के लिये प्रमुख सम्बल भी बन जाती है। एक समता के साधक का मन जब भी थोडा ऊपर–नीचे होता है तो वह अपनी आन्तरिकता मे तन्मय हो

जाता है जिससे आई हुई सामान्य सी दुर्बलता भी तत्काल दूर हो जाती है। यह स्वरूप-तन्मयता कहलाती है जिस अवस्था मे साधक अपने ध्यान को अपने भीतर मे केन्द्रस्थ कर लेता है। तन्मयता के अभ्यास के साथ सम्पूर्ण जीवन का सचरण ही स्वरूपाभिमुखी होकर चलता है। इस प्रकार की उच्च कोटि की साधना की सफलता के समय देवता भी उस साधक के समक्ष आकर नत मस्तक हो जाते है। उस साधक को तब किसी भी प्रकार की चिन्ता नही रहती है। चन्द्रसेन भी ऐसी ही साधना के पथ पर अग्रगामी हो रहे थे और अपने स्वरूप बोध के साथ सासारिकता की चिन्ताओ से अलग हट रहे थे।

ससार मे ऐसे भी व्यक्ति होते है जो अपने जीवन मे धर्म को कोई स्थान नही देते है—यहाँ तक कि समता-साधना के लिये वैचारिक पुरुषार्थ भी नही करते है उनका सारा पुरुषार्थ मात्र सासारिक कामनाओ की पूर्ति मे ही लगता है जिसे कुपुरुषार्थ के सिवाय और क्या कह सकते है ? ऐसे व्यक्ति धर्म मे तन्मय तो होते ही नही है। वे सदा भाति-भाति की चिन्ताओ से घिरे रहते है। चाहे शारीरिक हो या मानसिक पुरुषार्थ का क्रम तो अबाध गति से चलता रहता है। जो प्रबुद्ध बनकर उस पुरुषार्थ के क्रम को सत् श्रेणी का बना लेते है वे तो अपने जीवन मे समता की सफलता दिखा देते है किन्तु जो अपने पुरुषार्थ पर नियन्त्रण स्थापित करने मे असमर्थ रहते है कुपुरुषार्थ उन्हे निर्जित करता रहता है और वैसे कुपुरुषार्थी व्यक्ति अपने दुर्लभ जीवन को निरर्थक बना लेते है। जैसे दिल की धड़कन बन्द नही होती वैसे ही पुरुषार्थ की गति भी निरन्तर चलती रहती है। व्यक्ति का धर्ममय विवेक ही उस गतिमान पुरुषार्थ को जीवन-विकास की दिशा मे मोड़ कर अपनी लक्ष्य सिद्धि कर सकता है। [illegible] पुरुषार्थ [illegible] तब तक सत्पुरुषार्थ का रूप ले [illegible] और [illegible] दशा मे भी उसकी अन्तरात्मा न उसे पुरु- [illegible]।

की चिन्ता की ओर ध्यान दे रहे थे कि राज्य का भावी शासक भी उनकी तरह ही प्रजाहितकारी तथा जनप्रिय हो। जनता इस रूप मे सोचती हे और अपनी भावना को महाराजा के सामने व्यक्त करती है तो जनता की ओर से महाराजा का भी सत्पुरुषार्थ करने का अवश्य ही कर्त्तव्य बनता है। इसी दृष्टि से उन्हे उपाय सूझा कि वे देव को याद करे ओर उससे इस चिन्ता–निवारण के सम्बन्ध मे मार्गदर्शन प्राप्त करे।

महाराजा ने विचार किया कि देव अवधिज्ञान के धारक होते हैं अत यह तथ्य बता सकते हैं कि उनके यहाँ पुत्र का जन्म होगा अथवा नहीं और होगा तो कब तक ? यदि देव अपने ज्ञान मे इस भावी बात को देखकर बता देगा तो उस सूचना को वे प्रामाणिकता के तौर पर अपनी जनता को बताकर सन्तुष्ट कर सकेगे।

देवता को आह्वान करने का निश्चय बनते ही महाराजा उठ खडे हुए। वे जानते थे कि इसके लिये तेले की तपस्या करनी होगी, क्योकि इस तपस्या से देवता को उधर आने का सकेत मिलता है। अत महाराजा अपने राजभवन के उस भाग मे गये जिसे उन्होने पौषधशाला का रूप दे रखा था। यह स्थान एकान्त, शान्त तथा धर्म साधना के अनुकूल था। उस पौषधशाला मे जाकर वे तीन दिन के तेले मे बैठ गये। वह तपस्या आध्यात्मिक शुद्धि हेतु नहीं की जा रही थी, बल्कि वाछित देवता को आमन्त्रित करने के लिये थी।

किसी के मन मे यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या शास्त्रकारो की व्याख्या की कसौटी पर यह तपस्या खरी उतरती है ? शास्त्रकारो ने कहा है कि तपस्या इस लोक के लिये नही करनी चाहिये, परलोक के लिये नहीं करनी चाहिये तथा यश कीर्ति के लिये नही करनी चाहिये अपितु केवल अपनी आत्मशुद्धि के लिये करनी चाहिये। जब वीतराग देवो की तपस्या के सम्बन्ध मे ऐसी आज्ञा है तो देवता का आह्वान करने के लिये तेले की तपस्या क्यो की जाती है ? और देवता का आह्वान भी यह तथ्य जानने के लिये कि पुत्र होगा या नही ? इस लौकिक कामना के साथ यह की जाने वाली तेले की तपस्या क्या इस लोक के लिये हुई या नही ? यह एक स्वाभाविक प्रश्न है जो तपस्या के स्वरूप का चिन्तन करने के समय उठ सकता है, किन्तु इसका समाधान भी गहराई से समझना चाहिये।

ऐसी सम्यक् दृष्टि वाली आत्माएँ, जिन्होने अपना अन्तिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति का निर्धारित कर लिया है किन्तु जो अभी गृहस्थाश्रम मे स्थित हैं, उन

आत्माओं के लिये गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्यों का पालन करना भी आवश्यक होता है। ऐसे सद्गृहस्थाश्रम के समक्ष जब कोई विपत्ति आ जाती है तो उस दशा में उसे अपने से किसी अधिक शक्तिशाली का सहारा भी लेना पड़ता है। वर्तमान की परिपाटी में यों समझिये कि कोई सम्यकदृष्टि सद्गृहस्थ किसी कायदे-कानून के चक्कर में फंस जाय तो उसे वकील का सहारा जिस रूप में लेना पड़ता है उसी रूप में महाराजा चन्द्रसेन ने राज्यगत उस विपत्ति में अपने से अधिक शक्तिशाली देवता का सहारा पाने के लिये उसका आह्वान किया तो वैसा करके उन्होंने अपने गृहस्थाश्रम एवं राज्य के उत्तरदायित्व के प्रति अपने एक कर्त्तव्य का ही निर्वाह किया।

महाराजा चन्द्रसेन एक सद्गृहस्थ तथा एक उत्तरदायी शासक का कार्यभार भी निभाते थे तो एक साधक के रूप में धर्म साधना भी तन्मयतापूर्वक करते थे। यह तेले की तपस्या उनकी पहली हैसियत में की गई थी साधक की हैसियत में नहीं। उस तेले को उन्होंने धर्म का कार्य नहीं समझा अतः उनकी सम्यग्दृष्टि में कोई दोष नहीं आया।

यह भी पूछा जा सकता है कि जब महाराजा सांसारिक कार्य हेतु देवता का आह्वान करने का तेला कर रहे थे तो वे धर्माराधना की जगह पौषधशाला में क्यों बैठे ? इसका समाधान इस तरह लिया जा सकता है कि सम्यग्दृष्टि सद्गृहस्थ भी जब लौकिक व्यवहार के लिये किसी शक्ति से सहायता लेना चाहता है तो जो वीतरागी आत्माओं में श्रद्धा और आस्था रखने वाले देवता होते हैं उनका सम्बल लिया जा सकता है तथा उनके आह्वान हेतु किया जाने वाला तेला या तप भी धर्माराधना के स्थान पर किया जा सकता है। ऐसे सद्गृहस्थ की आन्तरिक भावना मोक्षप्राप्ति के लक्ष्य की ओर [illegible] है और इस कारण वह एक किसी देवता का आह्वान नहीं [illegible] आदि तप [illegible] सम्यग्दृष्टि सद्गृहस्थ [illegible]।

कोई स्थान नही होना चाहिये। देव को बुलाने के लिये तेले की तपस्या हो तो तीन दिन के लिये मन की एकाग्रता भी आवश्यक होती है।

महाराजा पौषधशाला मे जाकर बैठे और तेले की तपस्या के साथ तीन दिन तक मन की एकाग्रता भी साधते रहे। उनके उस प्रकार के श्रेष्ठ आह्वान का परिणाम भी सामने आ गया।

तेले की तपस्या की पूर्ति के साथ ही महाराजा ने जिस देवता का आह्वान किया था, वह देवता उनके समक्ष उपस्थित हुआ। उसने पूछा कि उसको किस प्रयोजन से बुलाया गया है ? तब महाराजा ने शालीनता के साथ उत्तर दिया– हे देव, मैं आपको कष्ट नहीं देना चाहता था किन्तु जनता मुझे बार बार कहती और अपने राज्य का भविष्य पूछती रही है, इस कारण आपका आह्वान अनिवार्य हो गया। स्थिति यह है कि मेरे कोई पुत्र नहीं है और जनता इस तथ्य से आशकित है कि मेरे बाद उनको इस राज्य का न जाने कौन और कैसा शासक प्राप्त होगा ? जनता मेरी सेवाओ से प्रसन्न है तथा चाहती है कि उसका भावी शासक भी मेरे जैसा ही हो और ऐसा चूकि मेरा अपना पुत्र ही हो सकता है, आपसे यह जानकारी लेने की नितान्त आवश्यकता हो गई कि भविष्य मे मेरे पुत्र होगा अथवा नहीं और होगा तो कब तक होगा ?

महाराजा देवता को कहते रहे–मैं तो सम्यक् दृष्टि होकर समता की साधना मे निरत हू अत पुत्र की कामना भी मेरे लिये चिन्ता का कोई कारण नहीं है। यह जानकारी भी मैं प्रजा की भावना के अनुसार तथा प्रजा के हित की दृष्टि से ही लेना चाहता हूँ। अत आपको कष्ट देने का यही अभिप्राय है कि प्रजा की भावना पूर्ण होगी अथवा नही ? आप इस तथ्य को अपने अवधि ज्ञान मे देखकर कृपया खुलासा कीजिये जिसमे यह भी बताइये कि मेरा होने वाला पुत्र क्या मेरे आत्मीय गुणो के अनुरूप ही होगा ?

तब देवता उत्तर देने लगा–राजन्, मैं देव–शक्ति रखता हूँ फिर भी यह सामर्थ्य देवो मे नही होता कि जिसके कर्म फलानुसार पुत्र होने ही वाला नहीं हो, उस को भी देवता पुत्र दे दे। अन्य देवताओ के समान मैं भी अपने अवधि ज्ञान की सहायता से केवल इतना ही बता सकता हूँ कि पुत्र होने के सम्बन्ध मे आपके कर्मो की भावी स्थिति क्या है ? एक बात और कह दूँ कि ये कर्म भी धर्माराधना से क्षय होते हैं, कारण धर्म एक कल्पवृक्ष के समान होता है। कर्मो के क्षय के साथ भी नवीन प्राप्ति की सम्भावना का योग बनता है।

शुभ योगों की प्राप्ति को रोकने वाले कर्मों के टूटने से ही शुभ परिणाम सामने आते हैं।

देवता ने आगे कहा—महाराज, आप पुत्र प्राप्ति के लिये चिन्ता नहीं करते हैं- यही एक धर्माराधक के लिये उचित मन स्थिति है। यदि चिन्ता आती है तो समझना चाहिये कि उसकी धर्माराधना मे कही न कही कमी है। शुद्ध मन से तन्मयतापूर्वक धर्म की आराधना की जाती है तो विविध प्रकार के कर्म बन्धन भी टूटते हैं। अन्तराय कर्मों की स्थिति भी इससे अनुकूल बनती है। आपने अच्छा मार्ग अपनाया है और यह मार्ग आपके लिये अवश्य ही श्रेयकारी सिद्ध होगा।

देवता कहता गया—हे राजन्, आप इसी प्रकार धर्म की आराधना करते रहिये और मन को चिन्तित मत बनाइये जिससे अन्तराय कर्म अवश्य ही क्षय होंगे और वांछित फल की प्राप्ति होगी। आवश्यक है कि आप श्रेष्ठ मत का निरंतर अनुसरण करते रहें कहीं भी मिथ्यात्व को बीच मे न आने दें तथा धर्म पर सुदृढ़ आस्था रखकर चलते रहें।

रही हैं ? यदि ऐसा है तो क्या ऐसे कुछ लोगो के दुष्कृत्यो से भी सारा समाज प्रतिष्ठा नही खोयेगा ? यह सभी का कर्त्तव्य है कि अपने बीच कहीं भी बढने वाली बुरी लतो को रोका जाना चाहिये तथा सस्कारहीन लोगो मे नये उन्नत सस्कारो का बीजारोपण करना चाहिये। श्रेष्ठ सस्कारो से ही मानव जीवन का विकास होता है तथा नई आध्यात्मिक ऊँचाइयाँ प्राप्त की जा सकती है आध्यात्मिक महापुरुषो के चरणो मे देवयोनि के देवता तक अपना मस्तक झुकाते हैं। उनका यह वन्दन मात्र शरीर पिड को नही होता है, बल्कि शरीर पिड मे उद्भूत होने वाली आध्यात्मिक साधना को होता है। देव भी मानव शरीर की अर्चना करे उसके लिये शरीर की सुन्दरता नही, आत्मा की सुन्दरता प्रकट होनी चाहिये। आन्तरिकता जब शुद्ध, सशक्त तथा स्वरूपवान् बन जाती है तब उसकी सेवा और सहायता के लिये देवता भी हाथ बाधे खडे रहते हैं।

तब देव ने राजा को यह कहकर प्रेरणा दी है कि हे राजन्, आप सबके साथ अपनी आत्मीय भावना को परिपुष्ट बनाते रहे और अपने आन्तरिक सद्गुणो मे वृद्धि करते रहे। क्योकि पिता के जीवन मे विकसित हो रहे सद्गुणो का प्रवेश और पोषण भी उसके पुत्र के उभरते हुए जीवन मे होता है। पुत्र को पिता अपनी आत्मा के तुल्य समझता है तो पुत्र भी पिता को सम्मान की दृष्टि से देखता है। यदि पिता पुत्र को नीची भावना से देखे तो पुत्र का उत्थाद कठिन हो जाता है। पारस्परिक उच्च भावनाओ के रहने से पिता की जीवन विकास की विरासत समुचित रूप से पुत्र को प्राप्त होती है तथा पुत्र का जीवन विकास भी पिता के विकास के अनुरूप बनता है। राजा के लिये उसकी जनता भी पुत्र के ही समान होती है अत जनता के सार्वजनिक जीवन मे भी सुसस्कारो का विकास हो, इस दिशा में भी आप सदैव सतर्क एव प्रयत्नशील रहे।

देवता तो चन्द्रसेन महाराजा को गुणशील बनने की प्रेरणा दे रहा था किन्तु क्या वर्तमान मे सभी लोगो का यह कर्त्तव्य नहीं है कि वे अपनी पूरी समाज के क्रियाकलापो पर अपनी नजर दौडावें तथा उनमे ऊँची-नीची परिस्थितियाँ पैदा हो रही हो तो उनको सुधारने की प्राणपण से चेष्टा करे ? किस तरह की बाते स्वस्थ सामाजिक धरातल के अनुकूल हैं और कौनसी प्रतिकूल बाते लोगो के आचरण में स्थान पा रही हैं- इस पर सभी को गहरा चिन्तन करना चाहिये और प्रतिकूल बातो को मिटाकर अपने सामाजिक दायित्व की पूर्ति करनी चाहिये। आज वृद्ध जन समझते हैं कि युवको मे आवश्यक सत् चेतना का विकास नही हो रहा है तो क्या वृद्ध जन

हम भी सोचते हैं कि ऐसा किन कारणों से नहीं हो रहा है तथा युवा चेतना के सम्यक् विकास के लिये क्या कार्य किये जाने चाहिये ? केवल आलोचना से कार्य नहीं होता है– अपने स्नेह और सहयोग से कमियाँ दूर की जानी चाहिये तथा पूरे समाज में श्रेष्ठ संस्कारों का उन्नतिकारक वातावरण बनाना चाहिये।

गांधीजी के बारे में कहा जाता है कि वे अपनी बात मनवाने की कला जानते थे। वे नवयुवकों पर अपनी बात थोपते नहीं थे बल्कि समस्या का विवरण बताकर वे पूछते थे कि उसका क्या समाधान है ? जब नवयुवक कह चुकते और अपने समाधान से उन्हें भी सन्तोष नहीं होता, तब गांधीजी अपना समाधान बताते जिसे नवयुवक प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेते। गांधीजी सबको बराबर की दृष्टि से देखते थे तथा सबको साथ लेकर चलने का उपक्रम करते थे। गांधीजी की इस कला का ऐसा अच्छा असर पड़ा कि बाद के दिनों में जब वे कोई राय देते तो बिना चूं नच किये उसे बड़े से बड़ा नेता भी मान लेता था। पं. नेहरू भी कहा करते थे कि विरोध की कई बातें वे सोच कर गांधीजी के पास जाते थे मगर उनके सामने जाने के बाद विरोध करने की कोई इच्छा ही नहीं होती थी और वे गांधीजी के सुझावों को यथावत् मान लिया करते थे। सामने वाले को शान्ति से सुनने तथा उसका विचार–भण्डार खाली हो जाने तक प्रतीक्षा करने के बाद उस पर लोग अपने सुझाव बताये तो वे पूर्ण प्रसन्नता से उनके लिये ग्राह्य बन जाते हैं। ऐसी कला धार्मिक

महाराजा चन्द्रसेन को भी देवता ने यही मुख्य भलामण दी कि वे जनता के साथ इस तरह प्रगाढ सम्बन्ध बनावे कि जनता भी कुव्यसनो से मुक्त होकर आदर्श जीवन जीने की कला सीखने लगे। राजा और प्रजा जब आत्मीयता की तरलता मे डूब कर साथ–साथ चलते हैं तो उस राज्य का उत्थान भी आसान हो जाता है। केवल मृत्यु के मुह से किसी को कोई बचा लेता है तो वह उसके प्रति जीवन भर के लिये आभारी बन जाता है। किन्तु कोई यदि किसी के जीवन को विकारो मे बरबाद हो जाने से बचाकर उसे आध्यात्मिक आदर्शों की तरफ मोड देता है तो वह आभार कितना अमूल्य होता है ? इसी तरह जो अभयदान देता है तो वह उसके जीवन को सुख शान्ति से परिपूरित बना देता है और उसका वह ऋण भी अपूर्व होता है।

देव ने महाराजा चन्द्रसेन से इसी रूप मे जनता के जीवन को उन्नत बनाने की सीख दी। यही नही, देव ने आगे महाराजा को अपने सत्पुरुषार्थ की क्या विधि अपनानी चाहिये, उसका भी विस्तार से विवरण दिया।

सत्पुरुषार्थ कभी निष्फल नही जाता, क्योकि उसमे विस्तृत हित साधना का भाव रहता है जो अपनी स्वार्थभरी कामनाओ की पूर्ति के लिये सारा पुरुषार्थ जुटाना चाहते हैं, वे सत्पुरुषार्थी नहीं होते। चन्द्रसेन का वह सत्पुरुषार्थ अब फलीभूत होने जा रहा था।



5

महाराजा चन्द्रसेन का सत्पुरुषार्थ अब प्रतिफलित होने जा रहा था। महाराजा का उत्तराधिकारी उतना ही सद्गुणी जन-हितकारी एवं लोकप्रिय हो-ऐसी जनता की भावना साकार स्वरूप ग्रहण करने की ओर उन्मुख हो रही थी। देव वह विधि बता रहा था जिसका अनुपालन करने के पश्चात पटरानी की झोली पुत्ररत्न से भरने वाली थी। अध्यवसाय शुद्ध लक्ष्य को लेकर चले तो वह कभी भी विफल नहीं होता है। ये राजा सामायिक की साधना कर रहे थे जिससे उनकी अटूट श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी। पटरानी की प्रेरणा और साधना की समीपता ने इनके जीवन में जो आमूलचूल परिवर्तन कर दिया था उसी का यह सुफल था कि उनका लक्ष्य शुद्ध था तो मार्ग भी शुद्ध और समतापूर्ण। इस मार्ग पर जो उनका अध्यवसाय आरम्भ हुआ तो उसकी सफलता के लिये देवता का सहयोग भी उन्हें प्राप्त हो गया।

देवता ने आश्वस्त करते हुए महाराजा को कहा कि उनको पुत्ररत्न की अवश्य ही प्राप्ति होगी तो उनके मन में सात्विक हर्ष की लहर दौड़ गई। क्योंकि उन्हें अब जनता को उसकी भावना की सम्पूर्ति का संवाद सुनाने का शुभ अवसर प्राप्त हो जायगा। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि उनका राज्य आगे बाद भी सुव्यवस्थित रीति से चले और उनकी प्रजा श्रेष्ठ संस्कारों से पोषित होकर सभी भांति समृद्ध रहे।

बगीचा मिलेगा। अपनी इस यात्रा मे आप पूर्ण निर्भीकता रखे। जहाँ भी किसी कारण मन डावाडोल होने लगे तो सामायिक की आराधना आरम्भ कर दे, ताकि समता के साथ आपको धैर्य और गाभीर्य प्राप्त हो जाय। सामायिक के सार को धारणा करते हुए चलेगे तो अपको किसी तरह की चिन्ता करने की जरूरत नही है।

देवता का निर्देश चल रहा था, वह बोला–हे राजन्, आप नवकार मत्र की शरण लेकर आगे बढे। आपका इतने घने जगलो मे जाने का पहले काम नही पडा होगा लेकिन आपको यह चम्पा नाम का जो बगीचा मिलेगा, वह बहुत ही रमणीय है। झूमते हुए हरे भरे वृक्ष, खिलते हुए रग–बिरगे फूल और प्रकृति के मनोहारी दृश्य किसी के भी मन को सहज ही मे उलझाने वाले हैं। उस बगीचे मे आपको शतदल नामक एक पुष्प मिलेगा। उसकी सुन्दरता को देखकर किसी का भी उस पर मोहित हो जाना आसान है। इस मोह मे सासारिक वृत्तियो वाले मनुष्य तो तुरन्त फस जाते हैं क्योकि रगो का आकर्षण उन्हें उलझा देता है। किन्तु आपके मन मे उन दृश्यो को देखकर भी समता–भाव बना रहना चाहिये। आपके लिये ऐसी दृढता को बनाये रखना कठिन भी नही होगा, क्योकि आप तो सामायिक के स्थिर साधक हैं। कहीं भी आकर्षण मे कतई नही फसे, क्योकि जरा सी भी कमजोरी आई तो आगे बढना रुक जायगा।

"राजन्, उन सुन्दर पुष्पो के चारो ओर भवरे मडराते हुए आपको दिखाई देगे जो उन पुष्पो से रस ग्रहण करते हुए मिलेगे। शतदल कमल का रस भवरो को बहुत प्रिय होता है। भवरे उससे विलग नही होना चाहते हैं। वहाँ पर आपको सूर्यमुखी पुष्प भी दिखाई देगा जो सूर्य की ओर ही अभिमुख रहता है तथा सूर्य के अस्त हो जाने पर कुम्हला जाता है। भवरा बहुत ही रस लोलुप होता है–इतना रस लोलुप कि अपने प्राणो की रक्षा का भाव भी भूल जाता है। इसीलिये कवि ने सकेत करते हुए कहा है–हे भवरे, तू रस के लालच मे अभी तक कमल के फूल पर क्यो बैठा हुआ है क्योकि सूर्य अस्त होगा तो बमल मुरझा जायगा और तू उसके भीतर बन्द हो जायगा। रात्रि पर्यन्त बन्द रहने के बाद सुबह हाथियो का दल आयेगा जो कमल को उखाड कर फैंक देगा जिसके साथ ही तुझे भी अपने प्राणो से हाथ धोना पड जायगा। कवि ने यह बात भवरे को क्या, मोह मे फसे हुए मनुष्य को ही कही हे जो विषय–वासनाओ के मोह मे इस तरह भान भूला हुआ है कि न तो उसे [illegible] दुर्लभ मानव जीवन का सदुपयोग करने का ध्यान है और न ही काल द्वारा

प्रकार उस मणि का प्रकाश भी मनुष्य को अपनी तरफ खीचता है। जो उस आकर्षण मे मुग्ध बन कर खिचा चला जाता है, वह अपने प्राणों बचा नहीं पाता है, किन्तु आपके मन मे तो समता साधना का दिव्य प्रकाश फैला हुआ है अत मणि का वह प्रकाश आपको आकर्षित नही करेगा–ऐसा मेरा विश्वास है। इसी तरह आपका आत्मबल भी इतना मजबूत है कि आप उस साप की विकरालता से भी भयभीत नही होगे। निर्भय अवस्था मे आप उस मणि के विस्तृत प्रकाश मे चारो ओर की वस्तुएँ तथा गतिविधियाँ स्पष्ट रूप से देख सकेगे। सर्प सदा अपनी मणि को किसी ऊचे स्थान पर रखकर उसके प्रकाश मे अपना खाद्य ढूँढने के लिये इधर उधर जाता है। लेकिन इस सर्प मे आप एक विशेषता देखेगे जो दूसरे सर्पों मे नही मिलती है। मणि के उस प्रकाश मे उसको जो खाद्य मिलता है, उसे लेकर वह वापिस अपनी मणि के पास आ जाता है।

महाराजा को विशेष ध्यान दिलाते हुए तब देवता ने आगे कहा–हे राजन्, अब आप ध्यान से सुनिये कि आपको उस समय मे क्या करना है ? उस बावडी के पास वाले वृक्ष की ऊची शाखा पर बैठकर आधी रात मे आपको सर्प के बाहर निकलने की प्रतीक्षा करनी होगी। ज्योही सर्प बाहर निकले और अपने सिर से मणि को उतार कर ऊचे स्थान पर रखे तब आप सावधान हो जावे।

देवता कह रहा था–आप उस सर्प को देखकर तनिक भी नहीं डरे और न ही उसे मारने का उपक्रम करे, क्योकि आप सम्यक्–दृष्टि साधक हैं और आपको निरपराध प्राणी पर प्रहार करना कतई उचित नही है। आप तो ध्यानपूर्वक उस सर्प की चर्या को देखते रहे। वह सर्प आपकी कार्य–सिद्धि मे कतई बाधक नहीं होगा। आपको अहिसक रीति से उस सर्प को वश मे करना होगा। उसको वश मे कर लिया तो फिर सफलता निश्चित है।

चन्द्रसेन ने जानना चाहा–हे देव, उस सर्प को वश मे करने का मेरी कार्य–सिद्धि से भला क्या सम्बन्ध हो सकता है ?

चन्द्रसेन की जिज्ञासा के उत्तर मे देव ने इतना ही कहा कि उस सर्प से मणि प्राप्त कर ले और इतना कह वह वहाँ से चला गया। देव इस दृष्टि से वहाँ से चला गया कि अपने सत्पुरुषार्थ का मार्ग स्वय राजा को ही खोजना चाहिये–इस बारे मे कोई निर्देश नहीं देना चाहिये। इस कारण उसने इतना ही कहा–बस आप तो मणि प्राप्त करले और उसके बाद सारे प्रसग

हितकारी ही बनेगे तथा आपका मनोरथ भी पूर्ण होगा। महाराजा मन मे विचार करने लगे कि देवता के इस सक्षिप्त कथन का क्या रहस्य है ? वे यह भी सोचने लगे कि सर्प विकराल है फिर भी उसको अहिसक रीति से वश मे करना है–यह कैसे सम्भव हो सकेगा ? राजा ने अन्ततोगत्वा सोचा कि देवता तो सकेत करके चला गया है, अब तदनुसार निर्देशो को कार्य रूप तो उसे ही देना होगा। यह सोचकर वे आगे के कार्यक्रम पर विचार करने लगे। उनके सामने उस अपरिचित स्थान तक पहुँचने तथा मणि प्राप्त करने के कार्य मे सफलता प्राप्त करने के प्रश्न तो थे ही, यह भी समस्या उसके सामने थी कि अपनी अनुपस्थिति में राज्य व्यवस्था के सचालन का क्या होगा ?

फिर भी महाराजा चन्द्रसेन ने अपनी कार्यसिद्धि का पहला चरण तो पूरा कर ही लिया था कि तेले की तपस्या के प्रभाव से देवता उपस्थित हो गया, उसने पुत्र प्राप्ति का निश्चित सयोग भी बता दिया तथा आवश्यक निर्देशो से कार्य सम्पन्न करने की भलामण भी उसने दे दी। श्री कृष्ण महाराज ने भी इसी तरह तेले की तपस्या करके देवता को बुलाया था और उससे पूछा था कि मेरी माता देवकी की कुक्षि से मेरे छोटा भाई उत्पन्न होगा या नही, क्योकि माता की छोटे बच्चे को रमाने की बडी उग्र भावना हो गई थी। तब भी देव ने प्रकट होकर श्री कृष्ण को बता दिया था कि उनके छोटा भाई अवश्य होगा। इस प्रकार पहला चरण पूरा हो जाने के बाद महाराजा चन्द्रसेन ने आगे की योजना पर विचार करने के लिये अपने दीवानजी एव निकटस्थ पदाधिकारियो को बुलाया।

धर्म को कल्पतरु की उपमा दी गई है। जैसे कल्पतरु मनवाछित फल देता है, वैसे ही धर्म की शुद्ध आराधना से मनुष्य के मनोरथ पूरे होते हैं। धर्म की आराधना की पहली सीढी यह मानी गई है कि कम से कम व्यर्थ के पाप कार्य न किये जाय। व्यर्थ के पाप कार्य वे जिनके करने का वर्तमान जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। जैसे कोई आपसे यह कहे कि सोने के तख्त पर बैठना छोड दीजिये तो क्या आप यह त्याग नहीं ले सकते ? यह आप जानते है कि आपके घर मे सोने का तख्त है नहीं और न होने की उम्मीद है, फिर बिना कष्ट का यह त्याग कर लेने से क्या आपत्ति हो सकती है ? किन्तु ऐसा त्याग भी धर्म का कारण होता है। ऐसे पदार्थो का त्याग कर लेने से भी इच्छागत पाप रुक जाता है और इच्छापूर्वक उनका त्याग कर लेने से उनसे सम्बधित क्रिया जीवन मे नहीं लगती। अत ऐसे व्यर्थ के पाप को रोकने को प्रयास करना भी धर्म रूपी कल्पतरु की छाया मे बैठना ही होगा।

ऐसा ही महात्मा बुद्ध के पूर्व जीवन का एक प्रसग है। एक जन्म मे वे चन्दन गोह के रूप मे थे। गोह की पकड बहुत मजबूत होती हे। यहॉ तक कि रस्सी से बाध कर इसको ऊँची दीवार पर फेंकते हैं तो वह वहॉ मजबूती से चिपक जाती हे। फिर रस्सी को पकड कर सीधी दीवार पर भी ऊपर चढा जा सकता है। तो वह चन्दन गोह जगल मे रहती थी। उसी जगल मे एक ढोगी साधु कुटिया बनाकर रहने लगा। उसका इस तरह अकेले रहने का मकसद लोगो की नजरो से बचकर मनमाने काम करना था। अधिकाशत अकेले रहने वाले साधु का लोग विश्वास नही करते हैं और यह सही भी है, क्योकि अकेला साधु दिन रात क्या करता है, कैसे रहता है उसे देखने-जाचने वाला भी कोई नही होता है और एकान्त व गोपनीयता पाप तथा प्रपञ्च का कारण बन जाती है। आज भी जो एकाकी साधु चलते हैं, वे दावा करते हैं कि वे उत्कृष्ट साधुता का पालन करते हैं किन्तु प्रश्न उठता है कि यदि वह वास्तविक साधु है तो दूसरो के साथ हिल मिल कर क्यो नहीं चल सकता है ? उसके अकेले रहने का अधिकतर कारण तो दम्भ या मान ही होता है कि वही अकेला सच्चा साधु और बाकी सभी साधु खोटे। इसलिये गृहस्थो मे भी यह विवेक होना चाहिये कि किसी को साधु वेश मे देखकर ही भक्ति न करने लग जाये, बल्कि पहले यह परीक्षा करे कि वह साधु वेश के अलावा साधुता की कसौटी पर भी खरा उतरता है या नही ? इसी दृष्टि से भगवान् महावीर की आज्ञा है कि साधु कम से कम दो तथा साध्वियॉ कम से कम तीन विहार करे-एकलविहार उचित नही बताया गया है। खैर ! उस जगल मे वह अकेला साधु रहता था। साधु को देखकर चन्दन गोह के मन मे शुभ भावना जागी कि मेरे समीप ही इनके रहने से मुझे हमेशा इनके पवित्र दर्शन होते रहेंगे। वह, चन्दन गोह रोज सुबह साधु की कुटिया के बाहर जाकर साधु को नमस्कार करती और चली जाती। यह उसका नित्य क्रम हो गया। एक दिन साधु के पास उसको कोई भक्त मास का भोजन लेकर आया। साधु ने मास खाया और पूछा कि यह मास इतना स्वादिष्ट कैसे है ? भक्त ने कहा कि यह मास चन्दन गोह का है। इसलिए स्वादिष्ट है। यह सुनकर उस साधु के मन मे विचार आया कि एक चन्दन गोह रोज उसके दर्शन करने के लिए आती है सो यदि वह उसे पकडले और मारकर खावे तो वैसा ही स्वाद वह फिर ले सकेगा। यह सोचकर वह लोहे का चिमटा हाथ मे लेकर बैठ गया ताकि चन्दन गोह के आते ही उसे मार सके। लेकिन उस चन्दन गोह ने दूर से ही उस साधु का वह रूप देखा तो वह चौंक उठी। उसने सोचा कि

यह साधु तो नकली और हिसक लगता है। इस कारण वह दूर मे ही वापिस जगल मे चली गई। साधु गोह को मारने की क्रूर भावना के साथ वहा बैठा ही रहा। कहने का अभिप्राय यह है कि साधु का आचार–विचार बडा ऊचा होना चाहिये तभी वह श्रद्धा का पात्र बनता है।

महाराजा चन्द्रसेन के मन में विचार जागा कि मैं ऐसे ऊचे आचार–विचार वाला साधु नहीं बना हू। अभी तो मैं श्रावक ही हू। फिर भी इस स्तर से मुझे कल्पतरु के समान धर्म की आराधना करनी है क्योकि जब तक अन्तराय कर्म वने रहते हैं तब तक मनोवाछित प्राप्ति नही होती है किन्तु धर्माराधना करते–करते वे कर्म जब टूट जाते हैं तो फिर वह प्राप्ति भी दूर नहीं रहती है। इस सकल्प के साथ महाराजा के निर्देशानुसार यात्रा प्रारम्भ करने का निश्चय किया।

जनता की भावना सफल बनेगी और उसे उसके समान ही भावी शासक प्राप्त हो सकेगा– इस विचार से महाराजा चन्द्रसेन का हृदय अतीव उत्साह से हर्षित होने लगा। देवता ने कहा था कि यात्रा राजा को अकेले ही करनी होगी अत उन्होंने घोडे पर बैठकर वह यात्रा अकेले ही पूरी करने का निर्णय लिया।

अतीव प्रफुल्ल मन से महाराजा अपने राजभवन मे पहुचे तथा नित्य कार्य से निवृत्त होकर पहले उन्होंने सामायिक की साधना की ताकि शान्ति और समभाव के साथ वे अपने कार्यक्रम पर विचार कर सके। तदनन्तर वे अपने परिवारजनो के बीच मे पहुचे तथा उन्होने उन्हें शुभ सवाद का सकेत दिया। इतने मे मत्रीगण वगैरा भी पहुच गये।

चन्द्रसेन, धर्मात्मा, नीतिवान और प्रजा का सदा ही भला चाहने वाले राजा थे। जैसे वे सद्‌गुणी राजा थे वैसी ही उनके मत्री आदि भी विनम्र और आज्ञाकारी थे तथा वैसी ही हितकारी उनकी प्रजा थी। मन्त्रियो आदि ने महाराजा के कक्ष के बाहर पहुचकर विचार किया कि वे तीन दिन की तेले की तपस्या मे विराजे थे सो उसने परिणामस्वरूप कोई न कोई नया शुभ सवाद अवश्य होगा किन्तु सभी एक साथ जाकर महाराजा की शान्ति भग करे– यह उचित नहीं रहेगा। वह एक शिष्ट अनुशासन की बात थी।

आज देखा जाता है कि कोई सन्त बीमार हो जाय तो लोग उनकी सुखसाता पूछने के लिए आते हैं। लेकिन वे सुखसाता पूछने के शुभ कार्य मे भी आवश्यक विवेक नहीं रखते हैं जिसके कारण सन्त को विश्राम मिलने

की बजाय अधिक कष्ट महसूस होने लगता है। कई बार मागलिक पाठ को सुनाने के समय मे भी आवश्यक अनुशासन नही निभाया जाता है। हमेशा की छोटी–छोटी बातो मे भी विवेकपूर्ण अनुशासन रखा जाना चाहिये।

चम्पा नगरी मे शिष्ट और विवेकपूर्ण अनुशासन का भाव सभी में समाया हुआ था। इस दृष्टि से सभी लोग कक्ष के बाहर ही ठहर गये। अकेले दीवानजी ही महाराजा के कक्ष मे प्रविष्ट हुए। उन्होने महाराजा के सम्मुख जाकर नम्र भाव से पूछा–राजन्, आप तेले की तपस्या करके पौषधशाला मे विराज रहे थे, इसलिये हम लोग आपकी सेवा मे नहीं पहुच सके जिस हेतु क्षमाप्रार्थी हैं। कृपा करके फरमाइये कि आपकी उस साधना का क्या शुभ परिणाम रहा ?

महाराजा ने कहा–आप लोगो की शुभ भावना से मैं परिचित हू और उसी दृष्टि से आपने यह जिज्ञासा प्रकट की है किन्तु इस समय मैं आपकी जिज्ञासा का समाधान बतलाने की स्थिति मे नहीं हू। दीवानजी ने फिर कोई आग्रह नही किया और यही पूछा–आप यह फरमाइये कि हमारे लिये क्या आज्ञा है ?

फिर सभी मत्रियो तथा प्रमुख अधिकारियो को भीतर बुला लिया गया, जिन्हे सबधित करते हुए महाराजा ने भलामण दी–मैं समग्र जनता की मनोकामना पूरी करने की भावना से तीन दिन की साधना मे बैठा था और देव का आह्वान किया था। तब देव ने प्रकट होकर जो कुछ बताया, वह आपके, मेरे और पूरे राज्य के लिये शुभ है। आगे के लिये जो कार्यक्रम मुझे बताया गया है, उसको पूरा करने के लिये मुझे कुछ समय तक बाहर जाना पडेगा। सबसे पहले मुझे यहा से दक्षिण दिशा मे जाना होगा। यह सारा कार्य मैं जनता की इच्छा पूरी करने के लिये कर रहा हू।

यह पूछा जा सकता है कि उस समय के जैन नायक कैसे थे और आज के नेताओ का व्यवहार कैसा है ? आज का युग कई दृष्टियो से विचित्र है। किन्तु बुद्धिमान व्यक्तियो को हमेशा एकत्व भावना से रहना चाहिये। एक विचार और एक आचार के अनुसार सभी चल रहे हो तो क्या किसी भी शक्ति की यह हिम्मत हो सकती है कि वह ऐसे अनुशासित लोगो पर कोई अत्याचार कर सके ?

चन्द्रसेन ने सभी लोगों को कहा–इस कार्य को पूरा करने के लिये मुझे कुछ समय तक आप लोगों से दूर रहना होगा। मुझे पूरा विश्वास है कि मेरे

पीछे आप लोग राज्य की सुन्दर व्यवस्था करेगे तथा प्रजा को किसी तरह से कोई कष्ट नहीं देगे। आप सब लोगो की खुशी की मैं शुभ कामना करता हू कि भावनाओ की दृष्टि से सारी प्रजा मेरे साथ रहेगी।

यह मलामण देकर महाराजा ने आज्ञा दी कि उनकी यात्रा के लिये उनका चपल अश्व तैयार करा दिया जाय। वे किसी को भी अपने साथ नहीं ले जायेगे। घोडे पर सवार होकर वे अकेले ही दक्षिण दिशा मे प्रस्थान करेगे।

महाराजा भोजन आदि से निवृत्त होकर प्रस्थान करने की तैयारी करने लगे। तैयारी पूरी हो जाने पर प्रस्थान से पूर्व उन्होंने मगलाचरण किया ताकि आगे के कार्य मे बाधाए न आवे और वह यथायोग्य रीति से सफल हो।

यह पूछा जाय कि आप लोग भी किसी कार्य के आरम्भ मे अथवा कही भी प्रस्थान से पूर्व मगलाचरण करते हैं या नहीं–तो पता नही आप लोगो मे से कितनो के उत्तर हा मे होगे। किन्तु ध्यान रखे कि मन की मजबूती और विश्वास की स्थिरता के लिये ऐसे अवसरो पर अवश्य ही मगलाचरण कर लेना चाहिये। जो इस महामत्र पर पूर्ण श्रद्धा नहीं रखते हैं, वे अज्ञानवश इधर–उधर भटकते हैं परन्तु पाते कुछ भी नहीं है।

महाराजा चन्द्रसेन ने एकाग्रता से मगलाचरण किया तथा घोडे पर सवार होकर दक्षिण दिशा मे चल पडे। कुछ दूरी तक प्रजा जन उन्हे पहुचाने गये और फिर उस ओर टकटकी लगाकर देखते रहे जिस ओर महाराजा का अश्व आगे और आगे बढता जा रहा था।



6

बाह्य दृश्यो अथवा पदार्थों का सभी व्यक्तियो पर समान प्रभाव नहीं होता है। कौन व्यक्ति अपनी किस प्रकार की आन्तरिकता के साथ उस दृश्य अथवा पदार्थ को ग्रहण करता है, उसी रूप मे भिन्न–भिन्न प्रकार का प्रभाव परिलक्षित होता है। यो समझे कि एक भयानक दृश्य एक साथ पचास व्यक्ति देखते हैं। उनमे से कोई ऐसा होगा जिसका हार्ट फेल हो सकता है, किसी की उसे देखकर घिघिया बध जाय तो कोई उससे भयभीत ही न हो। कोई ऐसा भी निकल सकता है जो इस भयानकता का विरोध करने के लिये भी उठ खडा हो। यह भिन्नता प्रत्येक व्यक्ति की आन्तरिकता की सबलता अथवा दुर्बलता पर आधारित होती है। जिसका आत्म बल सुदृढ होता है, वह भयानक से भयानक दृश्य को देखकर भी न तो भयभीत होता है और न ही अस्थिर। वह पूरे स्वस्थ चित्त से उसे देख–परख सकता है तथा स्वय आगे बढकर सबको साथ लेकर निर्भयता का प्रदर्शन भी कर सकता है। जिसके आत्म–बल का सामान्य सा विकास भी न हो अथवा जिसकी दृष्टि ही अपनी आन्तरिकता को पहिचानने की तरफ नहीं मुडी हो, उसका उस समय हार्ट फेल भी हो जाय तो आश्चर्य नहीं।

महाराजा चन्द्रसेन सामायिक साधना से अपनी आन्तरिकता को स्थिर एव निर्भय बना चुके थे। उनके मन में न कोई व्यामोह था न किसी प्रकार का भय। दक्षिण दिशा मे ज्यों–ज्यो उनका द्रुत गति अश्व आगे बढता जा रहा था, त्यो–त्यो उनका मन भी अधिक निर्भय, साहसी होता जा रहा था।

महाराजा दक्षिण दिशा मे एकाकी ही जगलो, पर्वतो और गुफाओ को लाघते हुए आगे से आगे बढे जा रहे थे। भयजनक दृश्य भी सामने उपस्थित हो रहे थे किन्तु उनके मन मे भय का लवलेश भी पैदा नही हो रहा था। देव द्वारा बताई हुई दूरी को पार करने की एक लगन से वे चले जा रहे थे। उनके सामने उद्देश्य को पूरा कर लेने की ही एकाग्रता थी। जब किसी सत्पुरुषार्थ को पूरा करके लक्ष्य सिद्ध करने का सकल्प एक साहसी व्यक्ति का बन जाता हे तब वहा पर किसी तरह की कमजोरी नही रहती है। "कार्य साधयामि वा देह पातिष्यामि वा' का दृढ सकल्प मात्र सामने घूमता रहता है। चन्द्रसेन भी भययुक्त होकर उद्देश्यपूर्ति की एकनिष्ठा से सबल बनकर आगे बढे जा रहे थे। निर्भयता जैसे समग्र प्राण वायु मे सचरित हो रही थी।

महाराजा विचारमग्न थे। वे सोच रहे थे कि मैंने अपना अन्तिम लक्ष्य तो आत्मशुद्धि का बना रखा है, उसे प्राप्त करने के लिए तो एक दिन इस सासारिकता का भी परित्याग करना होगा किन्तु जब तक परिपूर्ण साधना का मार्ग नहीं अपना पा रहा हू तब तक जन कल्याण के लक्ष्य भी पूरे करने होते हैं। मैं अभी सामायिक की समता साधना करता हू तथा श्रावक के बारह व्रतों को पालता हू तो इस समय मेरे आचरण की मर्यादाए इस साधना से सीमित रहती हैं। जब तक मैं एक गृहस्थ और शासक हू तब तक परिवार हित एव जन हित के लक्ष्य भी मेरे सामने रहेगे और उनकी पूर्ति मे भी मेरे पुरुषार्थ का सदुपयोग करना होगा। इस समय मैं व्यापक जनकल्याण के उद्देश्य हेतु ही आगे बढ रहा हू।

इन विचारो के साथ जब चन्द्रसेन महाराजा ने एक भयानक जगल पार कर लिया तो उन्हे अपनी लक्ष्य सिद्धि की ओर अग्रसर होने का हर्ष अनुभव हुआ। उनकी निर्भयता ने उन्हे किसी भी जगली जन्तु से चौंकने नहीं दिया तो उतार–चढाव की दुर्गमता मे भी कहीं बाधित नहीं होने दिया–इस बात का भी उन्हे हर्ष हुआ। उस भयानक जगल को सफलतापूर्वक पार कर लेने के बाद उनकी निर्भयता अधिक तेजस्वी बन गई।

स्वर्गीय आचार्य श्रीमद् गणेशीलालजी म सा की दिनचर्या आपने कभी सुनी होगी। एक बार वे राजस्थान की ओर पधार रहे थे। उस समय मे वे आचार्य पद पर नहीं थे। नवदीक्षित सन्त भी उनके साथ थे। उस वन प्रान्तर में आगे बढते हुए ज्योही उनकी नजर सामने दूर तक गिरी तो उन्होने देखा कि एक विशालकाय सिह सामने से आ रहा था। उस वक्त नवदीक्षित मुनि का ध्यान आया कि कहीं वे डर न जाय अत उनको अपनी बगल मे लेकर सिह की आखो में झाकते हुए वे निर्भयतापूर्वक आगे बढते रहे। हुआ यह कि वह सिह भी शान्त भाव से निकल गया। यह उनकी पवित्र जीवन साधना का अमित प्रभाव था।

इसी तरह वे स्वर्गीय आचार्य एक बार मारवाड प्रदेश मे विहार कर रहे थे। साधु रात्रिकाल मे विहार नही करते हैं ताकि किसी भी प्रकार से हिसा का आचरण न हो जाय। विहार करते–करते सूर्य अस्त होने आ गया, किन्तु किसी गाव आदि की स्थिति समीप नहीं दिखाई दे रही थी। सूर्य अस्त होते ही वे महापुरुष एक वृक्ष के नीचे निर्वद्य स्थान देखकर विराज गये। प्रतिक्रमण ध्यान आदि से निवृत्त होकर वहीं निर्भयता पूर्वक पौढ गये।

शीतकाल का समय था चद्दर पूरे शरीर पर ओढ ली। रात्रिकाल मे उन्हे उस चद्दर पर काफी वजन जैसा महसूस हुआ किन्तु उन्होने समझा कि कोई चूहा वगैरा होगा सो चद्दर को धीरे से हिलाई ताकि वह जन्तु धीरे से नीचे हो जाय। फिर जल्दी उठकर प्रतिक्रमण आदि से वे निवृत्त हुए और कुछ--कुछ हो रहे उजाले मे जब उनकी दृष्टि पास मे मुडी तो देखा कि एक नागराज गोला डालकर बैठे हुए हैं। तब भी वे निर्भय रहे तो नागराज भी शान्त कि ये साधु उसका कुछ भी बिगाडेगे नही। अभिप्राय कि जब आत्म--बल विकसित होता है तथा आन्तरिकता मे सुदृढता एव निर्भयता होती है तो वैसा ही आत्मबली किसी भी परिस्थिति से भयभीत नही होता है। वस्तुत उसकी निर्भयता सामने वाले को भी शान्त और निर्भय बना देती है।

ऐसी तो साधु जीवन की निर्भीकता होती है, किन्तु वे गृहस्थ भी निर्भयता के ऊचे उदाहरण उपस्थित करते हैं जो अपनी अन्तरात्मा को सामायिक की समभावी साधना से दृढीभूत बना लेते हैं। आज भी कोई शुद्ध मन से सामायिक करे, अपनी दृष्टि में समता का तेज भरे और समीक्षण ध्यान का अभ्यास बढावे तो वह भी अद्‌भुत निर्भीकता का धनी बन सकता है। महाराजा चन्द्रसेन भी समता--साधक थे। उनके मन मे सभी प्राणियो के प्रति समान आत्मीयभाव समाया हुआ था। इसी आधार पर वे सोचते थे कि एक आत्मीय को दूसरे आत्मीय से भला भय कैसे हो सकता है ?

महाराजा उस भयानक अटवी को लाघकर जब आग बढे तो उन्हे दूर से एक अति रमणीय स्थान दिखाई दिया। उस समय शाम ढलने वाली थी अत एक स्वच्छ स्थान देखकर महाराजा सामायिक की साधना करने के लिये घोडे से नीचे उतरे। नियम का पालन करने मे उनकी पूरी सतर्कता थी। आज कई भाई--बहिन जो सामायिक नित्य करने का नियम लेते हैं, वे भी छूट की माग करते हैं कि यात्रा वगैरा मे वे नियम का पालन नही कर सकेगे। छूट मागने का अर्थ यही है कि अभी आत्मबल इतना नही बढा है जो किसी भी स्थिति मे नियम पालन करने की सक्षमता पैदा हो जाय। नियम की कठोर पालना तभी हो सकती है जब सकल्प शक्ति पूरी तरह से मजबूत हो। यात्रा मे आपको सामायिक करने मे बाधा महसूस होती है, ऐसा क्यो ? जब शरीर को खुराक देना नहीं रोकते तो आत्मा की खुराक क्यो बन्द कर देते हो ? इसे सकल्प की दुर्बलता ही कहेगे और क्या ? इसके सिवाय कई भाई व्यर्थ की गपशप या ठाले कामो मे समय गुजार देते हैं। सन्त उनको सामायिक करने

की बात कहते हैं तो वे झट से बोल पडते हैं कि समय नहीं मिलता। उनकी ऐसी वृत्ति इसी कारण सामने आती हे कि वे विवेकपूर्वक अपने जीवन का मूल्याकन नहीं कर पाते हैं। चन्द्रसेन के नियम ढीले नही थे। उन्होने अपनी दिनचर्या को कठोर नियमबद्धता से बाध रखी थी। वे एक शिला पर बैठकर सामायिक साधना मे सलग्न हो गये। आनन्द भाव से उन्होने अपनी समभावना को पुष्ट बनाई, अपने अहर्निश के पापो की आलोचना की और अपने आत्मबल को अधिक सुदृढ बनाया।

रात्रि विश्राम के लिये अन्य कोई अधिक सुरक्षित स्थान न देखकर सामायिक पूर्ण करके महाराजा ने वहीं एक तरफ सावधानी से घोडे को बाध दिया ताकि वह जगली जन्तुओ की दृष्टि से सुरक्षित रहकर हरी घास चरता रहे और स्वय एक ऊँचे वृक्ष पर चढकर उसकी ऊँची शाखा पर विश्राम करने लगे। नवकार मत्र का जाप करते रहे और जब नींद आखों को घेरने लगी तो सागारी सथारा लेकर शाखाओ के बीच शरीर को भलीभाति टिकाकर आराम करने लगे।

रात्रि का समय व्यतीत हुआ और प्रात काल मे सूर्य का उदय हुआ तो महाराजा का मन भी नई ताजगी तथा स्फूर्ति से भर उठा। नित्य कर्म से निवृत्त होकर सबसे पहले उन्होने सामायिक की साधना की। आत्मा को खुराक दे देने के बाद उन्होने शरीर को भी खुराक देने का विचार किया। आस-पास मे प्राप्त फल तोडकर उन्होने खाये और तृप्ति पाई। फिर घोडे पर सवार होकर वे निर्देशित दिशा मे आगे बढने लगे।

लगातार तीव्र गति से चलते-चलते वे चम्पा नाम के उस बगीचे के पास पहुँच गये जिसका उल्लेख देवता ने किया था। उन्होने देखा कि वह उतना ही रमणीय एव आकर्षक स्थान है जैसा कि देव ने बताया था। फूलो की क्यारियो के पास होते हुए वे आगे बढे तो उस वापी (बावडी) के समीप भी पहुच गये। सारे सुरम्य दृश्य को उन्होने समता भाव से ही देखा। बावडी पर पहुच कर उन्होने देवता द्वारा दिये गये सभी निर्देशो को भलीभाति याद किये। तदनुसार सूर्यास्त के पहले-पहले सभी कार्यो से निवृत्त हो जाने की उन्होने तैयारी कर ली। घोडे को भी सुरक्षित स्थान पर बाध दिया अपनी आवश्यकताए भी पूरी की तथा सामायिक-प्रतिक्रमण भी सविधि सम्पन्न करके अपनी मानसिकता को शान्त सुस्थिर एव निर्भय बना ली। सूर्यास्त होने के साथ ही वे देव द्वारा बताये वहा के सबसे ऊँचे वृक्ष पर चढ गये और ऊपर

की शाखा पर सावधान होकर बैठ गये, क्योकि उन्हे आधी रात का इन्तजार करके मणिधारी सर्प की करतूते देखनी थीं ताकि वे अपने उद्देश्य की पूर्ति करने वाले कार्यक्रम की सफल क्रियान्विति का भलीभाति निर्धारण कर सके।

ज्यो–ज्यो रात गहरी होती गई, महाराजा चन्द्रसेन की सतर्क सावधानी बढती गई। वे नवकार मत्र का जाप करते रहे। उनके मन मे विचार आया कि वे सोवे या नही। उस विचार के साथ ही उनका निश्चिन्त विश्वास और साहस जाग उठा। उन्होने अपने मन को जैसे कि कडा आदेश दिया कि वह उन्हे आधी रात से कुछ पहले जगादे और शाखाओ के बीच के सुरक्षित स्थान पर सो गये। मन की इतनी मजबूती हो तभी नि शक होकर ऐसा किया जा सकता है।

मन पर इतना कुशल नियन्त्रण कि आधी रात से पहले ही चन्द्रसेन की नीद खुल गई और वे सावधान होकर बैठ गये। वे सोच रहे थे कि एक साधक का जीवन सदा जागृति का जीवन होता है तभी तो उसके लिये कहा जाता है कि वह जागते हुए भी जागता है और सोते हुए भी जागता है। सामायिक की साधना आत्म विकास के रूप मे जिसके जीवन मे प्रवेश पा जाती है, वह फिर सार्वजनिक हित की दृष्टि से जिस कार्य को पूरा करना चाहता है उसका मार्ग सरल बन जाता है। उन्होने यह भी अनुभव किया कि समता की साधना से जो आत्म बल बढता है उसी की सहायता से अद्भुत निर्भयता प्राप्त हो सकती है अत मनुष्य के सत्पुरुषार्थ का मूल माना जाना चाहिये कि आत्मा को बलवती बनाओ।

आत्म–बल अभिवृद्ध होता है आत्म–समीक्षण से। अपने भीतर झाको और देखो कि अपनी आन्तरिकता मे शुभता और अशुभता की कैसी दशा है ? भीतर मे विकार अधिक हैं अथवा सद्भाव ? विकारो पर सद्भावो की विजय के लिये कैसा पुरुषार्थ किया जाना चाहिये ? यह पुरुषार्थ जितने अशो मे सफलता प्राप्त करता जाता है, उतने अशो मे आत्मा का बल भी बढता जाता है और वही आत्मबल सुदृढ आत्म–विश्वास के रूप मे ढलता जाता है। जो आत्म विश्वासी होता है, वही निर्भय भी होता है क्योकि उसे अपने अन्त करण की शक्ति पर पूरा–पूरा विश्वास होता है कि हर तरह की परिस्थिति से सफलतापूर्वक जूझ सकेगा। महाराजा चन्द्रसेन का आत्म–विश्वास भी उच्च कोटि का था और इसी कारण वे अपनी शक्ति पर पूरा भरोसा रखते हुए निर्भय थे। वे नि शक होकर वृक्ष की ऊँची शाखा पर बैठे थे कि अब जो

भी परिस्थिति सामने आती है उसको सावधानी पूर्वक देखे तथा अपने कर्त्तव्य का सुनिश्चय करे।

महाराजा की दृष्टि उस बावडी के भीतरी भाग पर लगी हुई थी। उन्हे देवता के कथन पर अब भी आश्चर्य था कि पानी मे न रहने वाला साप भी पानी मे कैसे रहता है और कैसे मणि की सहायता से पानी मे मार्ग बनाकर बाहर निकलता है ? उन्होने सोचा कि सर्प का निवास शायद बावडी की गहराई मे हो। आधी रात का समय हो रहा था अत वे टकटकी लगाकर एक ही दिशा मे देखे जा रहे थे।

तभी उन्हे दिखाई दिया कि बावडी मे से प्रकाश की किरण धीरे-धीरे बाहर प्रकट हो रही है। उस प्रकाश मे तीक्ष्णता की चकाचोंध भी दिखाई देती थी तो सौम्यता का आभास भी होता था। पानी के बाहर जब वह मणिधारी सर्प प्रकट हुआ तो महाराजा को ऐसा लगा कि जैसे पानी के भीतर तक खुला मार्ग बना हुआ हो किन्तु वही मार्ग सर्प के पूरी तरह बाहर निकल जाने पर जैसे अदृश्य हो गया और पानी समतल रूप से फैल गया। चन्द्रसेन ने मणि के प्रकाश मे देखा कि हकीकत मे सर्प बहुत ही विशाल भी है और विकराल भी। वह धीरे-धीरे बावडी की सीढियो पर होता हुआ ऊपर चढने लगा। उस प्रकाश मे सर्प का गहरा काला रग चमचमा रहा था। देव की वाचा का स्मरण करके महाराजा ध्यानपूर्वक सर्प की गतिविधि का सूक्ष्म निरीक्षण करने लगे।

वह मणिधारी सर्प जब बावडी मे से निकल कर बाहर आया तो चारो ओर उस मणि का तरल प्रकाश इस तरह फैल गया जैसे कि प्रकाश के सागर मे लहरे हिलोरे ले रही हो। तब सर्प सरकता हुआ एक ऊँचे स्थान तक पहुँचा जिसका उल्लेख देव ने किया था। उस ऊँचे स्थान पर पहुँचकर सर्प ने अपने माथे पर से मणि को उतारा जैसे कि कोई अपनी पगडी को उतारता है और उस मणि को उस ऊँचाई पर रख दी जिससे उसका प्रकाश सुदूर क्षेत्र तक विस्तृत हो गया। दूर दूर तक सारा जगल जगमगा उठा। मणि को रखकर वह सर्प निश्चिततापूर्वक वहा से अपने खाद्य की खोज मे रवाना हुआ। जब वह उस वृक्ष के नीचे से गुजर रहा था जिस पर चन्द्रसेन बैठे हुए थे तो उस समय वे चौकन्ने हो गये कि अब यह सर्प क्या हरकत करता है ? देखने मे कोई दुविधा नही थी क्योकि विपुल मात्रा मे प्रकाश फैला हुआ था।

वृक्ष के नीचे से वह सर्प धीरे–धीरे सरक रहा था। महाराजा ने देखा कि उसके पास मे से फुदकते हुए मेढक निकले और दूसरे जन्तु भी गये किन्तु साप ने किसी को भी पकडने की चेष्टा नही की। मेढको को सर्प अपना खास खाद्य मानता है फिर भी उस साप ने उन्हे छोड दिया–यह देखकर महाराजा को आश्चर्य होने लगा। वे सोचने लगे कि उन्होने ऐसे सर्प के बारे मे न तो अब तक सुना है और न ही ऐसे सर्प को देखा है जो छोटे–छोटे प्राणियो का भक्षण न करता हो। सर्प तो छोटे–छोटे प्राणियो को क्या, बडे–बडे महात्माओ तथा महापुरुषो को भी काटने से नही चूकता। स्वय भगवान् महावीर को चण्डकौशिक सर्प ने डसा था। फिर यह सर्प किस किस्म का है– यह राजा को समझ मे नहीं आया। उनकी दृष्टि सर्प की गति के साथ–साथ चल रही थी।

शामा नाम का एक प्रकार का घास होता है, जो जगल मे बिना बीज के ही उगता है। उस घास के डोडो मे छोटे–छोटे दाने होते हैं। ये दाने ऐसे होते हैं जिन्हे अन्न के स्थान पर उपयोग मे ले सकते हैं। मारवाड आदि प्रान्तो मे जहॉ अधिकतर अकाल पडता रहता है, लोग ऐसे दानो की रोटियॉ बनाकर भी खाते हैं। वह सर्प भी सभी प्राणियो को छोडकर आगे उगी हुई शामा घास के बीच मे पहुॅचा तथा उसके दाने चुन–चुनकर खाने लगा।

अब तो चन्द्रसेन के आश्चर्य की सीमा नहीं रही कि क्या ऐसा विकराल सर्प भी शाकाहारी हो सकता है ? फिर विचार आया कि शाकाहारी और शुद्धाचारी होने के कारण ही शायद यह सर्प मणिधारी बन सका हो। ऐसी वृत्ति के कारण ही इसके पास मणि सुरक्षित होगी। यदि वह हिसक और अशुभ परिणामो वाला सर्प होता तो मणि को अपने पास टिकाकर रखने मे सफल नही होता, क्योकि वैसी दशा मे कोई भी इस सर्प का सहार करके मणि को ले गया होता। फिर राजा को विचार आया कि हो सकता है–यह सर्प अपने पूर्व जन्म मे कोई श्रावक रहा हो और इसके उस जन्म के शुभ सस्कार अभी भी सक्रिय बने हुए हो। इस तरह चन्द्रसेन उस सर्प को देखते हुए विविध प्रकार के विचारो मे गोते लगा रहे थे और सर्प अपना खाद्य खोज खोज कर खा रहा था।

सर्प जब तृप्त हो गया तो वह पुन अपनी गति से लौटने लगा। जहॉ मणि को उसने रखा था वहॉ पहुॅचकर पुन उस मणि को धारण करता है और उसी बावडी मे प्रवेश कर जाता है। सर्प के बावडी मे प्रवेश पा जाने पर अटवी

म अन्धकार व्याप्त हो गया। महाराज चन्द्रसेन इतने समय तक सर्प की गतिविधियो को देख रहे थे पर अब जब नागराज उनकी दृष्टि से ओझल हो गया तो महाराज को लगा कि वे स्वप्न लोक से लौटे हो। वे विचार करने लगे, कुलदेवी द्वारा निर्दिष्ट स्थान तक मे सकुशल पहुँच गया हूँ। यहाँ नागराज के दर्शन भी हो गये है। उसकी वृत्ति का भी मैने समीक्षण कर लिया है। उसकी सात्विक वृत्ति से यह स्पष्ट है कि वह स्वय हिसक नही है। सम्भव है किसी के द्वारा त्रास देने पर सर्पराज उसका प्रतिकार करता हो और उसी के कारण यह विषधर कहलाता हो अथवा अपनी जातीय सदृशता के कारण भी विषधर कहला सकता है। कुछ भी हो मुझे इनसे साक्षात्कार करना है। इनके साथ मुझे किस विधि से साक्षात्कार करना इस पर महाराज चिन्तन करने लगे।

महाराज चन्द्रसेन को अपनी कुलदेवी के वचन स्मरण होने लगे। महाराज ने कुल देवी के वचनो पर गहराई से मनन करना प्रारम्भ किया। वे सोचने लगे– कुल देवी ने यहाँ तक पहुँचने के लिए मेरा मार्ग दर्शन समीचीन प्रकार से कर दिया है। किन्तु सर्पराज पर कैसे विजय प्राप्त करना, इसके लिए देवी ने केवल सक्षिप्त मे यही कहा कि उसे स्नेह–सौजन्यपूर्ण सद्व्यवहार से वश मे करना। अत अब मुझे ही इसके लिए कुछ रूपरेखा तैयार करनी होगी।

महाराज का चिन्तन चलता रहा। वे अभी पूर्ण निष्कर्ष की स्थिति मे नही पहुच पा रहे थे कि नागराज के साथ कैसे सद्व्यवहार से पेश आया जाय ? उनके मन मे कई तरह की योजनाए विचारो मे आ जा रही थीं। अन्ततोगत्वा एक योजना पर उनका चिन्तन स्थिर हुआ। दो, तीन बार उस योजना पर सिंहावलोकन कर उस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सर्व प्रथम वे इसी योजनानुसार कार्य करेगे क्योकि इस योजना से नागराज के प्रति अत्यन्त स्नेह एव सद्व्यवहार के साथ बहुमान के भाव भी रहे हुए हैं। अत योजना को अपने मस्तिष्क मे निश्चित कर वे वृक्ष से नीचे उतरे और आवश्यक क्रियाओ से निवृत्त हो अपनी आत्मा को खुराक देने की दृष्टि से सामायिक की साधना मे सलग्न हुए।

सामायिक साधना के माध्यम से वे आत्म–समीक्षण करने लगे सामायिक की साधना आत्म–समीक्षण के लिए सर्वोपरि है। सामायिक मे आत्म–समीक्षण करते हुए वे अपने भूतकालीन 24 घण्टो का विचार करने लगे कि गत 24

घन्टो मे मेरा आत्मा कितना स्वभाव मे रहा और कितना विभाव मे गया। यदि विभाव मे गया तो किस परिस्थिति से गया ? और क्यो गया ? इस प्रकार आत्मा की वृत्तियो का समीक्षण करते हुए यदि क्वचित् आत्मा विभाव मे भटक गया हो तो उसे स्वभाव मे प्रस्थापित करन का प्रयास करने लगे।

बन्धुओ ! आप भी सामायिक कर रहे हैं। मुहपति मुह पर बाध रखी है। आसन भी बिछा रखा है। शरीर पर से सिलाई किये हुए वस्त्र भी आपने उतार रखे हैं। शरीर को चद्दर से आवृत कर लिया है। कई मेरे भाई सामायिक मे सिलाई के वस्त्र उतारने मे भी हिचकिचाते हैं, तो कई मुहपति मुह पर लगाने मे सकोच करते हैं। पर याद रखिये यद्यपि यह द्रव्य सामायिक कही जाती है, पर भाव सामायिक के लिए द्रव्य सामायिक भी एक आवश्यक अग है। इसका भी मन पर बडा मनोवेज्ञानिक असर पडता है। इसलिए यदि कोई ऐसा सोचता हो कि यह द्रव्य सामायिक है इससे क्या फायदा, हम तो भाव से सामायिक करना चाहते हैं उसका यह सोचना उचित नहीं है। उसको ऐसा नही सोचना चाहिये। जैसे स्कूल मे पढने वाले विद्यार्थी (Student) के लिए स्कूल का युनिफार्म आवश्यक होता है उसी तरह आध्यात्मिक साधना मे आरूढ होने वाले को भी तदनुरूप युनिफार्म/परिधान का अवश्य विवेक रखना चाहिये। भरत चक्रवर्ती को अरिसा भवन मे केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया था। उनकी मोक्ष भी निश्चित थी। उनके लिए घर और जगल, निर्वस्त्र और सवस्त्र कोई महत्व नही रखता था फिर भी आध्यात्मिक अनुशासन मे कही अविधि न हो एतदर्थ देव दुष्य परिधान को स्वीकार कर वे राजमहलो से चल पडे थे।

उस महान् धर्म साधना का छोटा सा रूप ही सामायिक है। इस सामायिक मात्र से आप सब प्राणियो मे ऐसा अनूठा सद्‌भाव जगा सकेगे कि जिसके सुन्दर रूप से आकर्षित होकर देवता भी आपको नमस्कार करने लगेगे। आपने सुना ही होगा कि कुण्ड्कौलिक श्रावक की सामायिक बडी अद्‌भुत होती थी। वह अपने शरीर के सारे वस्त्राभूषण को उतार कर अलग रख देता था और चिन्तन करता था कि इन सब सासारिक चीजो के प्रति मेरा कोई ममत्व भाव नहीं, क्योकि मैं तो साधु-अवस्था के समान सामायिक व्रत मे बैठ रहा हूँ। जैसे साधु सभी अट्‌ठारह पापो का तथा सम्पूर्ण परिग्रह का परित्याग करता है, इसी तरह सामायिक काल मे साधक का मूर्छा भाव भी समाप्त हो जाना चाहिये। आप सोचिये कि जब आप सामायिक मे बैठते हैं तो क्या मूर्च्छा भाव का परित्याग कर लेते हैं। सामायिक मे बैठे हैं तो गहने,

कपड़ा की बात छोड़िये आपकी नजर मे पड जाय कि कोई आपकी पुरानी चप्पलो को चुराये हुए चला जा रहा है– उस पर भी क्या आप मानसिक स्थिरता बनाये रख सकते है ? यह आप ही के चिन्तन का विषय है। कुण्डकोलिक श्रावक जब सामायिक मे बैठा हुआ था तो देवता ने उसके मूर्च्छा भाव की परीक्षा ली। उसके बहुमूल्य वस्त्रो तथा आभूषणो को देवता ने देव माया से हस्तगत करके आकाश मे से उन्हे दिखा–दिखाकर उस श्रावक का ध्यान भग करने लगा किन्तु उसकी सारी कोशिश व्यर्थ गयी। श्रावक का तो रोम–रोम सामायिक के रस मे भिदा हुआ था उसका ध्यान ही नही गया कि कब देव आया और कैसे वह उसके वस्त्राभूषण छीनकर उसमे ध्यान भग की चेष्ट कर रहा था ? फिर उस देव ने उस श्रावक के सामने उपस्थित होकर कहा कि गोशालक का मत सही है और महावीर का मत गलत है। फिर भी श्रावक के मुख पर क्रोध का लेश मात्र भी अश नही आया। उसके मुख पर तो तब भी समत्व की आभा ही खेलती रही। अन्त मे देव ने अपनी पराजय स्वीकार की तथा श्रावक के चरणो मे अपना माथा टेक दिया।

देव दर्शन की ऐसी ही साधना पद्धति के अनुसरण करने वाले थे महाराज चन्द्रसेन।

महाराज चन्द्रसेन भी द्रव्य सामायिक का उपहास करते थे। पर जब से उन्होने यह जान लिया कि द्रव्य सामायिक भाव सामायिक की पूरक है तब से वे स्वय द्रव्य सामायिक यानी सामायिक के योग्य परिधान स्वीकार कर सामायिक साधना करने लगे थे।



7

कोई भी कार्य करने की दो पद्धतिया हो सकती है। एक तो यह कि सामने वाले के ज्ञान–अज्ञान अथवा स्वीकृति–अस्वीकृति का कोई ध्यान रखे बगैर मनमाने ढग से अपने काम को करवा लेना, चाहे उसमे सामने वाले के साथ अन्याय या अत्याचार ही क्यो न करना पडे ? दूसरी पद्धति यह हो सकती है कि पहले तो आप स्वय अपने कार्य की समीक्षा करे और उसकी सार्वजनिक उपयोगिता को जाचे। उस कसौटी पर खरे उतरने के बाद आप अपने कार्य का अभिप्राय सामने वाले को समझावे तथा उसे सहमत करे। उसके बाद आपसी समझ एव शान्ति के साथ ही काम को पूरा करे। दोनो पक्षो की समझपूर्ण सहमति से किया गया काम जहा किसी प्रकार की दुर्भावना अथवा कटुता पैदा नही करता तो वहा एक कार्य को पूरा करने के लिए एक की बजाय दोनो पक्षो का सुन्दर सहयोग मिल जाता है। दूसरी पद्धति की सफलता समत्व योग की सही साधना पर निर्भर करती है। महारजा चन्द्रसेन ने अपनी समता एव सौम्यता के कारण दूसरी प्रकार की पद्धति ही अपनाई।

सामायिक साधना के पूर्ण हो जाने पर वे अपनी योजनानुसार अश्वारूढ हो निकटवर्ती किसी नगर मे पहुचे। वहा से सुगन्धित पुष्पो की टोकरिया, इत्र, गोरस, केशर, मिश्री, अगरबत्तिया एव अन्य सुगन्धित पदार्थ लेकर वे पुन चम्पा वाटिका के पास पहुचे। उन्होने वाटिका के निकटवर्ती सारे भू–भाग को साफ किया। पानी छिडककर उस भू–भाग को शीतल किया। इसके पश्चात् सर्प आने के कुछ समय पूर्व व्यवस्थित ढग से फूलो को बिछाया। फिर वहा इत्र का भी छिडकाव किया और स्थान–स्थान पर सुगन्धित पदार्थ बिखेर दिये। जिससे आस–पास का सारा वन प्रतर सुरभित हो उठा। अगरबत्तिया लगा देने पर वह सौरभ और महक उठी।

सर्पराज के निकलने का समय नजदीक आ रहा था, उन्होने स्फूर्ति के साथ केशर और मिश्री को शीतल गोरस से घोलकर गोरस के कई कटोरे बिछाये गये फूलो पर भिन्न–भिन्न स्थान पर रख दिये और स्वय वृक्ष पर चढ कर नागराज का इन्तार करने लगे।

कुछ ही समय मे नागराज कल की भाति आज भी वापी से बाहर निकला। बाहर के सौरभमय वातावरण से नागराज निर्लिप्त नहीं रह सका। वह उस भीनी–भीनी सुगन्ध पर मुग्ध हो गया और उन फूलो पर इधर से

ऊपर लौटने लगा। कभी वह फूलो पर लौटता तो कभी दूध के कटोरो से सुगन्धित मधुर पेय पीने लगता। इस क्रिया मे वह इतना मुग्ध हो गया कि वह अपने आपको भूल गया। महाराज चन्द्रसेन नागराज की इस प्रसन्नता का अनुमान लगा रहे थे। जब उन्होने देखा नागराज अब पूर्णतया प्रसन्नता की मुद्रा मे हैं तो वे धीरे से वृक्ष से नीचे उतरे और मणिधर को नमस्कार कर निवेदन करने लगे– आज मेरे अहोभाग्य हैं कि आपके दर्शन हुए। मैं आज अपने आपको कृत पुण्य एव धन्य–धन्य मान रहा हू।

महाराज को अपने सामने खडा देखकर नागराज अपलक उन्हे निहारने लगा, इससे महाराज ने अनुमान लगाया कि शायद यह मेरा परिचय जानना चाहता हो। तब महाराज कहने लगे–हे महामहिम नागराज ! आप यदि मेरा परिचय जानना चाहते हो तो वह यह है कि इस भारत की सुप्रसिद्ध चम्पा नामक नगरी की जनता का मैं सेवक हू, यद्यपि जनता ने मुझे अपना शीरस्थ मान रखा है तथापि मैं तो अपने आपको उसका सेवक ही मानकर चल रहा हू। आपके दर्शनो का भी सौभाग्य उस जनता की भावना से ही मिला है। जनता की भावना थी कि मेरे पीछे भी उनकी सेवा करने वाला कोई मेरे जैसा व्यक्ति उनको मिले। उनके इस आग्रह के कारण कुलदेवी द्वारा प्रेरणा पाकर मैं आपके दर्शनो को उपस्थित हो गया। इस सेवक को चन्द्रसेन नाम से पहचाना जाता है।

बन्धुओ विचार कीजिए एक राजनपति राजा चन्द्रसेन अपना परिचय किस रूप मे दे रहे हैं। वे अपने को जनता का सेवक मान कर चल रहे हैं। आज के मेरे भाई यदि छोटी सी कोई सरकारी पोस्ट पा लेते हैं तो आसमान मे उडने लगते हैं। अपने आपको बहुत बडा आफिसर अथवा नेता मानकर चलने लगते हैं। यह क्या स्थिति है ? पर दोष उनका नहीं हैं। वे क्या करे ? उनको वैसा ही आदर्श मिला और वैसी ही शिक्षा। मुझे एक रूपक याद आ रहा है। उसे आपके समक्ष रख दूँ, आप स्वय आज की शिक्षा पद्धति का पहचान करोगे।

एक पटेल ने अपने पुत्र को खूब अध्ययन करवाया। पटेल विचार करता था कि मैं तो निरक्षर रह गया पर मेरा बच्चा अनपढ नहीं रहे जितना [illegible] उसे पढाऊगा। इसी भावना से वह उसकी पढाई की व्यवस्था का पूरा ध्यान रखता था। उससे सम्बन्धित हर आवश्यकता को पूर्ण करता था। [illegible] साथ-साथ वह अपने पुत्र से समय–समय पर पूछता भी रहता

था कि आज स्कूल मे क्या पढाया ? इस तरह उस पुत्र की पढाई चलती रही, उसने कॉलेज की सारी डिग्रिया प्राप्त करली। जिससे सरकारी अच्छी पोस्ट भी मिल गई। उसने कुछ ही समय मे नया बगला भी बना लिया, शादी भी हो गई, शादी के प्रसग से उसने पिता से स्वीकृति लेकर नये बगले मे अपने साथियो को प्रीतिभोज–जिसे आप लोग टीपार्टी कहते हैं, देने की तैयारी की। आमन्त्रित सज्जन भी अच्छी पोस्टो पर कार्यरत थे। कोई प्रोफेसर था, तो कोई राजकीय अधिकारी, न्यायाधीश आदि। यथासमय सब निर्देशित स्थान पर पहुच गये। उस पटेल ने विचार किया आज मेरे पुत्र ने बडे–बडे व्यक्तियो को बुलाया है। इसलिए मुझे भी वहा उपस्थित रहना चाहिए। जिससे उन सबसे मेरा परिचय करवायेगा। इस मनसूबो के साथ वह भी अपनी पटेलाई पोशाक सजाकर बगले मे पहुचा। नई फैशन के अनुसार मेज (डाइनीग टेबल Dyning Table) के चारो तरफ कुर्सिया पडी थीं। उनमे से एक–दो कुर्सी खाली पडी थी। वह पटेल एक कुर्सी खींचकर उस पर बैठ गया। उसका बैठना ही था कि एक बडे ऑफीसर ने उस पटेल के पुत्र से उसका परिचय पूछा। वह पटेल का पुत्र विचारने लगा, इनका क्या परिचय दू ? यदि इनको मेरा पिता बताऊगा तो मेरी हसी होगी। यदि अन्य परिचय दूगा तो पिताजी कूपित हो सकते हैं। अत उसने अग्रेजी मे परिचय दिया–He is my servant, पटेल ने जैसे ही यह परिचय सुना तो वह आग बबूला हो उठा, यद्यपि वह अग्रेजी का विशेष जानकार नही था, पर अपने पुत्र से ही जब वह स्कूल के अध्ययन के विषय मे पूछता था, तो उस समय वह बतलाता था कि आज हिन्दी मे यह बतलाया, इतिहास मे यह बतलाया, अग्रेजी मे यह बतलाया आदि। उस समय वह अग्रेजी के कुछ शब्दो को बोल कर भी बताता था कि आज अग्रेजी मे बतलाया कि पिता को फादर (Father) कहते हैं, माता को मदर (Mother) कहते हैं, नौकर को सरवेन्ट (Servant) कहते हैं आदि। उनमे से कुछ शब्द उसके पिताजी को याद रह गये थे, जिससे उसने जान लिया कि मेरा वास्तविक परिचय नहीं दिया जा रहा है बल्कि मुझे नौकर ठहराया जा रहा है। क्या मैंने इस दिन के लिए ही इसे पढाया था ? वह कुर्सी से उठा और अपने पैर की जूती खोलकर पुत्र के सिर पर दे मारी। यह अनहोनी घटना थी। इस घटना ने सबको स्तम्भित कर दिया। एक व्यक्ति के मुह से सहसा यह शब्द निकले, अरे ! यह क्या ? पटेल ने निर्भयता के साथ कहा–साहब यह क्या ? यह मैं बताता हू। मैंने इसको इसलिए नहीं पढाया था कि सभ्य व्यक्तियो के समक्ष मेरा इस प्रकार

परिचय दे। साहब, मैं इसकी माँ का खसम हू।

यह सुनते ही सारे अतिथि पटेल के पुत्र की तरफ मुह करके कहने लगे–आपने ऐसा क्यो किया ? आप यदि इनका सही परिचय देते तो इसमे क्या हर्ज था ?

बन्धुओ, विचार करिए, यह कैसी शिक्षा है ? इसलिए नीतिकारो ने कहा है–

द्विसप्तति कलाज्ञान, तदप्यज्ञो जनोभवेत्
सर्वकलाप्रधाना या, धर्मकला न धारिता

यानी पुरुषो के योग्य बहत्तर कलाओ का ज्ञान हो जाने पर भी सर्वकला मे प्रधान धर्मकला का जिसने ज्ञान नहीं किया हो तो वह पुरुष अज्ञ ही रहता है। वह वस्तुत विज्ञ नहीं हो सकता।

महाराज चन्द्रसेन अन्य कलाओ के साथ–साथ धर्मकला मे भी प्रवीण थे, समभाव की आराधना मे तत्पर रहते थे। अत वे महाराज होते हुए भी अपने आपको जनता का सेवक बतला रहे हैं।

सर्पराज महाराज चन्द्रसेन का परिचय पाकर बडा प्रसन्न हुआ। उसने तत्काल सर्प से मानव का रूप बनाया और कहा– महाराज, मैं आपका स्वागत करता हू। आपका परिचय पाकर मैं आपके यहा आने के उद्देश्य को जान गया हू। मेरे पास वाली मणि प्राप्त करने से आपकी एव आपकी प्रजा की मनोकामना फलीभूत होगी। कुलदेवी द्वारा इस प्रकार का आपको निर्देश दिये जाने से आपका यहा पर्दापण हुआ है। इस मणि को प्राप्त करने के लिए अनेक दुष्ट व्यक्ति यहा पर आये और उन्होने हिंसात्मक तरीका अपनाकर मणि हथियाने के कई प्रयास भी किये, पर वे सफल नहीं हो सके। किन्तु आपने अपने सद्व्यवहार से मेरा अन्तर्मानस जीत लिया है। इतना कह नागराज ने पास वाली मणि को चन्द्रसेन के हाथ में थमाते हुए कहा–यह लीजिये, यह मणि आपकी मनोकामना की सफलता में सहयोगी होगी। महाराजा चन्द्रसेन कुछ समझ नहीं पा रहे थे कि कुछ क्षण पहले यह सर्प के रूप में थे, अब यह मानव के रूप हैं। यह मणि भी सहसा मेरे हाथ में सौंप रहे हैं। कही यह सब मायाजाल तो नहीं है। चन्द्रसेन को गभीर मुद्रा में देखकर नागराज पुन कहने लगा। महाराज ! मैं जन्मजात सर्प नहीं हू। मैं विद्याधर श्रेणी में रहने वाला विद्याधर हू। मैंने अन्यान्य विद्याओ के साथ नाग विद्या भी सिद्ध कर रखी है। मेरा सर्प रूप बना कर रहने के पीछे भी रहस्य

है। वह यह है कि मेरे एक सर्वगुण सम्पन्न पुत्री है। उसने जैसे ही यौवनावस्था मे पैर रखा, अनेक विद्याधर राजा एव राजकुमार उसे प्राप्त करने के प्रयास करने लगे। सयोगवश एक बार विशिष्ट ज्ञानी जघाचरण मुनि के दर्शनो का लाभ मिला। तब मैंने उनसे मेरी पुत्री का भविष्य जानना चाहा, तब उन्होने अपने ज्ञान का उपयोग लगा कर बतलाया कि मेरी पुत्री का विवाह चम्पा देश के महाराजा चन्द्रसेन के साथ होगा। किन्तु इसके लिए मेरे को चम्पा वाटिका पर आपका इन्तजार करते हुए रहना पडेगा। जिससे मेरी पुत्री विश्वसुन्दरी की भी सुरक्षा हो सकेगी। इस पर मैंने यह भी जानना चाहा कि चम्पावापी पर उनके आगमन की सूचना मे कैसे जान पाऊगा। तब मुनिश्री ने मुझे बतलाया कि चन्द्रसेन विलक्षण प्रतिभा का धनी है। उनका आगमन उनके सद्व्यवहार से ही आपको ज्ञान हो जायेगा। इसके लिए आपको चिन्ता करने की आवश्यकता नही। तदनुसार मैं तब से अपनी पुत्री विश्वसुन्दरी के साथ यहॉ रह रहा हू। इतना कह नागराज चुप हो गये।

नागराज ने कुछ क्षणो के पश्चात् पुन बोलना प्रारम्भ किया– आपने यहॉ आकर मेरे पर बडा उपकार किया है। जब से मैंने उन विशिष्ट ज्ञानी महात्मा के दर्शन किये हैं तब से मेरा मन ससार से उचट गया है। मैं सर्व विरति चारित्र स्वीकार करना चाहता था पर पुत्री का उत्तरदायित्व होने से इतने समय तक रूका रहना पडा है। मैंने अपने मन मे दृढ सकल्प कर रखा था कि पुत्री के अनुरूप योग्य वर मिलते ही पुत्री का उत्तरदायित्व उस पर सौंपकर मैं सयम स्वीकार कर लूगा। तदनुसार आप मेरी पुत्री के लिए सब तरह से सुयोग्य वर हैं। अत अब आप इस मणि के माध्यम से इस जलाशय (वापी) मे प्रवेश कर मेरी पुत्री विश्वसुन्दरी के साथ पाणिग्रहण करे। यह मणि मैं आपको दहेज रूप मे ही दे रहा हू। क्योकि मैं अब यही से अकिचन होकर आत्म साधना के लिए रवाना होना चाहता हूँ, पर हा, एक बात और आपको बता देना चाहता हूँ कि मेरी पुत्री बडी बुद्धिमती है। वह जो कुछ कहेगी अथवा करेगी आपके हित के लिए कहेगी, करेगी। इसलिए उसकी किसी बात को न मानने से कभी आप दोनो पर भयकर विपत्ति के बादल भी मडरा सकते हैं।

चन्द्रसेन ने सारी बात ध्यान से सुनी और विचार किया कि शायद कुलदेवी द्वारा आगे का रहस्य प्रकट न करने का यही आशय हो कि मैं इस मणि और कन्या को स्वीकार करके ही जनता की भावना की पूर्ति कर सकूँगा। चन्द्रसेन ने भी तब भाव विह्वल होकर उत्तर दिया–आप साधना के

क्षेत्र मे तुरन्त ही अग्रगामी होना चाहते हैं। अत मेरे अग्रज हो ही गये है। ऐसी अवस्था मे मैं आपकी आज्ञा को कैसे टाल सकता हूँ। इतना कह नरराज विद्याधर राजा के सन्मुख नत मस्तक हो गया।

राजा की स्वीकृति से वह नागराज गद्‌गद् हो गया था कि अब अपने उद्देश्य पूर्ति की दिशा मे तत्क्षण प्रस्थान कर सकता है। उसने आभार पूर्वक चन्द्रसेन को गले लगाया और कहा—मैं आपकी स्वीकृति से बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ। क्योंकि इससे मुझे तुरन्त ही आत्म—कल्याण की साधना आरम्भ करने का अवसर मिल गया है। मैं हृदय से आपका कृतज्ञ रहूगा।—अब आप मेरे निर्देश को ध्यान पूर्वक सुन लीजिये। आप अभी ही इस मणि को अपने हाथ में रख लीजिये और बावडी की सीढियॉ उतर कर निर्भयतापूर्वक पानी मैं घुस जाइये। मणि आगे से आगे मार्ग बनाती रहेगी और आपको सीधे मेरे भव्य भवन मे पहुँचा देगी। उस भवन मे अकेली मेरी कन्या विश्वसुन्दरी आपको मिल जायेगी। बस, उसके बाद आगे का सारा मार्गदर्शन वह आपको करा देगी।- अब आप मुझे अनुमति दीजिये कि यही से मैं प्रतिज्ञा पूरी करने की दिशा मे बढ चलूँ।

इतनी शीघ्रता का अनुमान चन्द्रसेन को नहीं था अत कुछ हडबडा कर उन्होंने कहा—क्या आप हमारे शुभ विवाह को भी अपनी ऑखो के सामने सम्पन्न नही करवायेगे ? हम दोनो विवाह सूत्र मे बन्ध कर आपका आशीर्वाद तो लेना चाहेंगे।

विद्याधर ने भी भावुक होकर कहा—जब आपने अपनी विवाह हेतु स्वीकृति दे दी है तो मेरे आत्म—विकास मे भला आप जैसा समत्व साधक व्यर्थ का विलम्ब क्यो करना चाहेगे ? जब अन्त करण वैराग्य भावो से ओत—प्रोत हो तब एक क्षण का भी विलम्ब उचित नही है। भगवान् ने क्या कहा है—क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो। जब तक जिम्मेदारी मेरे सिर पर थी, मैं बन्धा हुआ था किन्तु जब आपने मुझे उससे मुक्त कर दिया है तो फिर पूरी तरह से ही मुक्त क्यो न करदें ? मेरी पुत्री तो सदा ही मेरे आशीर्वाद तले ही बडी हुई है और उसके लिए आप जैसा वर पाकर आप समझ सकते हैं कि मैं कितना हर्ष विभोर हूँ ? इसी क्षण मे मैं आपको भी अपना हार्दिक आशीर्वाद दे देना चाहता हूँ। आप दोनो को यो समझिये कि अभी मैं एक साथ आशीर्वाद दे रहा हूँ कि आप दोनों का जीवन एकीभूत होकर आपकी प्रजा के लिए परम कल्याण का साधन बन जाय।

आशीर्वाद की मुद्रा मे विद्याधर ने महाराज चन्द्रसेन के मस्तक पर हाथ रखा और अपनी स्नेह पूर्ण मुस्कान बिखेरते हुए वह उसी समय आकाश मार्ग से उड चला।

उस विद्याधर की भावना कितनी उत्कृष्ट थी ? क्या आज के धर्मात्मा भाई उसकी उमग को समझते हैं ? आप अपनी बात भी छोडिये, लेकिन कदाचित् आपके परिवार का कोई सदस्य भावपूर्ण यह निश्चय करलें कि मुझे अब ससार मे नही रहना है तो क्या आप उसकी उमग को पूरी करने हेतु तुरन्त तैयार हो जाते हैं ? यदि आपकी पुत्री यह कहे कि मुझे तो शादी नही करनी तथा दीक्षा लेनी है तो क्या आप उसके कथन को शीघ्र स्वीकृति दे देने की भावना रखते हैं ? यह भी छोडिये, लेकिन कोई आपके परिवार मे विधवा बहिन हो तो वह अपने उत्कृष्ट वैराग्य मे दीक्षित होना चाहे, तो क्या उसके मार्ग मे भी आप आडे खडे नही हो जाते हैं ? तरह-तरह के बहाने बनावेगे और दीक्षा की आज्ञा को आगे से आगे धकेलते रहेगे। यह नहीं सोचते कि कब कोई काल का ग्रास बन जायगा और दीक्षा के मार्ग मे व्यवधान बनकर क्या आप किसी के सयमी जीवन के प्रति खिलवाड नही कर बैठेगे ? काल की सवारी पहले ही आगई तो उसके और आपके सारे मनसूबे धरे ही रह जाते हैं। कोई व्यक्ति इतने अज्ञानी होते हैं कि वे आसानी से किसी भी भव्य आत्मा को अपने उत्थान के मार्ग पर निकलने ही नहीं देते हैं। विद्याधर के उत्कृष्ट विचारो को देखिये कि कन्या के लिये योग्य वर प्राप्त होते ही उसने एक क्षण के लिये भी सासारिकता मे ठहरे रहना उचित नहीं समझा। यहॉ तक कि अपनी कन्या का विवाह अपने हाथो रचाने का मोह भी उसने नही किया।

महाराजा चन्द्रसेन के इस हेतु आग्रह पर भी विद्याधर ने भगवान् महावीर के आदर्श वाक्य का ही उल्लेख किया था कि अच्छे काम में लगने के लिये क्षण मात्र का भी विलम्ब नही करना चाहिये। आप सोचिये कि दीक्षा लेने वाला तो एक क्षण का भी विलम्ब नही करना चाहता है किन्तु दीक्षा की आज्ञा देने वाला क्षणों की बजाय उस वैरागी या वैरागिन के कई वर्ष बरबाद कर देता हे। क्या आप सोच सकते हे कि उस प्रवृत्ति से कितने निकाचित अन्तराय कर्मों का बध हो सकता है ? क्या आप भगवान् के आदर्शों को नहीं मानते ?

यहॉ पर विद्याधर की आत्मा भी शुभ भावो से ओत-प्रोत थी तो चन्द्रसेन की आत्मा भी साधना मे रगी रहने के कारण आत्मकल्याण मे अपना सहयोग देने के प्रति जागरूक थी। जब आग्रह करने के बाद भी विद्याधर

ने दीक्षा के प्रति अपनी अति उत्कट अभिलाषा व्यक्त की तो चन्द्रसेन ने उसमे किसी तरह की बाधा उपस्थित नही की। वे हठ कर सकते थे कि विवाह का अनुष्ठान तो वे पूर्ण करके ही जावे किन्तु किसी भी हलुकर्मी आत्मा की उडान को रोकना किसी भी साधक आत्मा का कर्त्तव्य नहीं है। इसी कारण उन्होने उसी क्षण विद्याधर को उडने दिया।



8

विद्याधर तो तत्काल दीक्षा ग्रहण करने हेतु अपने गुरु मुनि के पास पहुँचने के लिये आकाश मार्ग से उड गया किन्तु उसकी साधना तत्परता से महाराजा चन्द्रसेन अत्यधिक प्रभावित हुए। उनका श्रावक हृदय भी मनोरथ चिन्तन मे लीन हो गया। उनका यह चिन्तन चलने लगा कि वह दिन धन्य होगा जब मैं भी इसी तरह ससार के समस्त बन्धनो को त्यागकर आत्म–कल्याण हेतु साधु धर्म को अगीकार कर लूँगा।

इस आन्तरिक चिन्तन के साथ ही उन्हे उस समय के तात्कालिक कर्त्तव्य का ध्यान आया। अब तो उनका अपना उद्देश्य तथा उस विद्याधर का दायित्व एकरूप हो गया था, अत उन्होने विश्वसुन्दरी के पास पहुँचने का उपक्रम किया। उस ऊचे स्थान से उन्होने वह मणि हस्तगत की तथा उसे लेकर वे बावडी की सीढियो पर नीचे उतरने लगे। जब वे जल के किनारे पहुँच तो मणि हाथ मे होने की वजह से पानी के बीच स्वत ही मार्ग बन गया आर व उस मार्ग पर चलते हुए विद्याधर के भवन मे प्रविष्ठ हो गये।

चन्द्रसेन ने देखा कि भवन जितना विशाल है, उतना ही सादगी से राजा हुआ हे। वे भीतर तक गये तो उन्हे एक कक्ष मे विश्व सुन्दरी सामायिक साधना म सलग्न दिखाई दी।

विश्वसुन्दरी भी अपने पिता के सुसस्कारो की छाया मे पली पोषी थी इसलिये वह भी सामायिक साधना का निरन्तर अभ्यास करती थी। वह कुमारिका थी किन्तु युवावस्था को प्राप्त थी या यो कहे कि प्रोढ यौवन काल म थी क्याकि उसके पिता योग्य वर की खोज मे लगे हुए थे। किसी भविष्यवक्ता ने जब उस विद्याधर को भविष्यवाणी की कि उसकी कन्या के लिये योग्य वर उस चम्पा नामक बगीचे मे मिलेगा तो तब से विद्याधर ने उस बगीचे की बावडी के तले अपना भवन बनाकर निवास करना आरम्भ कर दिया। उसको उस भविष्यवक्ता ने यह भी बता दिया था कि चन्द्रसेन महाराजा किस निमित्त से चम्पा बगीचे मे पहुँचेगे। उस दृष्टि से उस विद्याधर ने सदा सर्प के रूप मे मणि लेकर बाहर निकलने का क्रम बनाया। भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई और बताये हुए दिन ही उसकी महाराजा चन्द्रसेन से [illegible] बगीचे मे भेट हो गई।

समय की विचित्रता देखिए कि चन्द्रसेन तो उस सर्प रूपी विद्याधर [illegible] की उत्सुकता के कारण बात करना चाहता था तो

विद्याधर उक्त भविष्यवाणी के आधार पर महाराजा चन्द्रसेन से भेट करने का उत्सुक था। दोनो की उत्सुकता का एक सगम हो गया। विश्वसुन्दरी को भविष्यवाणी की तो जानकारी थी किन्तु यकायक चन्द्रसेन के उसके भवन मे प्रवेश करने से वह हडबडा गई। वह सोचने लगी कि यह अजनबी आदमी कौन हैं ? उसके मन मे यह आशका भी पैदा हुई कि न जाने किसी ने उसके पिताजी की घात करके मणि प्राप्त करली हो और वैसा हिसक पुरुष उस मणि की सहायता से यहा घुस आया हो।

किन्तु विश्वसुन्दरी बुद्धिशालिनी और विद्या सम्पन्न थी। प्राचीन काल में कन्याओ को चौसठ कलाओ की शिक्षा दी जाती थी। वे स्वावलम्बन का पाठ भी पढती थीं तथा अपने सामान्य व्यवहार मे वे अबला नहीं, किन्तु [illegible] के रूप मे दिखाई देती थीं। आज उन कलाओ की [illegible] है ? क्या आज की कन्याएँ सबला हैं या अबला ? [illegible] अकेली जाना होता है तो साथ में कोई पुरुष चाहिए। [illegible] साहस नहीं होता है। इसके सिवाय कोई साहस [illegible] दुस्साहसी हो जाती हैं यह आप लोग ही जानें। वर्तमान [illegible] प्रकार के सास्कृतिक कार्यक्रमो का क्रम चला है [illegible] प्रकार से खुले मचों पर कन्याओ के नृत्य दिखाये [illegible] नैतिक सस्कृति के अनुकूल नहीं होते हैं। आज के [illegible] इस तरह स्टेज पर नाचती हुई देखकर खुश [illegible] कैसा कुप्रभाव उनके जीवन पर पडता है [illegible] नहीं कर पाते हैं, फलस्वरूप चरित्र सम्बन्धी [illegible] जाकर दु खभरी परिस्थितिया पैदा हो [illegible] कला है। पहले भी यह कला कन्याओं [illegible] नृत्य अन्य पुरुषों के समक्ष नहीं कराया [illegible] बना रहे। विश्वसुन्दरी कलाओं [illegible] शालीन स्वभावी थी। उसने चन्द्रसेन [illegible] तो वह सावधान हो गई। अब [illegible] अत अपनी साधना समाप्त कर [illegible] हाथ मे लेकर वह चन्द्रसेन क [illegible] पूछा–बिना पूछे मेरे भवन में [illegible] मेरे पिताजी की मणि कैसे [illegible] उसने नवागन्तुक के सामने [illegible]

चन्द्रसेन उस वीरबाला की तरफ देखते हुए कुछ देर मन्द–मन्द मुस्कराते रहे, बोले कुछ नही। विश्वसुन्दरी गरज उठी–यदि आपने किसी धूर्तता अथवा क्रूर कर्म से मेरे पिताजी की मणि प्राप्त करली है और अब इस भवन पर अपना अनुचित अधिकार जमाने के लिए आने का दुस्साहस किया है तो सावधन हो जाइये और पहले मुझ से दो–दो हाथ कर लीजिये। मैं वीर कन्या हू और वीरता के साथ आत्मरक्षा करने की कला जानती हू। आप किसी भ्रम मे न रहे।

चन्द्रसेन भी चरित्र सम्पन्न पुरुष थे। वे परस्त्री को माता और बहिन के समान ही समझते थे। यद्यपि वहा पर उस समय वे भिन्न परिस्थिति मे खडे थे। वे जानते थे कि इस युवा रूपवती के साथ उनका विवाह होना है। फिर भी उस समय सम्पूर्ण भवन मे विश्वसुन्दरी के एकाकी होने के बावजूद उनका मन तनिक भी विचलित नहीं हुआ। जब वह वीरबाला युद्ध करने के लिए सामने खडी हो गई तो उन्हे मन ही मन प्रसन्नता हुई कि नारी हो तो ऐसी जो आत्मरक्षा मे सन्नद्ध हो। अपनी भीतरी प्रसन्नता को उन्होने मात्र अपनी मुस्कान मे ही प्रकट की। उसी तरह मन्द–मन्द मुस्कुराते हुए वे बोले– तुम किस के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो गई हो ? क्या तुम अतिथि का महत्त्व भी नही जानती हो ? मैं तुम्हारे यहा एक मान्य अतिथि के रूप मे आया हू ओर तुम हाथ मे शस्त्र उठा कर सामना करने के लिए आ गई हो– यह तुम्हारा कौनसा शिष्टाचार है ?

अपने प्रश्नो के उत्तर मे नवागन्तुक के ये प्रश्न सुनकर विश्वसुन्दरी हतप्रभ सी हो गई। वह विचार मे पड गई कि यह कैसी वस्तुस्थिति है ? उसे यह भी आभास हुआ कि सामने उपस्थित पुरुष न तो हिसक हो सकता है और न ही क्रूरकर्मी। वह तो असाधारण पुरुष सा दिखाई दे रहा है– एक शान्त और सौम्य पुरुष जो उसे ही उसके कर्त्तव्य का भान दिला रहा है। उसके हाथ मे कोई शस्त्र भी नहीं है और उसके मुख से भी फूलो की तरह मधुर शब्द झड रहे हैं। उसे समझ मे आ गया कि उसकी आशकाए निराधार हैं। उसके तन–मन मे इस विचारणा के साथ ही हल्कापन आ गया और तनाव मिट गया। तब वह सरल स्निग्ध मे महाराजा के सामने खडी रही। वह कुछ भी बोल नही पा रही थी।

तब चन्द्रसेन ने अपनी सुकोमल वाणी मे कहना शुरू किया– देखिये मेरे हाथ मे कोई शस्त्र नहीं है कि मैं यहा पर कोई क्रूर कर्म करके और मणि

लेकर आया होऊ। मेरे पास मे जो शस्त्र है वह तुम्हे दिखाई नही दे रहा है क्योकि वह प्रेम का शस्त्र है और यह प्रेम का शस्त्र भी मैंने स्वय ने नही उठाया है बल्कि तुम्हारे पूज्य पिताजी ने ही मुझे सौपा है। तुम शान्ति और धैर्य रखो, मैं तुम्हे पूरा विवरण सुनाता हूँ। निश्चिन्त हो जाओ कि मैंने छल–कपट पूर्वक कुछ भी नही किया है।

विश्वसुन्दरी ने यह सब सुना तो उसके हृदय मे विश्वास की ज्योति जल उठी। उसे उक्त भविष्यवाणी का भी ध्यान था ही। उसने अपने हाथ के शस्त्र को दूर रखा और सिहासन पर बैठने का उसने आगन्तुक से आग्रह किया। चन्द्रसेन भी अपनी होने वाली कन्या की आखो मे झाक रहे थे और उसके चरित्र के विभिन्न पहुलओ को कौतूहल से देख रहे थे। उन्होने अनुभव किया कि परिस्थितिवश उसकी आखो मे चचलता आई किन्तु उसके साथ वीर रस भी जागृत हुआ। वस्तुत उसका रूप–स्वरूप अलौकिक है लेकिन उसमे गम्भीरता है, शालीनता है तथा सौम्यता है। उन्होने मान लिया कि वह एक नारी रत्न है।

ज्योही महाराजा चन्द्रसेन सिहासन पर बिराजे तो विश्व सुन्दरी हाथ जोडकर सामने खडी हो गई और कहने लगी–महाशय, मेरी भूल के लिये आप मुझे क्षमा करे। मैं नहीं जान रही थी कि आप मेरे पिताजी से आज्ञा लेकर ही यहाँ अतिथि के रूप मे पधारे हैं। कृप्या आप जलपान करके मेरी जिज्ञासा को शान्त कीजिये कि आपका यहाँ आगमन किस प्रकार एव किस रूप मे हुआ है ? यह कहकर विश्वसुन्दरी चन्द्रसेन के जलपान हेतु भीतर से विविध व्यजन लाने मे लग गई। जलपान के बाद महाराजा चन्द्रसेन ने उसे पूरा विवरण सुनाया कि किस उद्देश्य से वे इस चम्पा नाम के बगीचे मे आये, किस तरह वहाँ मणिधारी सर्प के रूप मे उसके पिताजी से भेट हुई और उनके सत्कार और स्नेह से कैसे वे परम हर्षित हुए ? उन्होने यह बताते हुए विश्वसुन्दरी को अपना परिचय भी दिया और नाम भी बताया। नाम सुनते ही विश्वसुन्दरी सब कुछ समझ गई। तब चन्द्रसेन ने कहा कि जब उन्होने उसके पिताजी की जिम्मेदारी स्वय ले लेने का वचन दिया तो वे तुरन्त दीक्षा ग्रहण करने के लिये वहीं से आकाश मे उड गवे। उनके निर्देशो के अनुसार ही वे उनकी मणि लेकर भवन मे उपस्थित हुए हैं।

तत्क्षण विश्व सुन्दरी अपने होने वाले पति के चरणो मे झुक गई और चरण स्पर्श करके बोली–आपका नाम सुनते ही भविष्यवाणी के अनुसार मैं

सब कुछ समझ गई हूँ तथा इस सम्बन्ध मे सारी बात मुझे मेरे पिताजी बता चुके हैं। सिर्फ यह नही बताया था कि वे इस तरह यकायक चले जायेगे। धन्य हैं वे, जो उन्होने अपने आत्मकल्याण के मार्ग पर आगे बढने मे एक क्षण का भी विलम्ब नही किया। उनकी उच्चसमता साधना के अनुसार मैं सोचती हूँ कि वे मोहग्रस्त होने वाले पुरुष ही नही थे। वे तो प्रतीक्षा ही कर रहे थे कि कब आपका पदार्पण हो और कब वे मेरा हाथ आपको सौंपकर इस कर्त्तव्य से मुक्त हो जाय। वे भाग्यशाली हैं कि उन्हे अपना वाछित अवसर मिल गया है। किन्तु मैं भी कौनसी कम भाग्यशाली हूँ जो आप जैसे गुणवान जीवन–साथी मिल रहे हैं।

इस ससार मे कई तरह के स्वभाव वाले माता–पिता होते हैं। कुछ तो ऐसे भी होते हैं, जो केवल सन्तान को जन्म देने वाले होते हैं। विरले ही होते हैं, जो सन्तान की जीवनोन्नति के प्रति अपने कर्त्तव्यो का निर्वाह करते हैं। कई माता–पिता पहले अपने स्वार्थों को देखते हैं और उन्हे पूरे करने के लिए अपनी सन्तान का उपयोग कर लेते हैं। किन्तु विश्वसुन्दरी के पिता ने अपनी पुत्री के जीवन को सस्कार सम्पन्न एव सुखी बनाने के लिए कडे कष्ट सहन किये और उसे योग्य वर को सौंप कर ही अपनी आगे की राह ली। भविष्य वक्ता द्वारा जानकारी लेने पर ही वे यहॉ रहने आये थे और मणिधारी सर्प के रूप मे चम्पा बाग मे भ्रमण करते रहे थे कि एक दिन उन्हे अपनी बेटी के योग्य वर से भेट हो सके। अपनी सन्तान के प्रति अपने सभी कर्त्तव्य पूरे करके ही वे आत्म–साधना के मार्ग पर पहुँचे। अपने पिता के उपकारो का स्मरण करते हुए विश्वसुन्दरी अपने को अति कृतज्ञ अनुभव कर रही थी।

विश्वसुन्दरी ने महाराजा चन्द्रसेन से तब विनयपूर्वक निवेदन किया–आपको मेरे पिताश्री ने जो निर्देश दिये, वे मैंने आपके मुख से सुन लिए हैं और अपने मन की सलज्ज स्वीकृति आपके चरणो मे प्रस्तुत कर दी है। अब आप जो भी आज्ञा दे, यह दासी उसे पूरी करने के लिए तत्पर खडी है। इसके साथ ही उसके नेत्रो से आसुओ की धारा बह चली, जो ऑसू उपकारी पिताश्री की स्मृति मे भी बह रहे थे तो अपने सुखमय भविष्य की प्रसन्नता मे भी।

मोती जैसे उन ऑसूओ का बहना महाराजा चन्द्रसेन को सहन नही हुआ, वे बोले–देवि, तुम्हारे नेत्रो से यह ऑसूओ की धारा क्यो बह चली है ? क्या तुम्हारे हृदय मे किसी प्रकार का दु ख तो नहीं जगा है ? अपने मुख

पर निश्छल हसी बिखेरते हुए विश्वसुन्दरी ने कहा–महाराज, ये वियोग और सयोग दोनो के मिले–जुले ऑसू हैं। पिताजी इस विवाह अनुष्ठान तक ठहर जाते तो अधिक सतोष मिलता। लेकिन उनका मेरे जीवन पर असीम उपकार है, जिसकी अन्तिम कडी है कि वे मुझे आपको सर्वश्रेष्ठ सरक्षण मे सौंप गये। इस सयोग के भी ये हर्षाश्रु हैं।

विश्वसुन्दरी के ऑसूओं को अपनी कोमल अगुलियो के छोरो से पौंछते हुए चन्द्रसेन ने आश्वस्त करते हुए कहा–कैसे भी हो, इन ऑखो मे ऑसू मैं नहीं देख सकता हूँ। तुम्हारे पिताश्री एक महान् आत्मा हैं, जिन्होने एक ही पल मे मोह का बधन छिन्न–भिन्न कर दिया और बिना एक क्षण का भी विलम्ब किये आत्म–कल्याण के मार्ग पर वीतराग भाव से बढ गये। मैं भी सामायिक की साधना का अभ्यासी हूँ और मैंने देखा कि तुम्हारा जीवन भी साधना के प्रति ही उन्मुख है। इस दृष्टि से हमारे जीवन का सयुक्त–स्वरूप आदर्श ही बनेगा–ऐसा मेरा विश्वास है। मेरा विश्वास तो यह भी है कि तुम्हारी कोख से ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा जो हमारे श्रेष्ठ सस्कारो से सँवर कर मेरे राज्य की प्रजा के लिए अति लोकप्रिय शासक सिद्ध होगा। यदि तुम्हारी सहमति हो तो आज ही दोनो विवाह–सूत्र में आबद्ध हो जाए ।

विश्वसुन्दरी उसका अपने मुख से क्या उत्तर देती–सहमति का सकेत वह व्यक्त कर ही चुकी थी और अभी जो उत्तर उसे देना था वह उसने अपनी लाज भरी आखो को नीची करके दे दिया। वह तो आनन्दमग्न हो गई कि उसे ऐसा भव्य, सद्‌गुणी एव सुन्दर पुरुष पति के रूप मे प्राप्त हो रहा है। विवाह का प्रसग उसके कल्पना लोक में छा गया क्योकि उसे अपने जीवन की सार्थकता साकार रूप लेती हुई दिखाई दी।

चन्द्रसेन ने ही वार्ता आगे बढाई–देखो, विवाह की कई पद्धतियॉ प्रचलित हैं। यदि वर और वधू दोनो वयस्क हों तथा समान गुण, शील व धर्मधारी हो तो वे बिना किसी साक्षी के भी स्वयमेव विवाह सूत्र मे आबद्ध हो सकते हैं। दूसरे, सार्वजनिक विधि से भी विवाह कार्य सम्पन्न हो सकता है। विवाह विधि के सम्बन्ध में तुम्हारा अपना विचार क्या है ? जब विश्वसुन्दरी भी सुशिक्षित थी तो उसे भी अपनी सम्मति तो देनी ही चाहिये। वह बोली–पहली पद्धति भी बुरी नहीं है किन्तु जगत्साक्षी से सार्वजनिक विधि ही उत्तम मानी जानी चाहिये। पिताजी आते तो उनकी साक्षी को ही पर्याप्त मान लेते किन्तु इस समय यही उचित रहेगा कि किसी की साक्षी से

ही यह शुभ कार्य सम्पन्न किया जाय। चन्द्रसेन को उसके विचार जानकर बडी प्रसन्नता हुई कि यौवन के उद्दाम आवेग के बाद भी उसका कैसा मनोनिग्रह है ? तरुणाई की यह अवस्था तो ऐसी होती है जिसमे पुरुष या स्त्री दौडती ही नही, बल्कि आकाश मे उडती है, किन्तु यह सुन्दरी कितनी सन्तुलित, सयमित और मर्यादाशील है ? उनके हृदय मे हर्षावेग बढ चला कि अपने उद्देश्यो के अनुकूल यह कितना सुन्दर सयोग बना है ?

चन्द्रसेन ने तब यही कहा—वस्तुत तुम्हारी सम्मति सर्वथा उचित है। गुप्त विवाह मे कोई कुछ भी भ्रम पैदा कर सकता है, इसलिये साक्षी से ही विवाह किया जाना चाहिये। मैं तुम्हारी भावना का सम्मान करता हूँ। मैं अभी बाहर जाता हूँ और किसी को साक्षी के रूप मे लेकर वापिस आता हूँ। इतना कहकर वे उठ खडे हुए और मणि हाथ मे लेकर प्रवेश द्वार की ओर बढ चले। उनके साथ—साथ ही विश्वसुन्दरी भी शिष्टाचार के रूप मे उठ खडी हुई और उन्हे द्वार तक पहुँचाने हेतु आगे बढी।

मणि हाथ मे लेकर महाराजा बावडी से बाहर निकल आये और वहाँ पहुँचे जहाँ उनका चपल अश्व बधा हुआ था। वे घोडे पर सवार हुए और निकटस्थ गाँव मे पहुँच कर वे किसी विवाह कराने वाले पण्डित की खोज करने लगे। आखिर उन्हे एक पण्डित का पता चला। वे उसके निवास स्थान पर गये और पण्डित से कहने लगे—मैंने सुना है कि आप विधिपूर्वक विवाह सस्कार तो कराते ही हैं किन्तु साथ—साथ वर—वधू को उनके दाम्पत्य कर्त्तव्यो का बोध भी कराते हैं। आपकी शैली बहुत ही श्रेष्ठ है। क्या आप ऐसा ही उत्तम विवाह सस्कार कराने के लिये मेरे साथ चल सकेगे ? पण्डित जी साथ चलने को तैयार हो गये, मगर पूछने लगे कि चलना कहाँ होगा ? राजा ने कहा—यहाँ से चम्पा नामक बगीचे मे चलेगे ओर वहाँ की बावडी पर पहुँचना है। बावडी का नाम सुनते ही पण्डित जी बिदक गये, बोले—वहाँ मैं कतई नही चलूँगा क्योकि मैं जानता हूँ कि वहाँ पर एक मणिधारी विकराल सर्प रहता है। वहाँ पहुँचते ही मृत्यु एक निश्चित बात है। राजा ने समझाया—देखो, वक्त एक सा नहीं रहता, बदलता रहता है। अब बावडी पर कोई खतरा नही है। मैं वहीं से आ रहा हूँ। मेरा कुछ नही बिगडा है, फिर भला आपको कोई खतरा केसे हो सकता है ? और में जो आपके साथ रहूगा। आप अपनी सुरक्षा के बारे मे निश्चन्त रहे। यह कहकर राजा ने पच्चीस स्वर्ण मुद्राएँ पण्डित के हाथ पर धर दी और कहा कि कार्य सम्पन्न करा लेने के बाद और धन मिलेगा। सोने के पीलेपन ने पण्डितजी को सन्तुष्ट ही नहीं कर दिया बल्कि

खुशी से पागल भी बना दिया। उसने इतना सोना एक साथ अपने जीवन काल मे कभी नहीं देखा था। वह खुशी–खुशी राजा के साथ हो गया।

उस बावडी पर पहुँचते ही एक बार तो पण्डित की कपकपी छूट गई और वह चारो ओर साप की झलक देखने लगा। राजा ने उसे आश्वस्त किया कि तुम्हारा बाल भी बाका नही होगा और कोई खतरा आया भी तो पहले मेरे पर आयेगा। मैं आगे–आगे चल रहा हूँ, तुम मेरे पीछे–पीछे चले आओ। लेकिन मैं तुम्हारी ऑखो पर पट्टी बाधूँगा और तुम्हारे हाथ को पकड लूँगा ताकि तुम भयभीत नहीं होवो। पण्डित मान गया और राजा उसे हाथ पकड़े–पकडे ठेठ विद्याधर के भवन मे ले चले गये।

भवन मे पहुँचकर पण्डित की आखो की पट्टी खोल दी गई। तब वहॉ का दृश्य देखकर वह तो आश्चर्य चकित रह गया। वह समझ भी नहीं सका कि बावडी से वह इस महल में कैसे और किस मार्ग से पहुँचा दिया गया है। वह असमजस मे गिरा हुआ सोचता रहा कि यह तो कोई दैविक रचना हे और शायद जो उसे लाये हैं वे भी कोई देव ही होने चाहिये। भय और हर्ष से पण्डित का मुह लाल हो गया। तब चन्द्रसेन ने पण्डित को विश्वसुन्दरी का परिचय कराया और बताया कि उसे उन दोनो का विवाह सम्पन्न कराना है।

सबसे पहले पण्डित को विवाह का शुभ मुहूर्त निकालने के लिये कहा गया। पण्डित ने पोथी पत्रा देखा तो उसका चेहरा खिल उठा। उसने हर्षित होते हुए कहा–इस समय सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त विजय मुहूर्त है और इसी भव्य मुहूर्त मे विवाह कार्य प्रारम्भ हो जाना चाहिये।

यह आवश्यक नहीं होता कि जैसा पात्र होता है या जैसा उसका भावात्मक व्यवहार होता है, वैसा ही कथन किया जाता हो। सत्य तत्त्व को प्रकट करने के लिये कौन सी बात कितने अशो में हरेक के लिये आचरण के योग्य होती है, वही सुनाई जाती है–ऐसा न समझे। जैसे यह मुहूर्त की ही बात आई है। कई भाई सन्तों के पास आकर कहते हैं कि मुहूर्त निकाल दीजिये। भगवान् ने कहा है कि समय मात्र का भी प्रमाद मत करो। में मेरी बात कहता हूँ, किसी पर जबरदस्ती थोपता नहीं कि जहॉ समय मात्र के लिये भी विलम्ब न करने का आदेश है वहॉ भला मुहूर्त के लिये विलम्ब करने की वय आवश्यकता है ? यदि दीक्षा करवाने वाला मुहूर्त मे विश्वास करता है तो मैं उनसे कह देता हू कि आप अपनी स्थिति से जो करना चाहो, करो लेकिन ऐसी साधना के कार्य मे मुहूर्त के विश्वास को मैं मानसिक रोग के समान

समझता हूँ। मैं एक बार जावरा मे था, तब लोगो ने वहाँ के ख्यातिप्राप्त राज ज्योतिषि जी से मुहूर्त निकलवाने का सुझाव दिया। मैंने उनसे पूछा कि क्या उनका निकाला हुआ मुहूर्त सदैव शुभ ही होता है ? तब कोई भाई फुस–फुसाया–उनके चार कन्याएँ थी, बेचारी चारो बाल विधवा हो गई। फिर मेरे बोलने की जरूरत ही नही पडी। क्या कोई ज्योतिषी अपनी कन्याओ का विवाह–मुहूर्त बेपरवाही से निकालेगा ? इसे छोडिये, लेकिन विश्वामित्र जैसे ऋषि ने राम के सिहासनारोहण का जो मुहूर्त निकाला था, कितनी बडी विडम्बना हुई कि उसी मुहूर्त मे राम को बनवास के लिये प्रस्थान करना पडा। अत यह मुहूर्त का मामला मन की सन्तुष्टि से अधिक कुछ नही होता है।

चन्द्रसेन प्रतिदिन नियमित रूप से सामायिक की साधना करते थे। उन्हे नवकार मत्र पर अटूट आस्था थी अत उन्होने पडित से कहा–आपने मुहूर्त निकाला सो उत्तम है लेकिन मेरी अभिलाषा है कि यह आप विवाह सस्कार का प्रारम्भ नवकार मत्र के जाप से करे क्योकि यह महामत्र सम्पूर्ण तत्त्वो का सार है। तदनुसार चन्द्रसेन और विश्वसुन्दरी वर–वधू के वेश मे विवाह मण्डप मे बैठकर मन मे नवकार मत्र का जाप करने लगे तो पण्डित भी मधुर गीतध्वनि मे नवकार मत्र बोलने लगा।

उसके बाद पण्डित ने विवाह विधि चालू की। मत्रोच्चारण के साथ विधि सम्पूर्ण करके पण्डित ने चन्द्रसेन से कहा–कन्या आपसे प्रतिज्ञा करना चाहती है कि मैं आपकी धर्मपत्नी या अर्धांगिनी तभी बनूँ जब आप मेरे अलावा जगत्साक्षी से ससार की सभी स्त्रियो को माता और बहिन के तुल्य माने। चन्द्रसेन ने स्पष्ट किया–मैंने इनके सिवाय पहले बारह बारह विवाह कर रखे हैं अत इन सहित सभी विवाहितो के अलावा मैं प्रतिज्ञा करता हू कि ससार की अन्य सभी स्त्रियो को माता और बहिन के तुल्य समझूँगा। तब विश्वसुन्दरी ने भी प्रतिज्ञा की कि मैं इनके सिवाय जिनके साथ मेरा सम्बन्ध जोडा जा रहा है, ससार के अन्य सभी पुरुषो को पिता और भाई के तुल्य मानूँगी। यदि दीक्षा ग्रहण करके साध्वी बन जाऊ तो ये भी मेरे भाई तुल्य हो जायेगे।

क्या आप लोग अनुभव करते हैं कि इस प्रतिज्ञा के प्रति बहिने जितनी दृढ होती हैं, शायद है पुरुष वर्ग उतनी दृढता नहीं रखता ? इस तथ्य की निश्चितता, अपने अपने घट के भीतर झाकने से ही हो सकेगी। बहिनो की प्रतिज्ञा के प्रति पूरी आस्था होती है किन्तु जब तक दोनो पक्ष दृढपूर्वक प्रतिज्ञाबद्ध नहीं रहते हैं तब तक शुद्धाचरण और सयम की स्थिति नहीं बन

पाती है। कदाचित् कायिक वृत्ति पर रोक रह जाती होगी परन्तु मानसिक वृत्तिया का चलायमान न होने देना बडा कठिन रहता होगा।

आज के कई भाई सामायिक को अज्ञान दृष्टि से सोचकर यह कहते हैं कि हमारा मन अकुश मे नही रहता है, लेकिन वे यह नही समझते कि सामायिक का मूल उद्देश्य ही मन को साधना है–अकुश मे लेना है। सामायिक मे बैठने पर वचन और काया की अस्थिरता तो मिटती ही है। इस दृष्टि से काया का चालीस प्रतिशत और वाणी का तीस प्रतिशत माने, तब भी सत्तर प्रतिशत सामायिक का हिसाब तो बैठ ही जाता है। वचन और काया की स्थिरता के बल से तब मन की स्थिरता साधने का अभ्यास करते रहना चाहिये। इस तरह धीरे–धीरे ही सही लेकिन मन की स्थिरता का प्रतिशत भी बढता जायगा और कुछ ही अर्से मे सामायिक की साधना पूरी सफलता के साथ सधने लग जायगी। यह अवश्य है कि मन की साधना सहज नहीं होती है। रथनेमि जैसे बडे–बडे योगियो का मन भी कभी डिग जाता है। आप यह सोचते हैं कि सामायिक के अडतालीस मिनिट तक भी मन स्थिर नहीं रहता है और बाहर कल्पनाओ मे दोडने लग जाता है। इसी कारण आपका विचार सशकित हो जाता है कि मनस्थिर नहीं रह सकेगा और सामायिक के प्रति अज्ञान भाव जम जाता है। मन की कल्पना की दुनिया तो लम्बी चौडी होती है अत सामायिक मे पहले वचन और काया की स्थिरता साध ले और तब एकनिष्ठा से मन को नियन्त्रण मे करने की चेष्टा करे। किसी भी रूप मे सामायिक के नियम को अपने उपेक्षा–भाव में मत रखिये और सामायिक की साधना निरन्तर करते रहिये। यह तो खयाल करिये की अडतालिस मिनिट तक जब आप सामायिक मे बैठे हैं तो कम से कम आपका मन यह तो नहीं कहेगा कि आप भोजन करलें या कि दुकान पर जाकर व्यापार शुरू करदें क्योकि व्रत लेकर सामायिक तोडने का विचार तो नहीं ही बनेगा। इतना ही सोचा जा सकता है कि इस सामायिक के पूरी होते ही भोजन कर लूँगा अथवा दुकान पर जाकर व्यापार शुरू कर दूँगा। इस रूप में सामायिक के चलते हुए इतना भी मन नियन्त्रित हुआ तो वह भी उपलब्धि ही है।

सामायिक–साधना की स्थिरता का जब किसी के जीवन मे सचार हो जाता है तो वह ससार के कार्यों को भी स्थिर बुद्धि से सोचकर उन्हें भव्य तरीके से पूरे करता है। ऐसी ही स्थिर वैचारिकता के साथ विवाह सस्कार की सम्पन्नता हो गई। पण्डित को उन्होंने विपुल धनराशि दी। वह प्रसन्नता से फूला जा रहा था कि जीवन मे पहली बार उसे इतनी धनराशि मिली है।

उसने तब उसे जल्दी घर पहुँचा देने का निवेदन किया। पहले की तरह आखो पर पट्टी बाधकर चन्द्रसेन उसे बावडी से बाहर ले गये और फिर उसके घर पहुँचा आये। चन्द्रसेन पुन भवन मे लौट आये और विश्वसुन्दरी के साथ आनन्द से वही रहने लगे।

चन्द्रसेन ने अपना सारा पूर्व वृत्तान्त विश्वसुन्दरी को बताया और अपने जीवन परिवर्तन की कहानी भी सुनाई। उन्होने यह भी कहा कि अपनी पटरानी की प्रेरणा तथा सन्तो के समागम से उन्होने सामायिक कि जिस साधना को पुष्ट किया है उसके माध्यम से उनके जीवन मे स्थिरता, धैर्य एव गम्भीरता आदि गुणो का सचार हुआ है। सामायिक के आनन्द रस से उनका प्रत्येक पल ओत–प्रोत रहता है। अन्त मे उन्होने कहा–हे विश्वसुन्दरी, तुम सी धर्मपत्नी पाकर मैं आनन्द विभोर हो रहा हूँ और यह कामना करता हूँ कि तुम मुझे सामायिक के साधना–पथ पर अधिक अग्रगामी बनाओगी।



9

पति और पत्नी की जोडी शरीर सम्बन्धो के लिये ही नही होती है अतिपु दोनो के बीच मे अटूट आत्मिक सम्बन्ध भी माना गया है कि विवाहोपरान्त वे दो शरीर और एक आत्मा हो जाते हैं। आत्मिक सम्बन्ध का यह अर्थ है कि दोनो आत्म–विकास हेतु साथ–साथ मे धर्म की आराधना निष्ठापूर्वक करे तथा समता–साधना में एक दूसरे के सहायक एव पूरक बने। पति और पत्नी मे भी पत्नी पर अधिक दायित्व रखा गया है और इसीलिये उसके पहले धर्म शब्द जोडा गया है। पत्नी को धर्मपत्नी कहा गया है, बल्कि पत्नी शब्द का सस्कृत मे विश्लेषण किया गया है–पति नयति इति पत्नी अर्थात् जो धर्म मार्ग पर पति को अपने साथ–साथ ले जाती है। पति–पत्नी के पारस्परिक दायित्वो को समझते हुए ही चन्द्रसेन ने अपनी धर्म पत्नी विश्वसुन्दरी से कहा था–ओ विश्वसुन्दरी, तुम सी धर्मपत्नी पाकर मैं आनन्द विभोर हो रहा हूँ और यह कामना करता हूँ कि तुम मुझे सामायिक के साधना पथ पर अधिक अग्रगामी बनाओगी।

इस अभिलाषा के व्यक्तिकरण के साथ ही चन्द्रसेन ने अपनी समता साधना का भी विश्वसुन्दरी को परिचय दिया–पहले मैं अपने इस दुर्लभ शरीर का दुरुपयोग ही करता था और किसी प्रकार की साधना नहीं करता था। किन्तु मेरी पटरानी ने मुझे अद्‌भुत प्रेरणा दी तथा सन्तो का ससर्ग कराया जिससे मैं समता–साधना की तरफ मुडा। धीरे–धीरे जब मेरा आनन्द रस बढने लगा तो सामायिक मे मेरी निष्ठा भी बढने लगी। अब मैं नियमित रूप से साधना करता हूँ और सामायिक किये बिना मुझे चैन नहीं पडता है। सामायिक किये बिना मैं भोजन नहीं करता हूँ। मैं चाहता हू कि तुम भी मेरी तरह सामायिक का कठोर व्रत लेकर चलो। पति–पत्नी का पारस्परिक कर्त्तव्य ही यह होता है कि वे एक दूसरे को धर्म के मार्ग पर पूर्ण सहयोग देते हुए चले।

शादी विवाह के प्रसग को आज दुनिया ने विकृत रूप में ही समझ लिया है। पति–पत्नी यहा पर विषय–वासना के सेवन हेतु ही नहीं है। वे अधिक से अधिक जितना बन सके उतना ब्रह्मचर्य का पालन करे। पति मे यदि दृढता का अभाव है तो पत्नी का परम कर्त्तव्य है कि वह पति को धर्म कार्य मे पूर्णरूप से प्रवृत्त करे। वह यदि ऐसा नहीं करती है तो वह अपने कर्त्तव्य से गिरती है। वैसी अवस्था मे उसे धर्मपत्नी नहीं बल्कि कर्म पत्नी

9

पति ओर पत्नी की जोडी शरीर सम्बन्धो के लिये ही नही होती है अतिपु दोनो के बीच मे अटूट आत्मिक सम्बन्ध भी माना गया है कि विवाहोपरान्त वे दो शरीर और एक आत्मा हो जाते हैं। आत्मिक सम्बन्ध का यह अर्थ है कि दोनो आत्म–विकास हेतु साथ–साथ मे धर्म की आराधना निष्ठापूर्वक करे तथा समता–साधना मे एक दूसरे के सहायक एव पूरक बने। पति और पत्नी मे भी पत्नी पर अधिक दायित्व रखा गया है और इसीलिये उसके पहले धर्म शब्द जोडा गया है। पत्नी को धर्मपत्नी कहा गया है, बल्कि पत्नी शब्द का सस्कृत मे विश्लेषण किया गया है–पति नयति इति पत्नी अर्थात् जो धर्म मार्ग पर पति को अपने साथ–साथ ले जाती है। पति–पत्नी के पारस्परिक दायित्वो को समझते हुए ही चन्द्रसेन ने अपनी धर्म पत्नी विश्वसुन्दरी से कहा था–ओ विश्वसुन्दरी, तुम सी धर्मपत्नी पाकर मैं आनन्द विभोर हो रहा हूँ और यह कामना करता हूँ कि तुम मुझे सामायिक के साधना पथ पर अधिक अग्रगामी बनाओगी।

इस अभिलाषा के व्यक्तिकरण के साथ ही चन्द्रसेन ने अपनी समता साधना का भी विश्वसुन्दरी को परिचय दिया–पहले मैं अपने इस दुर्लभ शरीर का दुरुपयोग ही करता था और किसी प्रकार की साधना नहीं करता था। किन्तु मेरी पटरानी ने मुझे अद्भुत प्रेरणा दी तथा सन्तो का ससर्ग कराया जिससे मैं समता–साधना की तरफ मुडा। धीरे–धीरे जब मेरा आनन्द रस बढने लगा तो सामायिक मे मेरी निष्ठा भी बढने लगी। अब मैं नियमित रूप से साधना करता हूँ और सामायिक किये बिना मुझे चैन नहीं पडता हे। सामायिक किये बिना मैं भोजन नही करता हूँ। मैं चाहता हू कि तुम भी मेरी तरह सामायिक का कठोर व्रत लेकर चलो। पति–पत्नी का पारस्परिक कर्त्तव्य ही यह होता है कि वे एक दूसरे को धर्म के मार्ग पर पूर्ण सहयोग देते हुए चलें।

शादी विवाह के प्रसग को आज दुनिया ने विकृत रूप में ही समझ लिया है। पति–पत्नी यहा पर विषय–वासना के सेवन हेतु ही नहीं है। वे अधिक से अधिक जितना बन सके उतना ब्रह्मचर्य का पालन करे। पति मे यदि दृढता का अभाव है तो पत्नी का परम कर्त्तव्य है कि वह पति को धर्म कार्य मे पूर्णरूप से प्रवृत्त करे। वह यदि ऐसा नहीं करती है तो वह अपने कर्त्तव्य से गिरती है। वैसी अवस्था मे उसे धर्मपत्नी नहीं बल्कि कर्म पत्नी

ही कहना पडेगा। कदाचित् धर्मपत्नी भी धर्म के मार्ग पर नहीं चल रही है तो पति का भी कर्त्तव्य होता है कि वह उसको धर्म के मार्ग पर चलावे, नही तो उसे भी धर्मपति के स्थान पर कर्म पति कहा जायगा। वास्तव मे जो धर्म पति है, वह कभी भी गलत रास्ते पर न खुद जाता है और न अपनी पत्नी को ले जाता है। वह पत्नी को अश्लील सिनेमा या वैसे विकारग्रस्त स्थानो पर नहीं ले जाता है। कई फिल्मे विकारी भावनाओ को उभारने वाली होती हैं। कभी पत्नी आग्रह करती है कि सिनेमा चलो, या कभी पति पत्नी को सिनेमा चलने का आग्रह करता है–ऐसा आग्रह न धर्मपति को करना चाहिये, न धर्मपत्नी को। ऐसा आग्रह करने वाले पति–पत्नी मानव तन के रहस्य को नही समझने वाले माने जायेगे। सच्चे धर्म पति और धर्मपत्नी को अपनी वृत्तियो तथा प्रवृत्तियो पर गम्भीर चिन्तन करते रहना चाहिये कि कौनसी वृत्तिया और प्रवृत्तिया उन्हे धर्म मार्ग पर आगे बढाने वाली हैं तथा कौनसी पीछे हटाने वाली ? इस प्रकार के चिन्तन का सुन्दर अवकाश सामायिक की साधना के समय ही प्राप्त होता है अत सामायिक की साधना किसी भी सुयोग्य दम्पत्ती के लिये परमावश्यक है। इसी बात पर चन्द्रसेन ने विश्व सुन्दरी के समक्ष पूरा बल दिया।

महाराजा चन्द्रसेन की नवीन धर्मपत्नी विश्वसुन्दरी रूप लावण्य मे अद्वितीय थी। पूर्व जन्म मे उसने धर्मसाधना की इसलिये उसे सुन्दर तन प्राप्त हुआ एव विश्वसुन्दरी नाम से विख्यात हुई। लेकिन कोई अगर पूर्व जन्म की कमाई को इस जन्म मे खर्च ही करता रहे ओर नई कमाई नही करे तो भविष्य के जीवन का क्या रूपक बनेगा–इस पर आसानी से अनुमान किया जा सकता है। इसलिये इस जन्म मे भी पुण्य कर्मो का उपार्जन करना चाहिये जो शुभ कार्यो के सम्पादन से ही सम्भव हो सकता है। इस दृष्टिकोण के साथ चन्द्रसेन विश्वसुन्दरी के हावभाव पर मुग्ध नही हुए, बल्कि सोच रहे थे कि विश्वसुन्दरी को भविष्य मे धर्म के मार्ग पर केसे स्थिर बनावे। वे सोचते थे कि उसक हृदय मे अभी ममता अधिक है और समता कम, अत उसके अन्त करण को शुद्ध बनाने का प्रयत्न किया जाना चाहिये।

चन्द्रसेन महाराजा इस उद्देश्य से अपनी नवीन धर्मपत्नी विश्वसुन्दरी के कार्य कलापो का निरीक्षण–परीक्षण करने लगे। आवश्यकता समझते तो उनके किसी कार्य का बारीकी से भी अध्ययन करते। इस अध्ययन के दौरान उन्हे यह जानकर आश्चर्य होने लगा कि विश्वसुन्दरी विद्याधर की पुत्री होने के बावजूद भी प्रत्येक कार्य मे अतीव कुशल है। उन्हे यह अवश्य अनुभव हुआ

कि उसका जीवन जितना चाहिये उतना धार्मिक नहीं है, अत उन्होने उसके अधूरे जीवन को परिपूर्ण धार्मिक बनाने का निश्चय किया।

महापुरुषो के चरित्र को सुनकर आपके मन मे एक प्रकार की जागृति उत्पन्न होती होगी। आप सोचते होगे कि हम तो ऐसे नही हैं, लेकिन यह सोचते हैं या नहीं कि क्या हम ऐसे नही बन सकते हैं ? महापुरुषत्व वैसे ही नहीं मिलता है। ऐसी जागृति के फलस्वरूप जब चारित्र्य को ऊपर उठाया जाता है तथा त्याग के क्षेत्र मे आगे बढा जाता है तभी जागृतिपूर्ण जीवन मे उच्चता का स्तर बनता है। ऐसे उच्च जीवन का अवलोकन करके अथवा उसके सम्पर्क मे रहने से भी प्रेरणा मिलती है। यो तो चन्द्रसेन का जीवन भी गृहस्थाश्रम का ही जीवन था जैसा कि आप लोगो का जीवन है। वे महाराजा थे तो आप भी अपने घर के महाराजा ही हो। आपने तो एक शादी कर रखी होगी, पर उन्होने बारह के बाद तेरहवीं शादी भी कर ली थी, लेकिन फिर भी विचार करिये कि उनके और आपके जीवन मे क्या और कितना अन्तर है ? आपने ममत्व को कितना छोडा है और समत्व को कितना अपनाया है ? सामायिक की साधना मे आपका मन कितना रम गया है और आपका स्वभाव कितना सर्व जनहितकारी बन सका है ? आप अपने दुर्लभ जीवन का सदुपयोग कर रहे हैं अथवा उसे विनष्ट कर रहे हैं ? चरित्र भाग को सुनते हुए यह सारी तुलना और समीक्षा आपको पूरी करनी चाहिये। यह तुलना या समीक्षा भी शान्त और एकान्त मन से की जानी चाहिये जिसके लिये भी सामायिक की साधना आवश्यक है। सामायिक मे बैठकर इस विषय पर गहरा चिन्तन करे, ताकि जागृति की अवस्था उत्पन्न हो जो समभाव मे ही सम्भव हो सकती है।

चन्द्रसेन भी इसी चिन्तन मे लगे थे कि उन्होने जिसे अपनी धर्मपत्नी बनाई है, उसमे धर्म के सस्कार कितने गहरे हैं ? उन सस्कारो की गहराई का पता लगाकर उन्हे यह प्रयास करना होगा कि वे दृढतर बने। धर्मपत्नी की वास्तविकता इसी मे है कि वह पति के जीवन को धर्ममय बनादे। इतनी योग्यता विश्वसुन्दरी मे भी जगा देनी होगी। इसी से दोनो पति–पत्नी के जीवन मे समरसता पैदा होगी। यह वे जानते थे कि विश्वसुन्दरी साधारण नारी नही है विद्याधर की पुत्री होने से सस्कारित एव विचक्षण बुद्धिवाली है अत धर्म और साधना का मार्ग यदि उसे समुचित रीति से दिखाया जायगा तो वह अवश्य ही उस पर निष्ठापूर्वक चलने के लिये उद्यत बन जायगी। उसे सिखाना होगा कि मानव के जीवन मे यदि धर्म नहीं है तो वह मूर्छित और

प्राणहीन जीवन है।

इस चिन्तन के पश्चात् एक दिन अवसर देखकर महाराजा चन्द्रसेन अपनी धर्मपत्नी विश्वसुन्दरी से बोले—प्रिये, तुमने सभी प्रकार का विज्ञान सीखा है और अब विवाहोपरान्त मेरे साथ सम्बन्धित हो गई हो। इस दृष्टि से पति—पत्नी की विचारधारा समान और एकरूप होनी चाहिये तभी उनके जीवन में सामजस्य बना रह सकता है।

विश्वसुन्दरी ने उत्तर दिया—प्राणनाथ, सच्चे अर्थो मे मैं पतिव्रता हू। मैंने समर्पित भावना के साथ विवाह किया है। मेरे विचार अब आपके विचारो से कतई भिन्न नही हो सकते हैं। मेरे पिताजी भी उदात्त धार्मिक विचारों के थे अत उन्होने मुझे तरुणो के ससर्ग मे खुली छूट नही दी जिससे मेरा चरित्र सरक्षित रहा। यदि मुझे उचित दिशानिर्देश नही मिला होता तो आज मेरा जीवन कुछ का कुछ होता। आप निश्चिन्त रहे जिस दिशा मे, जिस गति से आपके चरण आगे बढेगे, आपके पीछे—पीछे मेरे चरण भी चल पडेगे। आप तो सुविज्ञ हैं कि जब राम के चरण वन की ओर चले तो क्या किसी ने सीता को वैसा करने की सलाह छोड ही दी थी ? सीता के चरण स्वयमेव राम के चरणो के पीछे—पीछे चल पडे। पतिव्रता नारी का ऐसा सुनिश्चित चरित्र होता है। सीता को तो सभी ने समझाया कि वन का कष्टमय जीवन वह नहीं जी सकेगी अत न जावे। राम ने भी समझाइश की लेकिन क्या सीता अपना पतिव्रता धर्म त्यागने को तैयार हुई ? नाथ, मैं भी सीता के पतिव्रत धर्म को आदर्श मानकर उसका दृढतापूर्वक पालन करने वाली नारी हू। आप किसी भी प्रकार की शका को अपने मन मे स्थान न दे।

चन्द्रसेन हर्षित होते हुए कहने लगे— मुझे विश्वास हो गया है कि तुम भी वैसी ही पतिव्रत धर्म को दीपाने वाली नारी हो। परन्तु मैं यह जानना चाहता हू कि तुमने अपने इस जीवन मे धर्म कला का कितना विकास किया हे ? वीतराग देव के धर्म का कितना रस चखा है और उससे अपने जीवन को किस रूप मे आप्लावित बनाया है ? अपने धर्मपत्नी के पद का धर्म कितना गहरा हे ?

इन प्रश्नो को सुनकर विश्वसुन्दरी ने आश्चर्य के साथ महाराजा चन्द्रसेन की आ~ देखा ओर मन ही मन सोचा कि ये कैसे पति हें जो विवाह के पहले पूछी जाने वाली बात को विवाह के बाद पूछ रहे हैं ? फिर भी ये आदर्श पति हैं जो मुझे विवाह के बाद वासना की ओर नही मोड रहे हैं बल्कि

धर्म पथ का ज्ञान करा रहे हैं। वह चन्द्रसेन की आकृति पर बदलते–उठते भावो का सूक्ष्म निरीक्षण करने लगी ओर उसके मन मे निश्चय हुआ कि उसके पति पाच इन्द्रियो के विषय मे ही आसक्त नहीं हैं। उनके जीवन मे धर्म की प्रधानता है। किन्तु उसने सोचा कि मुझे भी मेरे पति के धर्म सम्बन्धी अभिप्राय को स्पष्टतया से समझ लेना चाहिये। इस दृष्टि से प्रकट रूप मे विश्वसुन्दरी ने पूछा–आपका धर्म कला से क्या तात्पर्य है कृपया विस्तार से समझावे।

चन्द्रसेन ने समझाना शुरू किया–प्रिये मैं भी पहले धर्म के मर्म को नहीं समझता तथा धर्मकला से विहीन जीवन जी रहा था। मेरी पटरानी ने सबसे पहले मुझे धर्म का बोध कराया ओर मेंने नित्य अडतालीस मिनिट की सामायिक–साधना प्रारम्भ की। तब से मैं मन वचन, एव काया से समभावी बनने का यत्न करता आ रहा हू। इस पर विश्वसुन्दरी ने कहा– वसे तो में भी सामायिक से अनभिज्ञ नहीं हू किन्तु आप जैसी सुदृढ साधना का मैं लगनपूर्वक अनुसरण करूगी एव आपसे शिक्षा लेती रहूगी। में शीघ्रातिशीघ्र अपने जीवन के समस्त विचारो तथा आचरण को धर्मकला मे ढाल लूगी तथा आपकी सच्ची धर्मपत्नी कहलाने का अधिकार प्राप्त करूगी। तब चन्द्रसेन ने सामायिक की विधि बताई ओर उसके भावात्मक पहलू पर प्रकाश डाला। उन्हाने यह भी बताया कि चाहे रसोई बनाते हो बाहर आते जाते हो या अन्य कोई भी कार्य करते हो– सदा काल विवेक को जागृत रखना चाहिये। कहीं पर भी हिसा वृत्ति को बढावा नहीं मिलना चाहिये आर सभी के साथ व्यवहार करने में अहिसा व समता को प्रमुखता दी जानी चाहिये। उन्होने पुन बल दिया कि सामायिक का व्रत प्राय साय नियमपूर्वक पालन करना चाहिये क्योंकि सम्पूर्ण साधना के मगलाचरण के रूप म सामायिक को विशिष्ट महत्त्व दिया गया हैं।

विश्वसुन्दरी ने पुन आश्वस्त किया–नाथ मेरे माता–पिता दोनों परम धार्मिक थे तथा अपना सारा कार्य धर्म की प्रधानता के साथ ही करते थे। उन्हीं के सुन्दर सस्कार मेरे जीवन मे भी व्याप्त हैं। मेरी माता का पहले ही स्वर्गवास हो चुका था ओर मेरे पिताजी साधु धर्म अगीकार करने के लिये कितने उत्सुक थे–यह तो आप स्वय जानते हैं।

तब चन्द्रसेन एव विश्वसुन्दरी दोनो ने सामायिक की पोशाक पहनी तथा साधना में अपनी एकात्मकता का जोड ली। चन्द्रसेन ने उसे सामायिक लेने के विभिन्न पाठों का महत्त्व समझाया ओर कहा–देखो सामायिक मे

समस्त सावद्य योगो का परित्याग किया जाता है जिनमे अट्ठारह पाप भी सम्मिलित हैं। पहला पाप हिसा है और उससे बचना अहिसा धर्म है। हिसा मे दस प्राणो की हिसा मानी गई है—यह कहते हुए चन्द्रसेन ने दस प्राणो का स्वरूप समझाया तथा इन प्राणो की सर्वत्र एव सर्वदा रक्षा करने की प्रेरणा दी। उन्होने यह सत्य भी प्रकट किया कि जिस प्रकार के कर्मो का उपार्जन किया जाता है, उसी के अनुसार उनका शुभ अथवा अशुभ फल भोगना पडता है, किन्तु सामायिक की साधना जितनी उत्कृष्ट बन पडती है, उतने अशो मे कई प्रकार के अशुभ कर्म क्षय भी होते रहते हैं। अत सामायिक की साधना जीवन विकास के लिये अनमोल है। विश्वसुन्दरी ने इस तत्त्व–चिन्तन को दत्तचित्त होकर ग्रहण किया एव अपना सकल्प बनाया कि वह वर्तमान जीवन मे आत्म विकास की उच्चतर सीढियो पर चढती हुई अपनी आन्तरिक स्वरूप को प्रकाशमान बनाने का अथक प्रयत्न करती रहेगी।

इस प्रकार सासारिक जीवन के साथ–साथ चन्द्रसेन एव विश्वसुन्दरी की धार्मिक जीवन की निष्ठापूर्वक चलने लगा। वे पति–पत्नी थे यही सही था लेकिन अपने पदो के आगे लगे 'धर्म' शब्द को वे हमेशा हर कार्य मे आगे ही रखते थे। अपने आचरण की सुचारुता के साथ वे गृहस्थ जीवन के आदर्शो को प्रकाशित करने लगे।

समय तो अविराम गति से चलता ही रहता है–वह कभी रुकता नहीं, किसी के लिये भी रुकता नही। चन्द्रसेन तथा विश्वसुन्दरी का दाम्पत्य जीवन भी अति मधुरता व धार्मिकता को लेकर निरन्तर प्रवाहित निर्झर की तरह बह रहा था। एक दिन चन्द्रसेन को ज्ञात हुआ कि विश्वसुन्दरी गर्भ की स्थिति मे है तो उसी दिन से दोनो ने पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना प्रारम्भ कर दिया तथा वे सामायिक की साधना मे भी अधिक समय देने लगे ताकि गर्भावस्था मे ही सन्तान श्रेष्ठ सस्कारो से मण्डित हो सके।

ब्रह्मचर्य का पालन करना–यह धर्म का सस्कार है। जहा ये सस्कार नही है वहा कितनी भ्रूण हत्याए होती हैं। इस ज्वलन्त समस्या की तरफ न सरकार का ध्यान हे, न समाज के नेताओ का खयाल। आज तो परिस्थितिया इतनी विषम हो गई है कि विवाह करने से पहले भी कई भ्रूण हत्याए होने लगी हे। दु खी व्यक्ति यहा भी आकर अपना दु ख सुनाते हैं और कहते हैं कि कोई मत्र बताइये कि जिससे उनका दु ख मिट जाय। मैंने पूछा कि आपको किस बात का दु ख हे तो कहते हैं कि क्या बतावे, जितनी सन्तान

आई, सब अधूरी बाहर आई, क्या यह ऊपर का दोष है ? मैंने कहा--न तो ऊपर का दोष हे, न किसी दूसरे का दोष है। यह सब तुम्हारा ही दोष है। क्यो नहीं तुम जब गर्भ की स्थिति का ध्यान हो जाता है, तब ब्रह्मचर्य की स्थिति से रहते हो ? यदि अपनी वासना पर नियन्त्रण रखो तो अपनी सन्तान का भविष्य भी नहीं बिगडेगा। चन्द्रसेन विवेकशील साधक थे। इसीलिये उन्होने गर्भ की स्थिति की जानकारी होते ही ब्रह्मचर्य का पालन आरम्भ कर दिया तो दोनो पति--पत्नी धर्माराधना मे प्रवृत्त हो गये।

चन्द्रसेन प्रतिदिन सामायिक मे स्वाध्याय करते तथा नित नया ज्ञान लेते। चाहे वे अध्ययन करते अथवा ध्यान मे बैठ जाते, उसकी मुख मुद्रा पर सदैव प्रसन्नता खेलती रहती जो आकर्षक भी होती तो प्रभाविक भी। विश्वसुन्दरी एक दिन पूछ ही बैठी– नाथ, क्या कारण है कि आप सदा प्रसन्न दिखाई देते हैं ? चन्द्रसेन ने उसे समभाव एव तटस्थता का सुफल बताया।

एक दिन सदा प्रसन्न रहने वाले चन्द्रसेन के चेहरे पर जब कुछ उदासी दिखी तो विश्वसुन्दरी ने उसका कारण पूछा क्योकि यह उसके लिये आश्चर्य की स्थिति थी। चन्द्रसेन ने कहा अब गृहस्थाश्रम की कठिन परिस्थिति मेरे सामने आ गई है और उसी की मैं चिन्ता कर रहा हू। अब तुम्हारे गर्भ को आठ मास पूरे होने आ रहे हैं, और ऐसे अवसर पर यहा एकाकी रहना उचित नही लग रहा है। बालक के जन्म के समय कोई भी कठिनाई आ जाय तो यहा निराकरण का कोई साधन नहीं है इस कारण यह स्थान अब हमे छोड देना चाहिये। विश्वसुन्दरी ने भी समस्या का समर्थन करते हुए कहा–बालक की सब तरह से सुरक्षा की स्थिति तो होनी ही चाहिये। जहा भी आप कहे, मैं चलने को तैयार हू यहा से किसी भी समीप के शहर मे चले चले। तब चन्द्रसेन ने सुझाव दिया–किसी दूसरे शहर मे क्यो चले ? अपने राज्य की राजधानी चले जहा बाहर के उद्यान मे स्थित मेरे भवन में सभी प्रकार की सुविधाए उपलब्ध हैं।

इस सुझाव पर विश्वसुन्दरी तुरन्त ही सहमत हो गई और दोनो वहा से रवाना होकर चम्पा नगरी के बाहर स्थित उद्यान मे पहुच गये। उद्यान का भवन खोल दिया गया तथा माली ने दीवानजी को महाराजा के आगमन की सूचना दी। दीवान से बात अधिकारियो के बीच फैली और वहा से सारे नगर मे बात फैल गई। सारी जनता खुशी से झूम उठी कि महाराज वापिस पधार गये हैं नया विवाह करके भी आये हैं और सबकी मनोकामना के शीघ्र पूर्ण

होन की आशा भी है। महलो स लेकर झौंपडियो तक प्रसन्नता का वातावरण छा गया।

सूर्य के प्रकाश से ससार मे सभी प्रसन्न होते हैं, किन्तु उल्लू एक ऐसा प्राणी होता है, जिसे सूर्य का प्रकाश नही सुहाता। उसे तो रात का अधेरा ही पसन्द पडता है। इस समाचार से जहा सभी ओर प्रसन्नता छा गई, वहा महला मे पटरानी को छोडकर अन्य रानिया सौतिया डाह की शिकार हो गई। पटरानी तो बहुत प्रसन्न हुई कि महाराजा और जनता की मनोकामना शीघ्र पूरी होगी किन्तु अन्य रानियो के मन मे यह ईर्ष्या जगी कि अब महाराजा हमे तो पूछेगे ही नही–सिर्फ नई रानी का ही सम्मान किया जायगा। उनका यह विक्षोभ अज्ञान का परिणाम था क्योकि वे अपने भविष्य को लेकर आशकित वनी हुई थी। यह स्थिति देखकर पटरानी ने सभी अन्य रानियो को बुलाकर कहा– आज विशेष हर्ष और प्रमोद का समय है। देखो, महाराज के कोई सन्तान नही थी और सन्तान के लिये ही उन्होने मेरे बाद ग्यारह और विवाह किये किन्तु फिर भी सफलता नही मिली। सफलता का सेहरा अब तेरहवी रानी के सिर पर बधा है तो यह सबके लिये प्रसन्नता का विषय है। आप अपने लिये कोई आशका खडी न करे। जब हम कभी से समता साधना मे सलग्न हें तो हमारा भविष्य कभी भी दु खद नहीं बन सकता है। आप तो इसकी भी खुशी मनावे कि अब हमे एक सखी व सहेली और मिल गई हे तथा हमारी सख्या बढ गई है। उसकी ही वजह से हमारा सबका कलक धुल जायगा ओर महाराजा पुत्र वान बन जायेगे। इस तरह पटरानी ने सभी रानियो मे सममाव एव सद्‌भाव जगाने का प्रयास किया।

पहली महारानी का जीवन समता रस से भरा हुआ था, इसी कारण वह सभी अन्य रानियो को प्रसन्न होने की वात समझा रही थी। यदि विचारो मे सममाव न हो तो कोनसी स्त्री अपने सिर पर सोत आने से दु खी नहीं हागी ? किन्तु पटरानी ने क्या कहा ? यही कि महाराजा का भविष्य उज्जवल वनेगा तो राज्य तथा प्रजा का भविष्य भी उज्ज्वल होगा तथा इन सभी के उज्ज्वल भविष्य म ही तो हमारा भी भविष्य उज्ज्वल रहेगा। फिर भी दूसरी रानी क मन मे कुशका काम कर रही थी।

पटरानी न साधना म प्रवृत्त होकर अपन दु खमय जीवन को सुखपूर्ण वना लिया था ता उसने महाराजा क जीवन को भी आमूल–चूल परिवर्तित कर दिया जिससे वे भी समता के साधक बन गये थे। उसन अन्य रानियो

को समता से जोडकर उनके जीवन मे सुधार ला दिया था, किन्तु सौत के धक्के से वे विचलित हो उठीं। वे सभी यही सोचने लगी कि इस तेरहवीं रानी की उपस्थिति मे उन सबका अहित ही होने वाला है। उन सभी को महाराजा के व्यवहार से भी असन्तोष हो रहा था कि वे उद्यान छोडकर राजभवन मे उनकी सार सम्भाल करने को आये तक भी नहीं। पटरानी उन सभी असन्तुष्ट रानियो को फिर समझाने लगी– तुम महाराजा का बुरा व्यर्थ ही मे मान रही हो। काफी समय बाद आने के कारण वे राज्य के कर्मो मे भी व्यस्त हो गये होंगे, वरन् महाराजा का जीवन अब तो पूरी तरह से समता साधना के प्रति निष्ठावान बन चुका है। वे न किसी से पूर्णतया राग रखते हैं तो न किसी के प्रति द्वेष ही। अत तुम सब भी तटस्थ भाव से सुखपूर्वक रहो।

तब अन्य रानियो ने कहा–आपका ऐसा विश्वास ठीक नहीं है। महाराजा ने आपके साथ भी दुर्व्यवहार किया था और अब नये विवाह के बाद सभी के सिर पर आपत्ति आ सकती है अत आप भी हमारे साथ रहे। पटरानी बोली–मैं तुमसे अलग कहॉ जा रही हूँ, तुम्हारे ही साथ हूँ, लेकिन सद्वृत्ति रखने का तुम्हे सही परामर्श दे रही हूँ। तुम्हारे साथ रहते हुए एक बात स्पष्ट कर दूँ कि मैं सदा सद्वृत्ति के साथ रहूगी, गलत बात नहीं करूगी। मैं तुम्हे जो सही रास्ता दिखा रही हूँ, तुम उसी पर चलो। इस पर अन्य रानियो ने कहा– आप अपनी धर्मसाधना करती रहे। हम आपकी बात भी सुनेगी लेकिन हम जो कुछ करे उसमे आप हस्तक्षेप भी न करे। फिर ग्यारह रानियॉ पटरानी के पास से चली गईं और परस्पर विचार करने लगी कि भविष्य को देखते हुए पानी आने के पहले ही पाल बाध लेनी चाहिये। उन्होने सोचा कि ऐसा उपाय निकाला जाय कि जिससे न रहे बास ओर न बजे बासुरी।

विषमता जिनके ह्रदय में से छूटती नही है, वे समता के अमृत मे भी विषमता का विष घोलने की कुचेष्टा करते हैं।



10

चिन्तन चिन्तन मे कितना अन्तर होता है ? एक का अशुभ चिन्तन होता है तो दूसरे का शुभ। अशुभ चिन्तन करने वाला दूसरे के बारे मे तरह–तरह की गलत कल्पनाएँ करके उसका अहित चिन्तन करने मे लग जाता है जबकि दूसरे के मन मे कोई बुराई नही होती, बल्कि वह पहले के लिये हित की बात ही सोच रहा होता है। महाराजा चन्द्रसेन के सम्बन्ध मे भी कुछ ऐसी ही परिस्थिति बन रही थी।

महाराजा जब विश्वसुन्दरी के साथ अपनी राजधानी को लौटे तो गर्भस्थिति के कारण राजभवन मे नहीं आये और बाहर के उद्यान मे ही ठहर गये। जब उनकी अन्य रानियो ने यह समाचार सुना तो सिवाय पटरानी के अन्य ग्यारह रानियॉ अपने भविष्य को खतरे मे समझकर आकुल–व्याकुल हो उठी। फिर उनकी वह आकुलता ईर्ष्या की आग मे जलकर भयावह हो उठी। वे यह सोच–समझकर जल उठी कि राजधानी मे आकर भी महाराजा उनसे मिलने नहीं आये। पटरानी ने उन्हे बहुत समझाया किन्तु वे अपनी गलत कल्पनाओ के कारण अशुभ चिन्तन करने लगीं।

उधर महाराजा पहले तो विश्वसुन्दरी के लिये समुचित व्यवस्थाएँ करने मे जुटे रहे। फिर लम्बे अर्से बाद अपने राज्य मे लौटे थे अत राजकीय काम–काज देखने मे व्यस्त हो गये। किन्तु हर समय वे यही सोचकर खेद कर रहे थे कि वे राजभवन नही जा पाये हैं और अपनी प्रेरणा स्रोत पटरानी तथा अन्य ग्यारह रानियो से नही मिल पाये हैं। ज्योही अवकाश मिले, वे तुरन्त उधर जाने की सोच रहे थे। उनके मन मे ग्यारह रानियो के प्रति किसी प्रकार की बुराई नही थी और न वे उनके लिये किसी प्रकार का अशुभ चिन्तन ही कर रहे थे। यदि वे कुछ सोच रहे थे तो वह उनके प्रति हितचिन्ता ही थी।

इस प्रकार चिन्तन की भिन्न–भिन्न धाराएँ चल रही थीं महाराजा चन्द्रसेन के राजपरिवार मे। इधर व्यस्तता के कारण वे राजभवन मे नहीं जा पा रहे थे ओर उधर उनकी ग्यारह रानियॉ प्रतिहिसा की आग में जलती हुई पागल हो रही थीं–इतनी पागल कि अपना भान भूलकर घातक षड्यन्त्र रचने मे लग गईं।

विश्वसुन्दरी की गर्भावस्था को नौवा मास चल रहा था। उद्यान के सुरम्य वातावरण में धर्म साधना के साथ वह अपने गर्भस्थ शिशु का

लालन–पालन कर रही थी। उसकी देखरेख के लिये नगर की सबसे होशियार दाई सलखू नाम की नाइन को नियुक्त कर दिया गया था। वह दिन रात नई महारानी के साथ ही रहती और उसका व उसके गर्भ का हर तरह से खयाल रखती। वह प्रसव कार्य मे बहुत ही कुशल थी अत महाराजा नई महारानी के स्वास्थ्य के प्रति निश्चिन्त हो गये, फिर भी उसकी बराबर सार सभाल कर लेते थे। महाराजा और राज्य की समस्त जनता की यही मनोकामना थी कि गर्भस्थ शिशु पुत्र रूप मे हो तो राजकुमार की प्राप्ति से राज्य के सुयोग्य उत्तराधिकार की समस्या का श्रेष्ठ एव सर्वजनहितकारी समाधान हो जायेगा। सलखू नाई को इसी दृष्टि से पर्याप्त धनराशि देने का आश्वासन दे दिया गया था ताकि वह पूरी परवाह से अपने कार्य मे जुटी रहे।

किन्तु ग्यारह रानियो के हृदय डाह और द्वेष से अग्नि कुण्ड की तरह जल रहे थे। उस जलन मे वे भूल गई कि वे जो कुछ कर रही हैं, क्या वह उनके लिये उचित है ? वे सबका हित भूल गई और अपने अहित की कल्पनाजन्य आशकाओ मे ही डूब गई। हर समय वे ग्यारह रानिया साथ मे बैठी रहतीं और बदला निकालने के तरह–तरह के दुष्ट उपायो के बारे मे सोचती रहती। उन्होने तब अपनी विश्वस्त दासियो को गुप्त तरीके से उद्यानस्थित भवन की सारी जानकारी लेने के लिये भेजा। उन्होने वापिस आकर उन्हे खबर दी कि महारानी विश्वसुन्दरी अद्वितीय सुन्दरी है लेकिन धीर गम्भीर है, उसकी गर्भस्थिति भी सानन्द चल रही है एव नगर की कुशल दाई सलखु नाईन उनकी देखरेख मे लगी हुई है। यह सब सुनकर ग्यारह रानियो के कलेजे पर साप लौट गये। नई महारानी इतनी सुन्दर है तो भला महाराजा अब उनकी ओर ऑख उठाकर भी क्यो देखेगे ? दूसरे यदि उसने राजकुमार को जन्म दिया तो महाराजा उन सब की जिन्दगियो को वेहाल भी बना सकते हैं। इसलिये उनकी राह मे यह जबरदस्त काटा आ गया है जिसको समय रहते कुचल देना चाहिये। ऐसे दुष्ट भावो से वे ग्यारह रानियॉ पुरी तरह से पीडित हो उठीं।

अब सलखू नाईन को किसी भी तरह उन्हे अपनी ओर करके काटा निकाल देना ही हितकर लगा। वे पागलो की तरह इस दुष्कर्म मे जुट गई। उन्होने अपनी एक सर्वाधिक विश्वस्त दासी को उद्यान मे भेजा कि वह सलखू नाईन को उनके पास बुलाकर लावे। कुछ ही देर मे वह दासी निराश होकर लौटी कि नाईन ने आने से इन्कार कर दिया है क्योकि वह नई महारानी की सेवा मे लगी हुई है। तब ग्यारह मे से एक रानी ने कहा–हमने गलती की

सो उसे बिना किसी प्रलोभन के बुलाने को भेजा। इस तरह काम थोडे ही होता है। तब उसने अपने गले से कठला निकाल कर उस दासी को दिया और समझाया कि यह कठला वह पहले नाइन को दे दे फिर उसे हमसे मिलने को कहे। सोने का कठला काम कर गया। स्वामिभक्त सलखू उस सोने को देखकर अपनी स्वामिभक्ति भी कुछ देर के लिये भूल गई और ग्यारह रानियो से मिलने के लिये उस दासी के साथ चली आई।

विश्वसुन्दरी स्वय तथा उसके गर्भ की पूरी जानकारी उन ग्यारह रानियो ने सलखू नाईन के मुह से ली तो वे अधिक चिन्ताग्रस्त हो गई कि अब उनका सर्वनाश निश्चित है। नई महारानी अपूर्व सुन्दरी है, धर्म साधना करने वाली है और सद्गुणी राजकुमार को जन्म देने वाली है–तब भला उन्हे पूछेगा भी कोन ? महाराजा तो उन्हे ठुकरायेगे ही, किन्तु राज्य मे कहीं भी उनकी पूछ नही रहेगी। ऐसे कुविचार से ग्रस्त होकर बाकी दसो रानियो ने भी अपने–अपने गले मे से अपने सोने के कठले उतार कर सलखू नाईन के हाथो मे धर दिये। नाईन तो बावली हो उठी। एक कठले ने ही उसे भान भुला दिया था, अब तो कुल ग्यारह कठले उसकी झोली मे आ गिरे थे। इतने अधिक स्वर्ण को पाकर तो वह उन्मत्त ही हो उठी।

सलखू की उन्मत्तता और ग्यारह रानियो के मन की धधकती हुई आग आपस मे मिल गई।

इस ससार मे जिधर देखो, उधर राग और द्वेष का दावानल धधकता हुआ मिलेगा, फिर भी ममता मे डूबी हुई आत्माएँ समता का अमृत चखने के लिये जागृत नही होती हैं–यही बडी विडम्बना है। महाराजा चन्द्रसेन के अनजाने ही उनके ही रनिवास मे ऐसा भीषण दावानल उठा था कि जिससे क्या अनर्थ घट सकता था, किसी ने नहीं जाना।

वे ग्यारह रानियॉ सलखू नाइन के सामने हाथ बाध कर खडी हो गई और अपने पद की गरिमा को धूल मे मिलाकर याचना भरे शब्दो मे कहने लगी– ओ नाइन मॉ, हमारा जीवन अब तुम्हारे आसरे है और इस रक्षा कार्य का भार हम सभी तुम्हारे ऊपर ही छोड रही हैं। हमारे जीवन को बचाना या नष्ट कर देना अब तुम्हारे ही हाथो मे है। उन्मत्त नाइन इस नाटक को समझ नही पाई, इसलिये आभार के भार के साथ उसने पूछा– आप सब यह क्या कह रही हैं–मैं कुछ भी समझ नही पाई हूँ। आप मुझसे क्या कार्य करवाना चाहती हैं–यह साफ–साफ बताइये। तब ग्यारह रानियो की मुखिया बोली–

नाइन माँ राज्य मे आ जाने के इतने समय बाद भी महाराजा हमसे मिलने तक नहीं आये हैं, क्योकि वे नई महारानी के हाथ के खिलोने बन गये हैं। अब हमारा तिरस्कार और हमारे भविष्य की दुर्दशा निश्चित है जिससे तुम ही हमको उबार सकती हो। सौत के रूप मे आई यह नई महारानी ही हमारे लिये घातक शत्रु हो गई है और उसी से हमारी रक्षा आवश्यक है। अब तुम्हीं सोचो कि हमारा काम तुम किस रीति से सफलतापूर्वक कर सकती हो। यदि हमारा काम तुमने सफलतापूर्वक कर दिया तो जो स्वर्ण हमने अभी तुम्हें दिया है, उससे कई गुना स्वर्ण हम तुम्हे और दे देगे। तुम निहाल हो जाओगी।

सलखू नाइन का मस्तक यह सब सुन देखकर बुरी तरह से चक्कर खाने लगा। कुछ देर स्तब्ध सी रहकर वह अपनी चेतना में लौटी तो पुन कल्पना मे सोने का पीला पीला ढेर दिखाई दिया और उस ढेर के दृश्य ने उस फर्ज को धो पौंछकर एकदम नष्ट कर दिया। वह उचक कर बोली– मैं सब कुछ समझ गई हू। जैसा आप चाहती हैं, वह मे कर लूगी। आप सब वेफिक्र रहे। रानियो की मुखिया ने पूछा– कैसे क्या करोगी– यह तो हमे बता दो। नाइन को कहा भान था सो कुछ सोचती, बोल पडी–कोई योजना आपने सोची हो तो वही बता दो सो मैं उसके अनुसार कार्य कर लूगी। उसे उत्तर मिला–देखो जिस गर्भ के पीछे यह नई महारानी और महाराजा फूले–फूले फिर रहे हैं उनका इस तरह फूलना खत्म हो जाना चाहिये। फिर मुखिया ने उसके कान मे गुप्त तरीका बताया और कहा–सब कुछ इतना गुप्त रहना चाहिये कि किसी को भनक तक न पडे। काम बन जाये और किसी तरह की बदनामी न हो–इसका पूरा ध्यान रखना होगा। समझ गई न कि साप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे। सलखू नाइन ने हामी भरी और कहा–अब आप मुझे यहाँ न बुलावे, नहीं तो व्यर्थ की शका पैदा होगी। मैं वहीं रहकर सारा काम खूबी से कर लूगी। फिर सलखू नाइन उद्यान की तरफ चली गई।

यह पैसा यह अर्थ, यह सोना सोचिये कि किसको कौनसा अनर्थ करने के लिये नही उकसा देता है ? क्या आज की दुनिया इन्ही के पीछे पागल होकर नहीं भटक रही है और न जाने क्या–क्या अनर्थ नही कर रही है ? अर्थ अधिकाश लोगो के माथे पर चढकर घातक अनर्थ कर रहा है और इन्सानियत को पैरो तले रौंद रहा है। किन्तु जो समता के रस मे अपने जीवन को भिगो देते हैं वे अर्थ के प्रति अपनी ममता को भी नष्ट कर देते हैं। सर्वजगत् की कल्याणी मानवता को वे अपने रोम–रोम मे बसाकर महामानव बन जाते है।

विश्वसुन्दरी भी इस तरह के घात–प्रतिघात के षडयन्त्र से दूर, अपनी समता–साधना मे आन्तरिक आनन्द का रसास्वादन कर रही थी। विषमता का विष उसे कही छू भी नही गया था। वह तो समभाव पूर्वक समस्त जगज्जीवो के कल्याण की ही कामना कर रही थी।

गृहस्थाश्रम मे रहते हुए भी चन्द्रसेन ने जिस गहन भावना से सामायिक का समता–रस अपने हृदय मे भरा तो उसके कितने अनूठे चमत्कार प्रकट हुए। किस प्रकार देवता ने उनकी सहायता की तो वाणी की गम्भीरता ने विद्याधर को कितना प्रभावित बना दिया। उसने न केवल अपनी मणि ही दी बल्कि अपनी सुपुत्री का हाथ भी उन्हे सौंप दिया। यह उनकी समत्व शक्ति ही थी जिसके बल पर उन्हे विश्वसुन्दरी जेसी धर्मपत्नी मिली और अपने राज्य के उत्तराधिकारी के उत्पन्न होने की सुखद सभावना। ये सारी उपलब्धियॉ चन्द्रसेन ने अपनी इहलोक की सामायिक–साधना के सुफलस्वरूप ही प्राप्त की थी।

महाराजा चन्द्रसेन को जब सलखू नाइन ने विश्वसुन्दरी की देखभाल से पूरी तरह आश्वस्त कर दिया तो उन्होने राजकीय व्यवस्था सम्बन्धी मामलों को निपटाया। उससे उन्हे जब कुछ अवकाश मिला तो वे रनिवास अपनी पहले की रानियो से मिलने के लिये गये। पटरानी तो नई महारानी के आने से बहुत प्रसन्न थी ही क्योकि उसके जीवन मे भी समभाव का आदर्श फैला हुआ था, अत महाराजा के आते ही उसने सच्चे दिल से स्वागत किया और नई उपलब्धियो की बधाई दी। बाद मे वे शेष ग्यारह रानियो से मिलने गये और अपना सारा विवरण सुनाया। उन्होने यह भी समाधान दिया कि गर्भावस्था के कारण नई महारानी को उद्यान के एकान्त और शान्त वातावरण मे रखा है वरना प्रसवोपरान्त उन्हे राजभवन मे लाया जायेगा व सबसे मिलवाया जायेगा। किन्तु उन रानियो के जीवन मे समता का रस नही था– अपने स्वार्थों का मोह था और दुर्बुद्धि का प्रभाव था अत ऊपर से तो उन्होने प्रसन्नता दिखाई लेकिन भीतर मे जहरभरी ही बनी रही।

उधर सलखू नाइन अपना दैनिक कामकाज निपटा कर एकान्त मे जाकर बैठी और सोचने लगी कि ग्यारह रानियो का काम कैसे पूरा किया जाये ? उसकी नजरो के सामने एक–एक करके ग्यारह सोने के कठले बार–बार घूम रहे थे। अच्छे कार्यों के लिये भी चिन्तन एकान्त मे होता है तो बुरे कार्यो के लिये चिन्तन हेतु भी एकान्त ही चाहिये। कारण यह है कि

एकान्त के समय बुद्धि स्थिर रहती है ओर उस समय मे सोचने से काम को सफल बनाने का पक्का उपाय सूझ जाता है। सलखू तुलना करने लगी कि ग्यारह रानियो ने ग्यारह कठलो के अलावा और भी स्वर्ण देने का आश्वासन दिया है तो महाराजा भी विपुल धनराशि प्रदान करेगे। उसने मन मे सोचा कि चालाकी का ठेका तो उसकी जाति ने ले ही रखा है, फिर वह क्यो नहीं दोनो पक्षो को अपनी होशियारी दिखावे ?

जब उसे मालूम हुआ कि महाराजा नई महारानी के पास आये हैं तो वह वहाँ से उठी और दौडकर प्रसन्नमुख महाराजा के सामने पहुँची। उसने महाराजा से निवेदन किया कि वह उनसे एकान्त मे कुछ बात करना चाहती है। महाराजा ने तुरन्त वहाँ से सबको बाहर चले जाने का सकेत किया और सलखू से पूछा– क्या बात है ? नाइन ने कहा–महाराज, मैंने महारानी जी के गर्भ का आज अच्छी तरह से निरीक्षण किया तो सिर पर प्रकट होने वाले लक्षणो से मुझे यह समझ मे आया है कि गर्भ मे एक नहीं, बल्कि दो सन्तान हैं– जुडवा सन्तान, अत दोनो का जन्म जुडवा ही होगा। दोनो मे से हो सकता है कि एक राजकुमार हो तथा दूसरी राजकुमारी।

त्रिया चरित्र वैसे ही बडा अजीब होता हे ओर उस पर नाइन का त्रिया चरित्र तो अपना सानी नहीं रखता है। उस सलखू नाइन ने विश्वसुन्दरी के गर्भ के अन्दर की बात हावभाव बनाकर इस ढग से महाराजा को कही कि उन्हे उसकी सच्चाई पर विश्वास हो गया कि दो सन्ताने ही जन्म लेने वाली हैं। एक समभावी पुरुष जब तक स्पष्ट प्रमाण नही दीखता किसी को दुष्ट मानता नही और उसकी बात मे अविश्वास करता नही, फिर भला सीधी दृष्टि से चन्द्रसेन उस विश्वासपात्र नाइन की बात मे अविश्वास क्यों करते ?

जहाँ सज्जन और सरल व्यक्ति दूसरे को भी अपने जैसा ही समझता है वहा दुर्जन व दुष्ट स्वभावी व्यक्ति अपना कुकर्म बडे ही छल–कपट के साथ पूरा करना चाहता है। किसी दुर्जन को पहिचानने के लिये हकीकत मे दूसरे दुर्जन की ही जरूरत पडती है। कूटनीति का काटा कूटनीति की मदद से ही निकाला जा सकता है।

चन्द्रसेन ने सलखू को कहा–पक्का ध्यान रखना कि महारानी और उसके गर्भ की सुरक्षा की पूरी–पूरी जिम्मेदारी तुम्हारे ऊपर ही है। ठीक तरह से सतोषजनक कार्य करो जिससे मैं तुम्हे इतना धन दूगा कि तुम निहाल हो जाओगी। लेकिन सोच लेना कि जहाँ जरा भी बेपरवाही या गडबडी तुमसे

हो गई तो उसकी कडी से कडी सजा मिलेगी।

सलखू के मुह से यही निकला राजन्, आप मुझ पर पूरा विश्वास रखे। मुझे इस काम का सबसे ज्यादा अनुभव है ओर मैं अपना काम पूरी परवाह के साथ करूगी। उसके आश्वासन से पुन महाराजा राजकाज देखने मे व्यस्त हो गये। अब सलखू के मन मे जबरदस्त सकट खडा हो गया। एक तरफ तो वह ईर्ष्या और प्रतिशोध की आग मे जल रही ग्यारह महारानियो को प्रलोभन के वश मे होकर विश्वास दिला आई है कि उनका काम वह पूरा करेगी। दूसरी ओर उसने महाराजा को भी पक्का आश्वासन दे दिया है कि नई रानी और उसके गर्भ की सुरक्षा की पूरी-पूरी जिम्मेदारी उसके ऊपर है। एक ओर अनीति का प्रलोभन है तो दूसरी ओर भी नीति का पूरा पारिश्रमिक मिलने की आशा है किन्तु दूसरी ओर उसके मन मे कठोर दण्ड का भय भी खडा हो गया।

जब प्रसव काल समीप आने लगा तो विश्वसुन्दरी को भारी वेदना होने लगी। वेदना इतनी बढ गई कि वह उसे सह न सकी और बेहोश हो गई। उस समय मे सलखू विचार करने लगी कि उसे अपना काम बनाने का यह सुनहला समय मिला है। इस समय यहॉ पर कोई नही है और महारानी भी मूर्च्छित पडी है इसलिये मुझे जो उपाय करना है वह जल्दी कर लूँ। उसका दिमाग हवा मे दौडने लगा कि प्रसव ठीक तरह से करा दूँ तो विपुल धनराशि मिल जायेगी और शायद महाराजा प्रसन्न होकर जागीर भी ऊपर से दे दे। उधर ग्यारह रानियो को भी खुश् कर दू तो मेरा घर सोने से भर जायेगा। उसका दुष्ट विचार जगा कि अगर इस महारानी को जहर देकर या कुछ करके खत्म कर दू तो दोनो पक्ष प्रसन्न हो जायेगे-एक अपना उत्तराधिकारी पा जाने से तो दूसरा अपना काटा निकल जाने से, लेकिन जहर आदि का पता लग सकता है और उस दशा मे उसका पकडा जाना निश्चित है। वह फिर विचार करने लगी कि तब क्या करे ?

सलखू ने सभी तरीको पर विचार किया, लेकिन आखिर यही तय किया कि वह नई महारानी की जिन्दगी को खत्म नही करेगी। एक तो वह विश्वसुन्दरी है और दूसरे, विद्याधर की पुत्री होने के कारण अनेक विद्याओ की ज्ञाता है, अत इसका प्रसव अच्छी तरह से हो गया और वह खुश हो गई तो उसको भी कोई न कोई विद्या सिखा देगी। वह अपने घर को सोने से तो उस विद्या के प्रभाव से ही भर देगी। इस कारण नई महारानी की हत्या

का पाप वह कतई मोल नही लेगी। लेकिन उन ग्यारह रानियो को खुश करने के लिये उसने जो कार्यक्रम सोचा है उसको विश्वास है कि वह कार्यक्रम यथासमय अवश्य ही सफल हो जायेगा।

प्रसव की असह्य वेदना से विश्वसुन्दरी बेहोश हो गई थी लेकिन उसकी वह बेहोशी किसी बीमारी का परिणाम नहीं थी। जब उस सलखू नाइन ने तय कर लिया कि महारानी को कोई हानि नहीं पहुचानी है इसलिये उन ग्यारह रानियों का काम तो तभी बन सकता है जब आने वाली सन्तान का कुछ किया जाये। फिर वह विचार करने लगी कि महाराजा, दीवान जी वगैरा सब जानते हैं, 9वॉ मास पूरा होने वाला है और सन्तान आने वाली है, ऐसी अवस्था मे क्या आने वाली सन्तान को भी किसी प्रकार की हानि पहुचाना उसके लिये घातक नहीं हो जायेगा ? वह पकडी जायेगी और उसे कडी सजा भुगतनी पडेगी। अब उसकी घाटधड और ज्यादा बढ गई कि वह क्या करे ? उसकी दशा पागलो जैसी होने लगी।

जिस कमरे मे महारानी छटपटा रही थी उसी कमरे मे सलखू भी खडी थी। उसी समय उस कमरे की खिडकी से उसे बाहर एक दृश्य दिखाई दिया। बाहर भी एक कुतिया प्रसव वेदना के कारण छटपटा रही थी। उस कुतिया का प्रसव अपने आप ही हो रहा था, उसके पास कोई दूसरा नहीं था।

सलखू तब कुतिया पर से नजर हटाकर महारानी के पास गई और उसने सुखद प्रसव के लिये विधिपूर्वक कार्य करना शुरू कर दिया। जब प्रसव हुआ तो वास्तव मे दो सन्तानो ने जन्म लिया–एक पुत्र तथा दूसरी पुत्री। बच्चों को कभी–कभी माता–पिता की सुन्दरता मिलती है और यदि बच्चो की पुण्यवानी अधिक प्रबल हो तो वे माता–पिता से भी अधिक सुन्दर हो जाते हैं। सलखू ने देखा कि वे पुत्र और पुत्री अपने माता–पिता से भी अधिक सुन्दर और आकर्षक थे। उन्हे देखकर उसके मन मे भी प्रमोद भाव जागृत हुआ। उसे अनुभव हुआ कि अपने जीवन मे उसने अनेकानेक प्रसव कार्य कराये लेकिन इतनी सुन्दर सन्तान पहले उसके देखने मे कभी भी नहीं आई थी। तब क्या वह ऐसी मनमोहक सन्तानो का घात करगी ? वह विस्मित हो गई। यदि घात करे और इस बीच महारानी की मूर्छा टूट जाय तो उसकी क्या दुर्दशा हो सकती है– कहा नहीं जा सकता। वह कुछ भी नहीं कर पाई।

तभी प्रसव हो जाने से वेदना मिटी तो महारानी की मूर्छा भी टूटी, किन्तु शान्ति मिल जाने से उसे निद्रा आ गई। तब सलखू की दुर्भावना फिर भडक उठी। उसने सोचा कि उसे अपना काम बनाने का योग फिर मिल गया है। उसको उपाय सूझ गया। उसने कुतिया का प्रसव अभी देखा ही था– उसके भी दो पिल्ले हुए थे– एक बच्चा और एक बच्ची। झट से उसने तय कर लिया कि विश्वसुन्दरी के दोनो बच्चो को वह मार कर कुतिया के सामने रख आवे और कुतिया के दोनो बच्चो को लाकर विश्वसुन्दरी के पास सुला दे–बस उसका काम बन जायेगा तथा महाराजा को दो सन्तान होने की उसके द्वारा कही हुई बात भी सच हो जायेगी।

यह सोचकर सलखू ने नई महारानी के दोनो बच्चो को अपने हाथो मे उठाया और उनके गले दबाने की निर्दयता उसके क्रूर मन मे जागी। किन्तु यकायक उसका हाथ रुक गया। उसके मन की निर्दयता जैसे दूर भागने लगी और उसकी जगह स्नेह भावना पेदा होने लगी। फिर भी वह बच्चो को हाथो मे लिये खडी थी–न मारने का निश्चय कर पा रही थी और न ही न मारने का। उसका मस्तिष्क असमजस मे ही डूबा रहा।

पाप कार्य करने का पल भी बडा नाजुक होता है। जब मनुष्य पाप करने पर उतारू होता है तो एक बार उसके भीतर कपकपी छूट जाती है। उसके भीतर से आवाज उठती है कि वह पाप करने से बाज आए। उसका अन्त करण जागृत हो जाता है। मोह या किसी अन्य पाप भावना के वशीभूत होकर वह पाप कार्य करने को तैयार होता है लेकिन उसके अन्त करण से आवाज उठती है कि ऐसा मत करो–यह क्रूरता का कार्य है और ऐसा घातक कार्य करना उचित नहीं है। ऐसे समय मे साधारण तौर पर पापी मनुष्य का मन बदल जाता है और व पाप कार्य करने से अपने को रोक लेता है। सलखू के खयालो मे भी उस समय ऐसी ही ऊँच–नीच चल रही थी। उसने सोचा कि ऐसा पाप कार्य करने से जागीर तो मिलने से रही–उसका बुरा नतीजा भी भुगतना पड सकता है। वह भी अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुनने लगी। मूल मे पाप से कैसे बचा जाय–यह प्रत्येक प्राणी की भावना होती है और अगर वह अपने भीतर के चिन्तन को मान लेता है तो हकीकत मे वह पाप से बच भी जाता है। जो अन्तरात्मा की आवाज को सुनकर पाप से बच जाते हैं, वे पुण्य का उपार्जन कर लेते हैं, किन्तु जो अन्तरात्मा की आवाज को ठुकरा कर पाप कार्य मे अपने मनोभावो की निर्दयता को प्रकट कर ही देते हैं, वे अपने

इस जन्म तथा भावी जन्मो को पाप के काले कर्मो से रग देते हैं।

उस पापिनी सलखू का मस्तिष्क भी असमजस से बाहर निकला, क्योकि उसने अपनी अन्तरात्मा की आवाज को अनसुनी कर दी थी। उसने अपने मनोभावो की क्रूरता को न रोकने का निश्चय किया और तदनुसार वह अपनी दुष्प्रवृत्ति मे लग गई।

दुष्टात्मा यह नही विचारती कि उसके पाप कार्य का कितना घातक परिणाम सामने आ सकता है और वह तो अपनी दुष्टता का दृश्य दिखा ही देती है। यह दूसरी बात है कि प्रकृति ढाल बनकर उसकी दुष्टता को सफल न होने दे।



11

सम्पूर्ण पाप प्रवृत्तियो का वीतराग देवो ने एक मूल बताया है और वह है मिथ्यात्व। मिथ्यात्व मिटाया जा सकता हे सम्यक्त्व–सयम से और पूर्ण सयम के माध्यम से ही आत्म–विकास की महायात्रा सफलतापूर्वक सम्पन्न की जा सकती है। किन्तु जब तक पूर्ण सयम अगीकार करने की स्थिति न बनें, तब तक भी सयम की साधना तो आरम्भ की जा सकती है। श्रावक धर्म साधु धर्म की निचली सीढी है और श्रावक धर्म का पालन करते हुए आशिक सयम साधना होती ही है। आशय यह है कि असयम जितना अधिक मनुष्य की वृत्तियो तथा प्रवृत्तियो मे फैलता जाता है, उतना ही जीवन मे निकृष्ट पतन होता जाता है। अत ऐसे पतनकारक असयम को नियन्त्रित करने के लिये सयम की साधना जितने अशो मे भी की जा सके, करना आवश्यक ही है।

सलखू नाइन एक बार जो असयम की फिसलन पर फिसली तो फिर फिसलती ही चली गई, अपने आप को रोक नही पाई, क्योकि उसने सयम का आश्रय ग्रहण नहीं किया।

महाराजा चन्द्रसेन ने सलखू नाइन की असयमी वृत्ति को पहचाना नही और उसके द्वारा दिये गये विश्वास के पीछे वे निश्चिन्त बने रहे। किन्तु जब सारी घटना उनके सामने आई तो वे हतप्रभ ही नही रह गये बल्कि उसके धक्के से तिलमिला उठे। महाराजा को स्वप्न मे भी आशका नही थी कि नई महारानी विश्वसुन्दरी कुतिया के पिल्ले सरीख बच्चे–बच्चियो को जन्म देगी। ऐसी अनहोनी के सामने तो वे आतकित जैसे हो गये। बार–बार यही विचार आने लगा कि आखिर यह कैसा तमाशा हो गया है ?

वे सोचने लगे–मेरी पटरानी ने मुझे धर्म के मार्ग पर प्रवृत्त बनाया तब से मैं नियमित रूप से सामायिक की साधना कर रहा हूँ। जनता के आग्रह पर मैंने तेला करके देव का आह्वान किया और देव ने भी स्पष्ट कथन किया कि मुझे सन्तान की प्राप्ति होगी तथा जनता की मनोकामना पूर्ण होगी। तो क्या देव का कथन भी असत्य सिद्ध हो जायगा ? देव की भविष्यवाणी के अनुसार ही मुझे मणि और सारे लक्षण पूर्ण आशाजनक थे, फिर यह क्या परिणाम सामने आ गया है ? स्वय विश्वसुन्दरी परम चारित्र्यशील महिला है, धर्माराधना मे भी वह प्रवृत्त हो गई है, फिर ऐसा दुर्भाग्य कैसे प्रकट हुआ ? सलखू नाइन का भी क्या दोष निकालूँ ? वह तो सूचना देते समय

खुद ही बुरी तरह से रो रही थी। इस तरह सरल हृदय महाराजा तरह-तरह से विचार करते रहे।

बात स्पष्ट नहीं हुई किन्तु बार-बार उनका मस्तिष्क सशकित होने लगा। देववाणी झूठ निकले-यह सम्भव नहीं। दोनो धर्मसाधको के ऐसी सन्तान हो-यह भी कल्पनीय नही है। फिर यह क्या है ? क्या सलखू नाइन की ही तो कहीं गडबडी नहीं है ? शका उठती और प्रमाणहीन होने से फिर मिट जाती, किन्तु फिर उठ जाती। वह समाप्त नहीं हो रही थी।

कहा गया है कि किसी भी विषय मे जब कोई शका उत्पन्न हो जाय तो उसका तुरन्त समाधान कर लेना चाहिये, क्योकि सशयात्मा विनश्यति-जो सशयशील बना रहता है, उसका विनाश हो जाता है। विनाश का अभिप्राय है कि वह मानसिक रोग से ग्रस्त हो जाता है जिसकी चिकित्सा भी सरलता से सम्भव नहीं होती है। कदाचित् शका नही है और जीवन मे दोष लग गये हैं तो वह बराबर कचोटता रहता है। उस दोष को प्रकट करने मे सकोच किया जाता है कि लोग क्या कहेगे लेकिन ऐसे दोष के लिये भी अगर शुद्ध मन से आलोचना नहीं की जाती है तो उससे भी मानसिकता मे विकार पैदा हो जाता हैं। सशय निवारण नहीं करने से तो कई मामले सुनने मे आये हैं कि बड़े-बड़े लोग भी पागल हो गये। ब्यावर चातुर्मास मे मैंने स्वय ने देखा कि एक भाई बेकार बकता रहता था। मैंने पूछा कि वह कौन है तो मुझे बताया गया कि पहले यह व्यक्ति बहुत ही बुद्धिमान था किन्तु उसको अपने योग्य कार्य नहीं मिला तो पागल हो गया।

महाराजा की विचार-ग्रस्तता मिट नही रही थी। बात क्या बनी ? देववाणी खाली नहीं जाती। जनता की भावना भी सामूहिक रूप मे प्रकट होती है तो वह असफल नही होती। फिर यह विपरीत रूप कैसे सामने आया है ? उनका मन करने लगा कि कोई विशिष्ट ज्ञानी मिल जाय तो सारी परिस्थिति का समाधान करा लू। फिर सोचा कि तेला करके पुन देव का आह्वान करू। श्रीकृष्ण ने भी अपने छोटे भाई के होने की जानकारी लेने के लिए देव को बुलाया था। परन्तु मेरी वर्तमान मानसिक स्थिति इतनी डावाडोल है कि मन का स्थिर रह पाना कठिन है। मुझे कुछ न कुछ उपाय तो निकालना ही चाहिए जिससे इस घटना का स्पष्टीकरण मिल सके।

जिसने समस्त पापपूर्ण कृत्यो के एक मात्र हेतु मिथ्यात्व के घातक स्वरूप को नही समझा वह भला मानवता के पवित्र स्वरूप को समझ ही कैसे

सकता है ? कारण, मिथ्यात्व उसके हृदय मे ऐसी निर्दयता भर देता हे कि उसे अपना स्वार्थ ही दिखाई देता है—मानवता का ध्यान तक नहीं आता। सलखू नाइन ने जब ऐसा पाप कार्य किया तो न तो उसने अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुनी और न उसने गहराई मे जाकर सोचा कि उस पाप का क्या नतीजा होगा ? यह भी नहीं समझ पाई कि पाप का भडाफोड हो जायगा तो उसके पास जो सम्पत्ति है वह भी क्या उसके पास रह पायेगी ? फिर आने वाली सम्पत्ति का क्या है ? सोना कहा रह जायगा, रानियॉ कहॉ रह जाएगी और उसे फासी पर लटक जाना पडेगा—स्वार्थ मे अधी बनकर यह भी वह दिल मे नही जमा पाई। उसने यह भी विचार नही किया कि जीवन निर्वाह के लिए कितनासा धन चाहिए और बहुत सारा सोना मिल जायगा तो क्या वह रोटी के बदले सोने को खा सकेगी ?

किन्तु सलखू के हृदय मे मानवता का वास नहीं था, इसलिए सद्य जन्मजात फूल से कोमल और सुन्दर बच्चो के साथ वह ऐसा पाप कृत्य कर सकी। वे बच्चे पूर्व जन्म की पुण्यवानी लेकर आये थे तभी तो राजघराने मे जन्मे। उनकी आकृतिया बता रही थीं कि उनका पुण्यार्जन कितनी उत्कृष्ट कोटि का था। लेकिन इस सलखू पापिन ने ईर्ष्यालु रानियो से प्रलोभन पाकर कैसा घृणित कुकृत्य किया ? वह सोचने लगी कि अब कैसे क्या करू ? बच्चो की तरफ नारी सुलभ ममता से भी देखती तो मन पिघल जाता, किन्तु धन प्राप्ति की लालसा मे वह तो अन्धी ओर बेजान हो गई थी। धन के पीछे कभी—कभी मनुष्य मे ऐसी जघन्य क्रूरता भी आ जाती है कि वह अपने जन्मदाता उपकारी माता—पिता तक का घात कर बैठता है। पैसो का खून जब डाढ के लग जाता है तो ऐसी क्रूरता बढती रहती है। चद चादी के टुकडो के पीछे ही तो दहेज जैसी राक्षसी प्रथा चल रही है जिसके कारण कितनी कन्याए या महिलाएमर रही हैं या मारी जा रही हैं ? ऐसे लोभी मनुष्यो को क्या कहा जाय राक्षस ही कहा जाय या कोई दूसरी उपमा दी जाय ? पशु भी ऐसा दुष्कर्म नही करते हैं। असली शेर भी उतना ही शिकार करता है जिससे कि उसका पेट भर जाय और सही भूख न लगे तब तक शिकार नहीं करता और यह मनुष्य क्या करता है ? पेट भरने के लिए या पेटियॉ भरने के लिए या धन का पहाड खडा करने के लिए ? ऐसी लालसा के साथ वह खोटे से खोटा आचरण करते हुए भी नही हिचकिचाता है। इसी कारण मानवता तक को भूल जाता है। कोठो मे अनाज सडता रहता है, पेटियो मे कपडे गलते रहते हैं, फिर भी लोभी मनुष्य उसे भूखो और नगो को देना नहीं चाहता। ऐसे

मनुष्यो को आप किस कोटि मे रखना चाहेगे ? आप ही निर्णय ले ओर इस संदर्भ मे अपने जीवन व्यवहार पर भी अवश्य एक नजर डाल ले।

इस सलखू नाइन ने असयम मे डूब कर कोन-सा पाप ढोया ? वह नये जन्मे बच्चे-बच्चियो के प्रति अपनी कर्त्तव्य भावना दिखाती तो वह आगे चलकर कितना लाभ उठा सकती थी ? लेकिन भ्रष्टमति होकर स्वार्थ मे अन्धी बन गई और पशु से भी निकृष्ट कृत्य कर बैठी। उसने सोच लिया कि जब तक महारानी बेहोश है तब तक काम निपटा लेना चाहिए। अब विलम्ब करने का प्रसग नही है। अपने हाथो से इन बच्चो को मार डालू, वह सोचती है, लेकिन फिर ठिठक जाती है। कैसे मारू ? मेरे हाथो से न मारू और ऐसा करू कि ये जीवित न बच सके।

महाराजा के उस निजी उद्यान के पीछे ही जगल शुरू हो जाता था। उस जगल मे एक ऐसा कुआ था जिसमे पानी नहीं था, उसमे कूडा-कचरा भरा था और कई तरह के जन्तु रहते थे। उस कुए का ध्यान आते ही सलखू ने उन नवजात शिशुओ को लेकर उस दिशा मे तेजी से कदम बढाये। उसने दोनो सुन्दर सुकुमारो को कुए मे फैंक दिये और कुतिया के दोनो पिल्लो को लेकर वापिस चली आई। वे ही दोनो पिल्ले थे जो महारानी को बताये गये कि वे उसकी कोख से जन्मे हैं और यही बात महाराजा को बताई गई जो उसे एक दुर्घटना मानकर बुरी तरह से चिन्तित हो रहे थे। उनसे गुत्थी नही सुलझ रही थी कि ऐसी अकल्पनीय बात कैसे घटित हो सकती है ? इसका कारण यही था कि वे सद्भावी महाराजा उस घटना का दोषारोपण बिना सूत्र के किसी के ऊपर नहीं करना चाहते थे। फिर सलखू ने यह सूचना महाराजा को ऐसे नाटकीय हाव-भाव के साथ दी कि उन्होने उसके प्रति किसी तरह की शका नही की।

सलखू ने सोचा कि मेरे अलावा किसी को भी बच्चो के कुए मे डालने का पता नही है सो बात छिपी ही रह जायगी। कोई नही जान पायेगा कि मैने क्या किया ? यह सोचकर वह निश्चिन्त हो गई और उसने एक दासी को भेज कर महाराज को सूचना करवाई कि प्रसव कार्य ठीक तरह से पूरा हो गया है। महाराजा ने यह सुना तो दौडे-दौडे आये क्योकि शुभ सूचना सुनने के लिए वे परम उत्सुक हो रहे थे। वे तो दासी की बात सुनते ही विचार-मग्न हो गये कि अब तुरन्त क्या-क्या कार्यक्रम रखने है ? कार्यक्रमो मे उनका ध्यान गया कि गरीबो को धन बाटना है जनता की भलाई के काम

करने हैं, कैदियो को छोडना है आदि–आदि। उनका मन बना कि ऐसे शुभ अवसर पर पूरा परोपकार करना है।

जब महाराजा महारानी के कक्ष के बाहर पहुँचे तो सलखू उन्हे सूचना देने के लिए झट बाहर निकल आई। उसने अपने चेहरे को नकली दु ख और पीडा के भावो से रग लिया तथा मुह बनाकर इस तरह महाराजा के सामने खडी हो गई जैसे उसकी रुलाई छूट रही हो, मगर वह कुछ भी बोल नहीं पा रही हो। महाराजा का तो हर्ष समा नहीं रहा था, अत उस और तुरन्त उनका ध्यान नही गया और वे पूछ बैठे–क्या हुआ सलखू ? क्या दोनो राजकुमार आये या दोनो राजकुमारिया अथवा एक राजकुमार और एक राजकुमारी ? महाराजा की जिज्ञासा उग्र बनी हुई थी। सलखू तो नाइन–चरित्तर शुरू कर बैठी और फफक–फफक कर रोने लगी। महाराजा आश्चर्य चकित कि इस मगल वेला मे भला यह क्या कर रही है ? उन्होने डपट कर पूछा–क्या बात है ? वह बोली कुछ नही ओर इस तरह जमीन पर गिर पडी जेसे कि हकीकत मे उसको चक्कर आ गया हो। फिर हडबडा कर वह उठी और विलाप करते–करते कहने लगी– महाराज, महारानी जी का जीवन तो बच गया किन्तु मेरा ही भाग्य फूटा हुआ निकला जो उनकी कोख से आदमी के नही, कुतिया के बच्चे निकले हैं। महाराज को तो इतना सुनते ही मूर्छा जैसी आने लगी। पहले तो वे जैसे विचार शून्य से हो गये, बाद मे जो भाति–भाति के विचारो से ग्रस्त हुए तो विचारमग्न ही बने रहे।

महाराजा हतप्रभ से सोच ही रहे थे कि, दीवानजी आ गये और सलखू को झिझोडकर पूछने लगे कि ऐसी अनहोनी कैसे हो सकती है ? सलखू ने सोचा कि मौके पर तीर मार दूँ, सो बोली– मैं जानती हूँ कि ऐसी अनहोनी कैसे हो सकती है–मुझे सब पता है। दीवानजी अचम्भे से उसका मुह ताकने लगे और बोले–स्त्री के गर्भ से कभी पशु जन्मे–ऐसा मैंने नही सुना। फिर तुमको क्या पता है, जल्दी से बताओ। महाराजा का ध्यान भी अनायास ही उसकी तरफ मुड गया।

सलखू कहने लगी–आपने नही सुना होगा किन्तु कभी–कभी ऐसे मौके भी आते हैं। पशु का सम्बन्ध स्त्री से हो जाता है तो ऐसी अनहोनी भी हो जाती है। यह सुनते ही महाराजा तो जैसे पानी–पानी हो गये और कुछ का कुछ सोचने लगे।

कल्पना कीजिये कि असत्य के कुटिल बीज को जब दुष्ट मनुष्य झूठ और धोखा के पानी से सींच देता है तो उसका कैसा विकृत फल प्रस्तुत हो जाता है ? सलखू ने तोड़ मरोड़ कर ऐसी घटना खड़ी कर दी जैसे वह दूध की धुली हुई है और जो पाप किया है वह सब महारानी ने किया है। छल-छद्म की सीमा लांघ गई थी वह ! मन ही मन वह खुशी के झकोरे खा रही थी कि कितनी सफाई से उसने षडयन्त्र को कामयाब बना दिया है ? अब उसकी पौ बारह है। सभी ओर से उसको लाभ ही लाभ है। ग्यारह रानियों का मनचाहा उसने कर दिया था कि राजकुमार-राजकुमारी न रहे और नई महारानी इतनी बदनाम हो जायेगी। महाराजा को भी उसका अहसान ही मानना पड़ेगा कि ऐसी कठिन परिस्थिति में भी नई महारानी की जिन्दगी बचा ली गई है।

महाराजा कांपते कदमों से महारानी के कक्ष में पहुँचे और उन्होंने देखा कि वास्तव में उसके पहलू में दो पिल्ले पड़े हुए हैं। वहीं से महाराजा उल्टे पैरों अपने कक्ष में चले गये और मन को नियन्त्रित करके साधना-रत हो गये। नई महारानी पश्चात्ताप करने लगी कि उसने ऐसे क्या कुकर्म पहले के जन्म में किये थे जिनका ऐसा कुफल उसे आज देखना पड़ा। महाराजा की रुष्टता तो उसको मिलेगी ही ऊपर से अपयश और भोगना पड़ेगा। उधर ग्यारह रानियों खुशी से फूली जा रही थीं कि सलखू ने जैसा कहा वैसा ही कर दिखाया। उनका बदला पूरा हो गया था-अब मुंह दिखाव महाराजा और हिम्मत करे उनका निरादर करने की ? असल में क्या बात होती है और दुष्ट उसको क्या अपरूप बनाकर उसे सबके सामने प्रस्तुत कर देता है कि [illegible] का असल से कहीं ताल्लुक तक नहीं दिखाई देता। चन्द्रसेन [illegible] अपने और और [illegible] से विलग होकर अपना अन्तःकरण धर्म ध्यान में लगा रहे थे तो ग्यारह रानियाँ व सलखू प्रतिशोध और स्वार्थ की दुष्ट [illegible] में [illegible] रही थीं। क्या आश्चर्य है कि [illegible] का [illegible] नहीं [illegible] और [illegible] नहीं [illegible]। [illegible] सन्ताप दूर [illegible] हो गये और [illegible] की पश्चात्ताप [illegible] कि [illegible] दुर्भावित कर्मों का फल है [illegible] के कारण [illegible] प्रकार [illegible] लगी।

पूर्व जन्म की पुण्यवानी का जब उदय होता है और आयुष्य का बल प्रबल होता है तो उसका कैसा भी दुष्कर्म कुछ भी नहीं बिगाड सकता है। सलखू तो नवजात शिशुओ को कुए मे फैंकती ही तत्काल वापिस चली आई थी किन्तु उसी समय उधर से एक ब्रह्मानन्द नाम के फक्कड बाबा निकले, जिनकी दृष्टि शिशुओ की तरफ चली गई। शिशुओ को जब फैका गया था तो वे सूखे पत्तो की ऐसी मोटी परत पर गिरे कि उन्हे कोई आच नही आई अत वे रोने लगे। शिशुओ का रूदन भी उन बाबा ने सुना तो वे तुरन्त कुए के भीतर पहुँचे और दोनो बच्चो को हाथ मे लेकर बाहर निकल आये।

यह गम्भीर चिन्तन का विषय है कि पाप कृत्य कर लेना तो सहज है किन्तु उसको दबा देना उतना ही कठिन–पाप छिपाया ना छिपे, छिपे तो मोटा भाग। इस कारण प्रत्येक विवेकशील मानव को पाप की जड क्या है–इसे समझना चाहिये और उस मूल को पकडकर सयम की दिशा मे अग्रसर होना चाहिये। सयम पर पूर्ण श्रद्धा रहेगी तो एक दिन अवश्य आयगा कि पूर्ण सयम अगीकार किया जा सके। यह भी सयम का प्रथम चरण है कि जब साधु अवस्था स्वीकार्य न हो, तब तक श्रावक के बारह व्रत अवश्य ग्रहण किये जाय। सयम की साधना करने से ही आत्मा क्रूर कर्मो के बन्धन से बच सकती है। इसी भावना के साथ चन्द्रसेन एव विश्वसुन्दरी तब सयम का अवलम्बन लेकर उस कठिन समय मे भी शान्ति का अनुभव करने लगे। बाह्य परिस्थितियो की अत्यधिक अशान्ति का भी आन्तरिक शान्ति से शमन हो जाता है।

मनुष्य का मन चिन्तन की एक ही धारा मे लम्बे समय तक लगातार टिका हुआ नही रहता है। एक ही धारा अधिक से अधिक एक मुहुर्त तक चलती है। क्योकि उसके बाद दूसरी धारा चल जाती है। महाराजा चन्द्रसेन की चिन्तनधारा भी आन्तरिक चिन्तन मे चली तो अन्तर्मुहुर्त मे विश्वसुन्दरी की ओर मुड गई और वे सोचने लगे कि इतने लम्बे समय तक धर्मपत्नी के नाते विश्वसुन्दरी के साथ रहने से उसकी चारित्रिक उच्चता का ही अनुभव हुआ है तथा उसकी आन्तरिक विशुद्धता का ही परिचय मिला है, फिर यह कैसे क्या हो गया ? उन्हे तो उसके अनुकूल दिव्य स्वरूपी सन्तान की ही आशा थी। ऐसी आशा के विपरीत वह कुतिया के पिल्लो जैसी सन्तान को जन्म दे–यह कतई विश्वसनीय नही लगता। किन्तु यह नाइन जो बोल रही है, वह भी भला गलत क्यो बोलेगी ? तो क्या महारानी ने मेरे जीवन पर कलक लगाया है और अपने जीवन तथा इस राज परिवार को भी लाछित किया

है ? इसी तरह उनके मानस में कभी यह तो कभी वह उठता रहा—चिन्तन में स्थिरता अथवा निश्चितता नहीं आ सकी। उनकी मन स्थिति ऐसी असन्तुलित सी हो रही थी कि भांति-भांति के विचार उठते रहे। यह भी उनके मन में आया कि पर से सम्पर्क होने के तथ्य का पता विश्वसुन्दरी से पूछ कर क्यों न लगाया जाय ?

धीरे-धीरे [illegible] का सोच एकांगी होने लगा और एक तरफा भावना बनने लगी कि विश्वसुन्दरी का ही दोष हो सकता है। यह सोचते हुए उनके मन में उठा कि ऐसी महारानी का मुंह भी नहीं देखना चाहिये। विचार की इसी धारा में उन्होंने दासियों को आज्ञा दे दी कि नई महारानी को दूसरे छोटे महल में पहुँचा दो और वहीं उसकी खाने पीने की समुचित व्यवस्था कर दो-पटरानी की तरह सम्मान देने की आवश्यकता नहीं है। यह आज्ञा देकर महाराजा वहां से चले गये और भीतर ही भीतर खिन्न से रहने लगे। उनका राज्य के कामकाज में भी मन नहीं लगता था। दीवानजी बार-बार आश्वस्त करते कि जो हुआ सो हुआ उसे भूल जाइये किन्तु महाराजा न उस घटना को भूल पाते और न अपने मन को स्वस्थ बना पाते। उनको ऐसा अनुभव होने लगा कि वे किसी भी कार्य को करने में सक्षम नहीं रह गये हैं।

पूर्व जन्म की पुण्यवानी का जब उदय होता हे ओर आयुष्य का बल प्रबल होता है तो उसका कैसा भी दुष्कर्म कुछ भी नहीं बिगाड सकता है। सलखू तो नवजात शिशुओ को कुए मे फैंकती ही तत्काल वापिस चली आई थी किन्तु उसी समय उधर से एक ब्रह्मानन्द नाम के फक्कड बाबा निकले, जिनकी दृष्टि शिशुओ की तरफ चली गई। शिशुओ को जब फैका गया था तो वे सूखे पत्तो की ऐसी मोटी परत पर गिरे कि उन्हे कोई आच नही आई अत वे रोने लगे। शिशुओ का रूदन भी उन बाबा ने सुना तो वे तुरन्त कुए के भीतर पहुँचे और दोनो बच्चो को हाथ में लेकर बाहर निकल आये।

यह गम्भीर चिन्तन का विषय है कि पाप कृत्य कर लेना तो सहज है किन्तु उसको दबा देना उतना ही कठिन–पाप छिपाया ना छिपे, छिपे तो मोटा भाग। इस कारण प्रत्येक विवेकशील मानव को पाप की जड क्या है–इसे समझना चाहिये ओर उस मूल को पकडकर सयम की दिशा मे अग्रसर होना चाहिये। सयम पर पूर्ण श्रद्धा रहेगी तो एक दिन अवश्य आयगा कि पूर्ण सयम अगीकार किया जा सके। यह भी सयम का प्रथम चरण हे कि जब साधु अवस्था स्वीकार्य न हो, तब तक श्रावक के बारह व्रत अवश्य ग्रहण किये जाय। सयम की साधना करने से ही आत्मा क्रूर कर्मो के बन्धन से बच सकती है। इसी भावना के साथ चन्द्रसेन एव विश्वसुन्दरी तब सयम का अवलम्बन लेकर उस कठिन समय मे भी शान्ति का अनुभव करने लगे। बाह्य परिस्थितियो की अत्यधिक अशान्ति का भी आन्तरिक शान्ति से शमन हो जाता है।

मनुष्य का मन चिन्तन की एक ही धारा मे लम्बे समय तक लगातार टिका हुआ नही रहता है। एक ही धारा अधिक से अधिक एक मुहुर्त तक चलती है। क्योकि उसके बाद दूसरी धारा चल जाती है। महाराजा चन्द्रसेन की चिन्तनधारा भी आन्तरिक चिन्तन मे चली तो अन्तर्मुहुर्त मे विश्वसुन्दरी की ओर मुड गई और वे सोचने लगे कि इतने लम्बे समय तक धर्मपत्नी के नाते विश्वसुन्दरी के साथ रहने से उसकी चारित्रिक उच्चता का ही अनुभव हुआ है तथा उसकी आन्तरिक विशुद्धता का ही परिचय मिला है, फिर यह कैसे क्या हो गया ? उन्हे तो उसके अनुकूल दिव्य स्वरूपी सन्तान की ही आशा थी। ऐसी आशा के विपरीत वह कुतिया के पिल्लो जैसी सन्तान को जन्म दे–यह कतई विश्वसनीय नही लगता। किन्तु यह नाइन जो बोल रही है, वह भी भला गलत क्यो बोलेगी ? तो क्या महारानी ने मेरे जीवन पर कलक लगाया है और अपने जीवन तथा इस राज परिवार को भी लाछित किया

है ? इसी तरह उनके मानस मे कभी यह तो कभी वह उठता रहा–चिन्तन में स्थिरता अथवा निश्चितता नहीं आ सकी। उनकी मन स्थिति ऐसी असन्तुलित सी हो रही थी कि भाति–भाति के विचार उठते रहे। यह भी उनके मन मे आया कि पशु से सम्पर्क होने के तथ्य का पता विश्वसुन्दरी से पूछ कर क्यों न लगाया जाय ?

धीरे–धीरे चन्द्रसेन का सोच एकागी होने लगा और एक तरफी भावना बनने लगी कि विश्वसुन्दरी का ही दोष हो सकता है। यह सोचते हुए उनके मन मे उठा कि ऐसी महारानी का मुह भी नही देखना चाहिये। विचार की उसी धारा मे उन्होंने दासियो का आज्ञा दे दी कि नई महारानी को दूसरे छोटे मकान मे पहुँचा दो और वहाँ उसकी खाने पीने की समुचित व्यवस्था कर दो–राजरानी की तरह सम्मान देने की आवश्यकता नहीं है। यह आज्ञा देकर महाराजा वहाँ से चले गये और भीतर ही भीतर खिन्न से रहने लगे। उनका राज्य के कामकाज मे भी मन नही लगता था। दीवानजी बार–बार आश्वस्त करते कि जो हुआ सो हुआ, उसे भूल जाइये किन्तु महाराजा न उस घटना को भूल पाते और न अपने मन को स्वस्थ बना पाते। उनको ऐसा अनुभव होने लगा कि वे किसी भी कार्य को करने मे सक्षम नही रह गये हैं।

उधर महारानी विश्वसुन्दरी विचार कर रही थी कि पतिदेव मेरे साथ कितना स्नेह रखते थे और मेरी बात को पूरा आदर देते थे किन्तु अशुभ कर्मो का कैसा झौंका आया है कि वे मुझसे इस तरह रुष्ट हो गये हैं। मैंने अज्ञानपूर्वक कोई काम किया हो अपनी आत्म–शक्ति को कभी भी गलत रास्ते पर लगाई हो अथवा किसी पर झूठा लाछन लगाया हो–ऐसा मुझे याद नहीं पडता है। किसी पर कोई दोष लगाने से क्या लाभ ? सलखू नाइन को पूरी विश्वासपात्र समझकर ही महाराजा ने लगाई होगी और उसकी काफी धनराशि भी दी, फिर वह ऐसा काम क्यो करने लगी ? फिर कुतिया के ये पिल्ले मेरी गोद मे कैसे आये ? मैं जहाँ तक अपने पिछले जीवन का अवलोकन करती हूँ और अरिहत सिद्ध की साक्षी से अपने आचरण की आलोचना करती हूँ तो एक भी तथ्य ऐसा समझ मे नहीं आता है जो न्यूनतम रूप से भी कलकयोग्य माना जा सके। जब से मैंने होश सम्हाला है तब से अपनी एक–एक वृत्ति और प्रवृत्ति की तरफ बारीकी से भी देखती हूँ तब भी मुझे एक भी वृत्ति या प्रवृत्ति ऐसी नहीं दीखती कि मैं चारित्र्य के ऊँचे धरातल से कभी भी फिसली होऊ। मैंने सदा ही सभी पुरुषो को पिता और भ्राता के तुल्य माना है, फिर पशु के प्रति मेरी विकारपूर्ण विचारणा स्वप्न मे भी सम्भव

केसे हो सकती हे ? जब मैंने पशु को विकार की दृष्टि से न सोचा, न देखा तो फिर यह पशुवत् सन्तति मेरी कोख से कैसे जन्म ले सकी ? सलखू नाइन ने तो कहने को कह दिया कि स्त्री जिस किस्म के पशु से ससर्ग करे, वैसे पशु के बच्चे उस स्त्री की कोख से जन्म ले सकते हैं। लेकिन मेरा मन तो जानता है कि मेरे मामले मे यह सरासर झूठ है। फिर इसके पीछे क्या रहस्य हो सकता है ?

उसके दिमाग मे यकायक सूझा कि क्या यह कोई षड्यत्र नही हो सकता है ? मेरे साथ महाराजा का विवाह हो जाने से और उन का मेरे प्रति अत्यन्त स्नेह प्रदर्शित होने से अन्य महारानियॉ कही जलभुन न गई हो और उन्होने कोई प्रपच खडा न कर दिया हो। हो सकता है कि मेरी प्रशसा से वे मेरी बडी बहिने ईर्ष्यालु बन गई हो। कारण, दूसरी बहिनो के सन्तान नही हुई ओर मेरे हो रही थी सो उसके कारण भी दुर्भावनावश कोई कुकृत्य करवा दिया गया हो। यह ऐसा कुकृत्य कराया गया है कि सन्तान भी नष्ट हो जाये ओर मे भी बदनाम होकर महाराजा की नजरो से गिर जाऊँ। कुकृत्य यह करवाया हो कि मेरे बच्चो को उठवा लिया गया हो और मेरी अचेतनावस्था के समय कुत्तियॉ के पिल्ले रखवा दिये गये हो। लेकिन इस तरह से कुकृत्य का मेरे पास प्रमाण क्या है ? फिर सहसा मे किसी पर आरोप केसे लगा सकती हूँ ? यो देखे तो प्रत्येक नारी सन्तान चाहती है और उसके किसी कारण से सन्तान नही हो तो वह दूसरी की सन्तान से भी स्नेह करती है। मेरी बडी महारानियो के सन्तान नही हुई तो वे मेरी सन्तान की ईर्ष्यावश शत्रु भी हो सकती हें और उसके लिये स्नेह भावना वाली भी हो सकती हें इसलिये कल्पना के आधार पर दोपारोपण करना नये कर्मो के बन्ध का कारण हो सकता है ओर मेरे लिये ऐसा करना योग्य नहीं है।

तो क्या यह किसी देव माया का परिणाम तो नहीं हे ? किसी देव ने कोतूहलवश रूप परिवर्तन कर दिया हो और मेरे धैर्य व सद्भावो की परीक्षा ले रहा हो जिसने मेरे बच्चो को हटा कर कुतिया के पिल्ले रख दिये हो। जीवित पुत्रा को हटा कर मृत पुत्रा को रख देने की देविक घटना देवकी महारानी के साथ भी तो घटी थी। कहीं ऐसी ही स्थिति मेरे साथ तो नहीं बन गई है ? कहीं एसा हो तो चारो ओर पता तो लगवाना चाहिये कि किसी का नवजात शिशु कही पडे हुए मिल हो।

विश्वसुन्दरी दु खित मानस के साथ तरह–तरह की कल्पनाए कर रही थी–किसी भी एक कल्पना पर ठहर नहीं पाती थी। एक तो सन्ताने गायब कर दी गई और दूसरे अपयश और रोष की स्थिति का सामना करना पड रहा था महारानी को। विवाह की अल्पावधि मे ही कष्टो का ऐसा पहाड उसके सिर पर आ गिरेगा– ऐसा उसने सोचा तक नहीं था।

दु खो के इस पहाड की सबसे बडी चट्टान के रूप मे उसके सामने आया था उसके पतिदेव का उसके प्रति प्रकट किया गया रोष और तिरस्कार। पिता तो ससार छोड़कर चले गये। अब पूरे ससार मे पति के सिवाय उसका अपना है ही कौन ? और वे पति ही उसके प्रति रुष्ट हो गये हैं तो वह किसके सहारे जी सकेगी ? महाराज ने खुद ने समझाया था कि यह पति–पत्नी का सम्बन्ध धर्म से जुडकर एक दूसरे को आपत्ति से बचाने और धर्म मार्ग पर प्रवृत्त कराने के लिये है लेकिन वे ही मेरे साथ कठोर हो गये और अपना कर्त्तव्य भूल गये हैं। किन्तु उनको भी क्या दोष दू ? उन्हे अपने लिये से भी बढकर जनता के लिये सन्तान की कामना थी। उस कामना पर एकाएक कुठाराघात हो जाने से उनका विचार सन्तुलन एकदम विचलित हो गया है और वे हताश से ग्रस्त हो गये हैं।

महारानी अन्ततोगत्वा इसी बिन्दु पर आकर ठहर जाती हैं कि मुझे किसी को कोई दोष नही देना चाहिये और सारी परिस्थिति का शान्त चित्त से सामना करना चाहिये। दोष लगाकर आर्त्त रौद्र ध्यान करूँगी तो और नये कर्मों का बध होगा। ऐसा मुझे नहीं करना चाहिये। पतिदेव ने मुझे जो धर्म का प्रकाश दिखाया है साधना का समत्व दिया है–उससे भटक कर मुझे अन्धकार में नहीं पहुँच जाना चाहिये अथवा विषमता के दलदल मे नही फसना चाहिये।



12

साधना मे दृढता की परीक्षा कई प्रकार से होती है। आप लोग भी सामायिक करते हैं–नियमित भी करते होगे और अपने जीवन मे ऊँची नीची परिस्थितियाँ भी आती होगी। कभी सामाजिक सम्बन्धो मे तनाव आते हैं या आर्थिक दृष्टि से लाभ–हानि के प्रसग उठते हैं अथवा अन्य प्रकारो से आपत्ति विपत्ति के अवसर दीखते हैं, तो ऐसा विचार उठता होगा कि इतने समय से सामायिक की साधना या धर्माराधना कर रहे हैं, फिर भी इस तरह की खेदकारक परिस्थिति का सामना करना पड रहा है तो फिर क्या लाभ हुआ सारी साधना का ? यह सोचना मन की कमजोरी है जो कठिन समय मे साधना के विषय मे शकाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। कभी–कभी कई भाई हताश होकर साधना का मार्ग छोड भी देते हैं।

किन्तु वास्तविक दृष्टि से विचार किया जाये तो ऐसी ऊँची नीची परिस्थितियो को साधना की दृढता को परखने की कसौटी मानकर चलना चाहिये। विद्यार्थी वर्ष भर पढाई करता है और उसके बाद जब उसकी परीक्षा ली जाती है तो उसी से उसकी पढाई की जाँच होती है। आप सामायिक करते रहे और जब ऊँची नीची परिस्थितियाँ आवे तब घबरा उठे तो सोचिये कि आप परीक्षा मे उत्तीर्ण होगे अथवा अनुत्तीर्ण ? परीक्षा काल आने पर ही तो सामायिक की साधना की मजबूती जाची जा सकेगी। अत ऊँची नीची परिस्थितियो को परीक्षा काल समझकर चलना चाहिये तथा धर्म ध्यान के स्थायित्व को सुदृढ बनाना चाहिये ताकि विपत्तियो का कभी बडा झौंका आवे तब भी स्थिरता बनी रह सके।

यदि आपत्तियो–विपत्तियो से घबरा कर धर्माराधना छोड दी जाती है अथवा उसमे शिथिलता आ जाती है तो समझना चाहिये कि तब तक जो धर्मध्यान किया गया था, वह सही तरीके से नही किया गया। साधना की वास्तविक परीक्षा तो तब ही होती है जब सुख सुविधा नही रहती हैं और दु खो की स्थिति आ जाती है। अगर ऐसे समय मे वीतराग देवो के प्रति अटूट श्रद्धा बनी रहती है तो पहले की साधना मे भी चार चॉद लग जाते हैं। ध्यान रखिये कि धर्म सदा हितकारी ही रहता है। ऊँची नीची परिस्थितियॉ तो पूर्वाजित कर्मो के शुभाशुभ फल के रूप मे आती हैं। जहॉ कष्टकारक परिस्थितियो से घबराहट पैदा नहीं होनी चाहिये, वहॉ सुखदायक परिस्थितियो मे भी बेभान होकर फूल नहीं जाना चाहिये। दोनो प्रकार की मनोदशाओ मे

साधना का क्रम दुर्बल होता है, यदि समत्त्व भाव न रखा जाय।

महारानी विश्वसुन्दरी ने उस विपत्ति काल को अपना परीक्षा काल ही समझा। वह विविध विचारो के प्रवाह मे डूबी हुई सोच रही थी कि वह परिस्थिति उसके निकाचित कर्म बधन का ही फल है जिसे शान्ति पूर्वक भोगने से ही साधना का क्रम बना रह सकता है। कदाचित् कर्मो का बन्धन कमजोर होगा तो शुभ साधना के बल से वह टूट जायेगा और परिस्थिति में सुखकारी परिवर्तन उपस्थित हो जायेगा। अत पतिदेव ने जो सामायिक की साधना बताई है, उसमे समभाव पूर्वक प्रवृत्त रहना चाहिये। इस समय यही मुख्य अवलम्बन होगा। यह मेरी सामायिक साधना की परीक्षा है–इसमे मैं विफल न हो जाऊँ। सोना अगर आग मे डालने पर उजला न हो और काला पड जाये तो उसको सोना कौन कहेगा ?

इस प्रकार समभावी विचारणा के सहारे महारानी अपनी मनोदशा मे स्वस्थ सन्तुलन कायम करने का प्रयास करने लगी। अवमानना के साथ किये गये छोटे और पुराने मकान मे रूखी–सूखी खाकर भी वह अपनी धर्म धारणाओ को सुदृढ बनाने लगी। वह उस समय आत्म शान्ति के लक्षण को अपने समक्ष रख कर चल रही थी।

दूसरी ओर मिथ्यादृष्टि आत्माएँ जो अपनी शक्ति का स्वार्थ एव नीचतावश दुरुपयोग करती हैं, उन्हे भी उसका दुष्परिणाम भुगतना पडता है। समय लगता है लेकिन कुकर्म का कुफल मिले बिना नहीं रहता है। सलखू नाइन धर्म कर्म का मर्म कतई नहीं जानती थी। वह तो अर्थ लाभ और भौतिक सुख को ही सब कुछ मानती थी। अन्तराय कर्म का क्षयोपशम था सो उसके पास काफी सम्पत्ति आ गई थी। महाराजा ने उसे उसका पूरा पारिश्रमिक दिया और तय था कि ग्यारह महारानियाँ भी षड्यत्र की पूर्ण सफलता से परम प्रसन्न होकर उसकी झोली सोने से भर देगी। किन्तु सारी सम्पत्ति की प्राप्ति उसे अपनी आत्मा के घोर अध पतन से ही होने वाली थी। वह निन्द्य कुकर्म करके उसने अपनी शक्ति का भयकर दुरुपयोग किया। सलखू को धन के लालच ने मूर्छाग्रस्त सी बना दी थी– इसी कारण वह अपने अध पतन को अपनी प्रसन्नता के रूप में ले रही थी।

ग्यारह रानियो की वही विश्वस्त दासी सलखू के घर पर पहुँची और उसने सन्देश दिया कि रानियाँ उसे बुला रही हैं। वह तुरन्त उनके पास पहुची। सलखू को देखते ही सभी रानियाँ अपनी खुशी जाहिर करने लगीं कि

जैसा वादा किया था, सलखू ने अपनी अक्ल से उसे कामयाब कर दिखाया है। मुखिया महारानी बोली–सलखू, हम तुम्हारा लोहा मान गई हैं कि तुमने सारे षड्यन्त्र को बडी खूबी के साथ सफल बना दिया लेकिन यह तो बताओ कि इस काम को तुमने किया किस तरह और नई महारानी की वे सन्ताने थी कैसी ? सलखू गरूर मे भरकर कहने लगी–क्या बताऊँ कि आपका काम पूरा करने मे मुझे कितनी सूझबूझ और हिम्मत दिखानी पडी है ? मुझे बहुत खुशी है कि मैंने आप की आज्ञा पूरी कर दी लेकिन मेरे मन मे यह खतरा मडरा रहा है कि कहीं भडाफोड हो गया तो मेरा क्या होगा ? बाकी नई महारानी की दोनो सन्तानो के बारे मे सुनकर आपको भी आश्चर्य होगा कि वे अति सुन्दर एव सुकोमल ही नही, बल्कि दिव्यस्वरूपी थी। मेरा कठोर दिल भी एक बार तो उनके लिये पिघल उठा था किन्तु मैंने अपने आपको सम्भाला और मजबूत बनाया। फिर उन बच्चो को उठाकर पास के जगल वाले कुए मे फैंक आई और कुतिया के दो पिल्लो को लाकर महारानी के पास मे सुला दिये। उस समय प्रसव वेदना के कारण महारानी बेहोश पडी हुई थी और मेरे सिवाय वहॉ और कोई भी नही था यह सुनकर वे रानियॉ चौंकी और बोली–क्या तुमने उन बच्चो को जीवित ही कुए मे फैंक दिया या मारकर ? सलखू ने घबरा कर कहा–मैं इतनी कठोर और क्रूर होते हुए भी उन मनमोहक शिशुओ को मार नही सकी– उन्हे यो ही कुए मे फैंक आई लेकिन वे उस कुए में बच थोडे ही सकते हैं। बेचारे तभी मर गये होगे। उनकी मृत देहे भी वहॉ के जन्तु खा चुके होगे। तब वे रानियॉ आश्वस्त हो गई और उन्होने अपने कहने के अनुसार विपुल स्वर्णाभूषण सलखू को दे दिये। इधर महारानियॉ खुशी से पागल थी और उधर सलखू भी खुशी के हिडोले मे झूल रही थी।

जो आत्मा अच्छे कर्म बाधकर आती है तो उसकी पुण्यवानी का उदय होता है और किसी का भी निमित्त मिले उसका जीवन सरक्षित और पोषित हो जाता है। आज के लौकिक व्यवहार के भी कई उदाहरण सामने आते हैं कि जो बहिन अपनी नैतिकता से गिरकर गलत रास्ते पर चली जाती है और वह कभी नवजात शिशु को बाहर जगल मे अथवा अन्यत्र फैंक आती है तब भी कई निमित्तो से उस शिशु की रक्षा हो जाती है। ऐसा भी एक उदाहरण सामने आया है कि ऐसे ही फेंका गया एक नवजात शिशु जगली जानवर का दूध पीकर बचा ही नही बल्कि बडी उम्र का भी [illegible] गया–हा, उसके सस्कार उस जगली जानवर के समान ही ढल गये। नई महारानी विश्वसुन्दरी की उन

दोनो दिव्य सन्तानो को भी ब्रह्मानन्द नाम के फक्कड उस कुए से निकाल कर अपने आश्रम मे ले गये।

फक्कड ब्रह्मानन्द उन बच्चों की कमनीयता, कोमलता और दिव्य आकृतियॉ देखकर आश्चर्य चकित हो गये। वे चमत्कारी बाबा के नाम से जाने जाते थे। उनका आश्रम नगर से दूर था, फिर भी वहॉ उनके कई भक्त आते रहते थे। बाबा ने सोचा कि इन दोनो बच्चो का पालन पोषण आश्रम मे ही कराया जाय। उन्हें उन बच्चो के जनक और जननी पर क्रोध भी आया, जिन्होने मोहवश सन्तान पैदा करने का पाप तो किया, लेकिन उनका पालन पोषण करने से दूर हट गये। मनुष्य जाति के ऐसे निर्दयो को उन्होने धिक्कारा। बाबा विचार करने लगे कि पशु पक्षी भी अपनी सन्तति को ममता देते हे लेकिन नवजात इन शिशुओ के माता–पिता ऐसे निर्दयी कैसे निकले ? बच्चो की आकृतियॉ तो यह बताती है कि इनको पैदा करने वाले भी प्रभावशाली होने चाहिये फिर ऐसे व्यक्ति भला अपनी सन्तान को यों क्यों फैंक देते ? हो सकता है कि यह दुष्कृत्य किसी और ने किया हो ? यह भी हो सकता है कि किसी कुमारिका की ये अवैध सन्तति हो और इस कारण फिकवा दी गई हो। कुछ भी हो– बच्चे बहुत ही पुण्यशाली दिखाई देते हैं और इनकी तेजस्विता को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इनकी माता अवश्य ही चारित्र्य–शीला रही होगी, क्योकि चरित्रहीन मॉ को ऐसी सन्तान की प्राप्ति नहीं हो सकती है। जो भी हो, ये बालक अत्यन्त सौभाग्यशाली होने चाहिये।

तभी तो बाबा ने सोचा कि ये उन्हे भी इतने प्रिय लग रहे हैं जिन्हे देख कर ही अद्भुत आनन्द की प्राप्ति हो रही है। इस उनकी गुण निष्पन्नता की दृष्टि से उन बाबा ने बालक का नाम रखा आनन्दसेन और बालिका का चम्पकमाला। ब्रह्मानन्द ही आनन्दसेन और चम्पक माला के माता, पिता और रक्षक सब कुछ बन गये जिनके स्नेह भरे सरक्षण मे वे दोनो बच्चे चन्द्रकलाओ की तरह बढने लगे। उनका आश्रम उन बच्चो की मधुर किलकारियो से गूजने लगा।

कई सन्यासी तो सूखे लकडो को जलाकर आतापना लेते हैं तो कई सन्यासी हाथी पर बैठकर घूमते हैं किन्तु ब्रह्मानन्द अलग ढग के सन्यासी थे। वीतराग वाणी से उनका सम्पर्क हो चुका था तथा वे सम, सवेग, निर्वेद, अनुकम्पा एव आस्था को सम्यक् दृष्टि के साथ लेकर चल रहे थे।

हमारे कोई भाई पूछते हैं कि मेरे भीतर सम्यकत्व आया या नही, किन्तु इस बात का निर्णय बाहर वाला दूसरा नही बता सकता है। इसका निर्णय तो चिन्तन के आधार पर स्वय को ही लेना पडता है। दीन दु खी को देखकर जिसका हृदय करुणा से द्रवित हो उठता है, विषय कषायो से जिसका मन उदास हो गया है अथवा विषमता के दृश्यो से जिसका अन्त करण कष्ट पाता है उसे समझना चाहिये कि उसकी आत्मा सम्यक्त्व के पथ पर अग्रसर हो रही है। ब्रह्मानन्द भी सम्यक्त्व के भाव एव व्यवहार रूपो को इस रूप मे आचरित कर रहे थे। वे उन दोनो शिशुओ का लालन–पालन करते हुए अपने भीतर समत्त्व भावना का आनन्द ले रहे थे। इस भावना के साथ मोह ममत्त्व नही रहता। उन्होने यह नही सोचा कि ये शिशु मेरे नही है फिर मैं इनके लालन पालन का श्रम क्यो करू ? जो माता सम्यक् दृष्टि नही होती है और सयुक्त परिवार के सभी बच्चो को रमाती है तो उसके मन मे मेरे तेरे का भेद उठता है और देरानी–जेठानी का चक्कर पैदा होता है। अपना पुत्र जरा सा भी रोवे तो उसे घबरा कर उठा लेती है और भाति–भाति के उपायो से चुप करती हैं लेकिन वही बच्चा अगर देरानी का जेठानी का हो तो ऊपर का ढोग कर लेगी मगर मन से सावधान नहीं रहेगी। सम्यक्दृष्टि भाव वाली माता इस तरह का भेद नही करती है। अपना हो या दूसरी का–सभी बच्चो को एक सा समझती है। यह सम्यक् दृष्टि का भाव उन आत्माओ मे सुन्दर रीति से उदित होता है, जो सामायिक की साधना मे निरन्तर तन्मय बनती हैं। समत्त्व भावना की दृष्टि से वे ब्रह्मानन्द सन्यासी उन शिशुओ को अपने ही समझकर उन पर अपना स्नेह उडेल रहे थे।

एक दिन रात्रि के समय आकाश मे बादल मडरा रहे थे। उस समय बाबा ब्रह्मानन्द ध्यान की स्थिति मे बैठे हुए थे। उसी कमरे मे दोनों शिशु भी सो रहे थे। अचानक बालक आनन्दसेन को पिशाब की हाजत हुई तो वह उठ खडा हुआ और बाबा से कहने लगा कि मुझे पिशाब करना है। बाबा ने बाहर जाकर पिशाब कर आने को कह दिया। रात मे गहरा अन्धेरा छाया हुआ था अत बालक ने कहा कि उसे अकेले बाहर जाने मे भय का अनुभव हो रहा है।

सन्यासी ने आनन्दसेन को जोश दिलाते हुए कहा–तुम तो क्षत्रिय के वीरपुत्र जैसे लगते हो, फिर तुम्हे भयभीत तो होना ही नही चाहिये। बाबा की इच्छा थी कि बच्चो को ऐसे श्रेष्ठ सस्कार दूँ कि आगे जाकर इनका जीवन बहुत ही व्यवस्थित और सन्तुलित हो जाय। बच्चो को भय के सस्कार देते

हैं तो वे भयभीत बनते हैं और कभी–कभी भयवश अपना जीवन विनष्ट तक कर देते हैं। भय के कुसस्कारो से मन आरम्भ मे ही दुर्बल हो जाता है। बाबा ने आनन्दसेन को कहा कि बाहर कोई भय नही है, तुम नि शक होकर चले जाओ। इस पर आनन्दसेन अकेला ही झौंपडी से बाहर पिशाब करने के लिये चला गया।

ज्यो ही आनन्दसेन पिशाब करने को हुआ कि उसे एक विकराल रूप सामने दिखाई दिया। वह डर गया और जोर–जोर से चिल्लाने लगा कि बाहर भूत बैठा है।

सन्यासी ने बाहर निकल कर चारो ओर देखा कि बालक को किसने डरा दिया है ? फिर ललकार लगाई–कहा है भूत ? तब आनन्दसेन तो आकर सन्यासी के पैरो से लिपट गया किन्तु सन्यासी भी यह देखकर आश्चर्य चकित रह गया कि यह सामने विकराल रूप किसका दिखाई दे रहा है ? उन्होने कडककर पूछा–कौन हो तुम ? वह विकराल रूपधारी व्यक्ति आगे बढा और सन्यासी को प्रणाम करके बोला–गुरुदेव, यह तो मैं हाथी हूँ, लेकिन पशुरूप हाथी नहीं। हाथी मेरा नाम है। मैं पहलवानी करता हूँ। मेरा हाथी जैसा बदन होने से लोगो ने मेरा नाम ही हाथी पटक दिया है किन्तु हूँ मैं आपका शिष्य। सन्यासी चौंके और बोले–भाई, तू मेरा शिष्य कब से हो गया ? हाथी ने हसकर कहा–मैं आपके सामने तो पहली बार ही आया हूँ लेकिन आपको महामन्त्र का जाप करते और उपलब्धियॉ प्राप्त करते जब से देख रहा हूँ तब से ही मन मे मैंने आपको गुरु मान लिया है। आप प्रतिदिन जब भ्रमण करने बाहर जाते हैं तब नित्य कर्म के रूप मे मैं प्रतिदिन आपके दर्शन कर लेता हूँ। उस बाबा ने पूछा–फिर अभी आकर तुम बच्चे को क्यो डराने लगे हो ? हाथी ने कहा–मैं अभी बच्चे को डराने नहीं आया हूँ। मेरा लम्बा चौडा शरीर देखकर बच्चा वैसे ही डर गया है। यह कहते हुए उसने बच्चे को बडे प्यार से गोद में उठा लिया तो आनन्दसेन का भी डर दूर भाग गया।

हाथी पहलवान ने आनन्दसेन को बडे प्यार से दुलराते हुए कहा–देखो भैया मेरे शरीर को देखो–यह विकराल नहीं बल्कि पुष्ट शरीर है। गुरुजी अगर तुम्हे मुझे सौंप दे तो मैं भी तुम्हारे शरीर को व्यायाम का ऐसा अभ्यास कराऊँ कि तुम्हारा शरीर भी पुष्ट और सुगठित बन जाये। बाबा ने पहलवान को कहा–चलो भीतर आओ। हाथी ने कहा–मैं भीतर नहीं आ सकूँगा। किन्तु

मेरे मन मे इस बालक को देखकर यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई है कि आप इसे मन से पहलवान बना रहे हैं तो मैं तन से पहलवान बना दूॅ। यो तो मनोबल ही मुख्य होता है और मनोबल से ही कोई निर्मय बन सकता है, फिर भी शारीरिक बल भी साथ मे जुड जाये तो मन का बल बढ जाता है। वैसे मनोबल ही सर्वोच्च होता है।

स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा ने लगभग 22–23 वर्ष तक स्वतत्र चातुर्मास नही किया। वे प्राय आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा के साथ ही चातुर्मास किया करते थे। एक बार आचार्य श्री ने उन्हे बुलाया और कहा–आप को आगामी चातुर्मास चुरू मे स्वतन्त्र रूप से करना है। आपका यह चातुर्मास विरोधी पक्ष के बीच मे होगा क्योकि उस कस्बे मे समर्थन करने वाले तो एक दो भाई ही हैं। ध्यान रखे–कष्टप्रद अवस्था मे रहना पडेगा। उन्होने आज्ञा स्वीकार की और चुरू पहुॅच कर अपने मन की पहलवानी साधी। चातुर्मास आरम्भ हुआ तो व्याख्यान की प्रभावशाली शैली के कारण प्रतिदिन परिषद् बढने लगी, अन्य मतावलम्बी भी बडी सख्या मे आने लगे और उपस्थिति जो चन्द व्यक्तियो से शुरू हुई थी, पॉच–पॉच सौ तक पहुच गई। रेगिस्तानी जलवायु और खानपान के असर से पूज्य श्री के शरीर मे कष्ट पैदा हुआ, फिर भी वे मन की मजबूती को बराबर बनाये रख रहे थे। अन्य मतावलम्बियो के यहॉ गोचरी जाने मे बत्तीस दोष टालने की दृष्टि से बडे परिषह सहने पडते थे तथा इस बीच उनके नेत्रो की रोशनी भी कम होने लगी किन्तु किसी को इन कष्टो का भजकारा तक नही मिला। इस तरह मन की पहलवानी का उन्होने अनुपम आदर्श प्रस्तुत किया।

हाथी पहलवान की बात ब्रह्मानन्द सन्यासी को पसन्द आ गई और उन्होने उसके प्रस्ताव को स्वीकृति दे दी कि आनन्दसेन को शारीरिक दृष्टि से पुष्ट, सुगठित एव बलशाली बनाने का अभ्यास वह करावे। सन्यासी मन की पहलवानी उसे सिखा ही रहे थे। मन की पहलवानी कठिन साधना के बाद ही प्राप्त हो सकती है। सन्त तुकाराम जी ने वह पहलवानी साधी थी कि उन की क्रोधी पत्नि ने एक बार उनकी पीठ पर गन्ना दे मारा। घटना यो है एक दिन बहार से एक गन्ना लेकर आये। और उसे अपनी पत्नि के हाथ मे थमा दिया। पत्नि ने पूछा क्या देने वाले ने एक ही गन्ना दिया तब तुकाराम जी ने कहा देने वाला तो पूरी भारी ही आग्रह पूर्वक दे रहा था। पर मैं एक ही गन्ना लाया। इससे पत्नि को क्रोध आ गया जिससे वह गन्ना उसने तुकाराम जी की पीठ पर दे मारा। गन्ने का टूटना ही था। वह टूट गया।

उसके तीन टुकडे हो गये। तुकाराम को क्रोध आ जाना था पर नहीं आया। आता भी कैसे ? उन्होने मन की पहलवानी जो साध रखी थी। उन्होने हसते हुए उत्तर दिया, तुम कितनी चतुर हो, तुमने एक गन्ने के तीन गन्ने बना दिए। सयोग की बात है घर मे सदस्य भी अपन तीन ही हैं। जिससे सबको एक–एक गन्ना (गन्ने का टुकडा) मिल जायेगा। ऐसी पत्नि यदि आप लोगो को मिल जाये तो क्या घर छोड कर नहीं भाग जाओगे ? आशय यह है कि मन को समता की साधना से ही साधा जा सकता है।

जिस आत्मा ने पूर्व जन्म मे धर्म का कार्य किया, शुभ भावनाओ के बल से अपने आपको निर्भय बनाया तथा दीनहीनो को शक्तिभर अपना सबल दिया, वह आत्मा निज स्वरूप की शुद्धि के साथ श्रेष्ठ पुण्य पुज का सचय करती है। फिर उस पुण्यवानी का अगले जन्म मे जब उदय आता है तब वही पुण्यवानी कठिनतम आपत्तियो के बीच में भी उसकी जीवन रक्षा करती है। आनन्दसेन ऐसा ही पुण्यशाली जीव था। जन्मते ही कुए में डाल दिया गया और माता–पिता के शुभ सयोग से वचित रहा फिर भी उसे बाबा ब्रह्मानन्द का सरक्षण व सहयोग मिल गया। यही नहीं, बाबा के आश्रम में उसे सस्कारपूर्ण शिक्षा की सुविधा भी प्राप्त हुई। बाबा उसे वीतराग देवों की वाणी का रस–पान कराते और उसके मन को मजबूत बनाते तो हाथी पहलवान ने उसमे शारीरिक बल का विकास करके उसे अच्छा पहलवान ही बना दिया।

आनन्दसेन अपनी तरुणाई मे पहुँचकर सुन्दर और सुदर्शनीय युवक तो बना ही, किन्तु मानसिक एव शारीरिक शक्ति की जो उसकी आकृति पर झलक दिखाई देती थी, वह किसी को भी प्रभावित किये बिना नहीं रहती थी। एक दिन हाथी पहलवान ने अपने शिष्य की परीक्षा लेने की ठानी ओर जब परीक्षा ले ली तो वह खुशी से पागल हो उठा। वह भागा भागा बाबा ब्रह्मानन्द के पास पहुँचा और बोला–गुरुदेव, आज मैं आश्चर्य चकित रह गया हूँ कि शिष्य अपने शिक्षक से आगे बढ गया है। ब्रह्मानन्द समझे नहीं, कहने लगे–क्या हुआ ? मैं समझा नहीं। तब हाथी ने समझाया–मैं आज परीक्षा लेने की इच्छा से आनन्दसेन के साथ मल्लयुद्ध करने लगा तो मैं दग रह गया कि सारा अपना बल लगा लेने के बावजूद मैं उसके हाथो हार गया। अब तक मेरा अनुभव था कि मेरे समान बलशाली कोई नहीं है लेकिन अब आनन्दसेन मुझसे बढकर हो गया है। किन्तु आज मैं बहुत खुश हूँ। उन्होने भी कहा–अरे हाथी जैसे तुम आज बहुत आश्चर्य कर रहे हो वैसे ही मैं भी बहुत आश्चर्य कर रहा हूँ क्योकि मेरा अनुभव यह है कि आनन्दसेन अपने मन की मजबूती

मे उतना पारगत नही हो सका है जितना कि मैं उसे बनाना चाहता हूँ, फिर भी मैं अपना प्रयत्न बढा दूँगा।

उधर चम्पा नगरी मे प्रति वर्ष मनाये जाने वाले महोत्सव का समय समीप आ रहा था जिसमें भाति–भाति के आयोजन रखे जाते थे। इन आयोजनो मे प्रयास यह रहता था कि राज्य मे विकसित हो रहे विभिन्न गुणो का प्रदर्शन उनमे हो। इसी दृष्टि से मल्लयुद्ध याने पहलवानो की कुश्ती का भी कार्यक्रम उसमे रखा गया। महोत्सव का समय समीप आ जाने पर सभी कार्यक्रमो की सार्वजनिक घोषणा कराई गई, ताकि उनमे अपने गुणो का प्रदर्शन करने के लिये कलाकार सम्मिलित होने हेतु सम्पर्क कर सके। यह घोषणा आनन्दसेन के कानो मे भी पडी। उसने सोचा कि वह भी मल्लयुद्ध के कार्यक्रम मे भाग क्यो न ले ? वह अपने शिक्षक हाथी पहलवान के पास पहुँचा और बोला–यदि आप आज्ञा दे तो मैं राज्य–महोत्सव के मल्लयुद्ध कार्यक्रम मे भाग लेना चाहता हूँ जिससे मैं आपकी शिक्षा का सफल रूप दिखा सकूँ। हाथी ने कहा–इसके लिये तुम बाबा ब्रह्मानन्द की आज्ञा लो क्योकि उन्ही की आज्ञा से मैंने तुमको पहलवानी सिखाई है। वे ही जीवन का आन्तरिक विज्ञान जानते हैं और तुम्हारे मन को पहिचानते हैं। हम तो यह भी नही जानते कि तुम्हारे माता–पिता कौन हैं और तुम्हारा विशेष परिचय क्या है ?

आनन्दसेन तो माता और पिता दोनो के रूप मे बाबा ब्रह्मानन्द को ही जानता था, अत बोल पडा–मेरे माता–पिता और सब कुछ बाबा ही तो हैं। हाथी ने समझाया–बाबा ने तो तुम्हारा लालन–पालन और शिक्षा–दीक्षा की है। तुम्हारे माता और पिता तो कोई और हैं जो अज्ञात हैं। आनन्दसेन ने पूछा–तो मेरे माता–पिता का पता कैसे लगेगा ? हाथी ने यही कहा– इसकी चिन्ता मत करो, समय पर सब कुछ ज्ञात हो जायेगा। अभी तो मल्लयुद्ध के कार्यक्रम मे अपने भाग लेने की अनुमति बाबा से प्राप्त करो।

तरुण आनन्दसेन उस समय वहा से रवाना तो हो गया किन्तु उसके तरुण मानस मे एक गम्भीर जिज्ञासा जाग उठी कि उसे अपने जन्मदाता माता–पिता का पता लगाना है। वह बाबा के पास पहुँचा और बोला–बाबा, यहाँ राजधानी मे बहुत बडा महोत्सव हो रहा है जिसमे विविध प्रकार के प्रदर्शन और कार्यक्रम रखे गये हैं। इनमे से एक मल्लयुद्ध का कार्यक्रम भी है। मैं आप से इस कार्यक्रम मे भाग लेने की अनुमति चाहता हूँ। बाहर से बडे–बडे पहलवान कुश्तियाँ लडने के लिये आयेगे। मुझे विश्वास है कि मैं

उन्हे पछाड दूँगा। इससे आपका और चम्पानगरी का नाम ऊँचा उठेगा।

ब्रह्मानन्द आनन्दसेन की बात सुनकर गम्भीर मुद्रा मे बैठ गये और अन्तार्ध्यान करने लगे। इस प्रकार आन्तरिक चिन्तन के बाद वे बोले–पुत्र, अभी तुम अपनी शक्ति को गोपन करके रखो। मनुष्य को जो जो शक्तियॉ मिलती हैं, उन सभी का प्रदर्शन नहीं करना चाहिये। कूडे–करकट को बाहर फैंको और रत्नो को भीतरी तिजोरी में रखते जाओ। गुणों का प्रदर्शन करने की आवश्यकता नहीं है, जब अवसर आवे तब उनका इस तरह परिचय दो कि उसका कुछ सार निकले।

गौतम स्वामी कई लब्धियो के धारक थे, किन्तु वे अपनी लब्धियो को गोपन करके रखते थे। ब्रह्मानन्द भी वीतराग वाणी का मर्म जानते थे, इसी कारण उन्होने ध्यान करने के बाद कहा–मुझे विश्वास है आनन्द कि तुम इस कुश्ती प्रतियोगिता मे हारोगे नही लेकिन अभी तुम्हारी शक्ति के प्रदर्शन का समय नही आया है इसलिये प्राप्त शक्ति का अभी प्रदर्शन नहीं बल्कि तुम्हे गोपन करना है। आनन्द तो अपनी तरुणाई मे था और तरुणाई मे उतावलापन होता है। इस अवस्था मे गम्भीरता से चिन्तन करने मे कम रुचि रहती है, सो वह कहने लगा–बाबा मुझे अपनी शक्ति को गोपन रखने का आप निर्देश कर रहे हैं तो क्या आप मुझे कमजोर समझते हैं या मेरे हार जाने की आशका रखते हैं ? बाबा ने उसकी पीठ ठोककर कहा–अरे नही भैया, मैं तुम्हे कमजोर थोडे ही समझ रहा हूँ। सिर्फ अभी सन्तोष रखने की बात बता रहा हूँ। किन्तु आनन्दसेन हठ करने लगा तो बाबा ने आज्ञा देते हुए भी यह कहा–देखो, मैं तुम्हे आज्ञा दे रहा हूँ किन्तु मेरे अन्तर्मन से नहीं। लेकिन मेरी एक बात बराबर याद रखना।

ब्रह्मानन्द बाबा अनुभवी थे। उन्होने सोचा कि तरुण को ज्यादा दबाना भी ठीक नहीं है, किन्तु आज्ञा देकर भी उसे सावधान बना देना चाहिये। अत वे बोले–एक बात का पूरा ध्यान रखना कि जब किसी भी समय तुम्हारे ऊपर कोई कष्ट आ जाये तो तुम नमस्कार महामत्र का जाप कर लेना और वीतराग देव द्वारा बताई गई विधि के अनुसार मुझे भी याद कर लेना।



13

'उत्सवप्रिया हि खलुजना –मनुष्यो को उत्सव प्रिय लगते हैं। चम्पानगरी के विशाल प्रागण मे वार्षिक महोसत्व का आयोजन किया गया था। प्रागण ध्वजाओ व पताकाओ से सजाया गया तथा एक ओर विशाल मन्च बनाया गया। उस प्रागण के चारो ओर जनता के लिये बैठकर देखने का स्थान बनाया गया। मन्च पर महोत्सव मे भाग लेनेवाले कलाकारो को बिठाया गया तो एक ओर दूसरे मन्च पर महाराजा एव राज परिवार के लिये सुसज्जित स्थान बनाया गया। महोत्सव के विविध कार्यक्रमो को देखने के लिये उमडा हुआ जनोत्साह अपूर्व था।

रनिवास मे रहने वाली महारानियो मे से पटरानी तो बहुत ही गम्भीर एव साधक स्वभाव वाली थी किन्तु शेष ग्यारह रानियो की वृत्तियॉ चचल तथा दुर्गुणयुक्त थी। वे भी इस महोत्सव को देखने के लिये आई हुई थी।

महाराजा अपनी नई महारानी विश्वसुन्दरी के प्रति अतीव आकृष्ट थे किन्तु उसके उस प्रसवकाल के बाद से अतीव अपेक्षित हो गये थे। उनका मन उससे इतना हट गया कि इतने वर्षो मे उन्होने उसके पास जाकर पूछा तक भी नही कि वह कैसे है। इस अर्से मे उन्होने पहले की रानियो के साथ अपना आकर्षण जोड लिया था। वे उन रानियो की बात भी सुनने लगे तो उनकी सुख सुविधाओ का विशेष ध्यान भी रखने लगे। अत जब उन रानियो ने महोत्सव मे सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की तो वे उन्हे अपने साथ लेकर महोत्सव के प्रागण मे पहुँचे।

महाराजा के वहॉ पहुॅचते ही क.र्यक्रमो को प्रारम्भ करने की घोषणा कर दी गई। अन्य कार्यक्रमो के साथ मल्लयुद्ध का कार्यक्रम भी आयोजित था जिसके लिये अन्य पहलवानो के साथ सिह के समान भव्य आकृति वाले आनन्दसेन की उपस्थिति का सबको आभास हो रहा था। अधिकाश लोगो की आश्चर्य चकित दृष्टि आनन्दसेन पर लगी हुई थी कि यह प्रभावशाली तरुण कौन है, कहॉ से आया है और किस कार्यक्रम मे भाग लेगा ? किन्ही लोगो ने मालूम किया कि यह तरुण बाबा ब्रह्मानन्द के आश्रम से आया है और मल्ल युद्ध मे भाग लेगा। वे सोचने लगे कि ऐसा सुकोमल और सुन्दर तरुण भला इन पहलवानो का कैसे मुकाबला करेगा ? लेकिन वे यह भी जानते थे कि अगर बाबा ब्रह्मानन्द के आश्रम से आया है तो अवश्य ही यह युवक विशिष्ट प्रतिभा एव योग्यता वाला होना चाहिये। उन्हे वह विशिष्टता

भी साफ–साफ दिखाई दे रही थी क्योंकि वह युवक शरीर से हृष्ट–पुष्ट, सस्कारो से शालीन और चारित्र्य सम्पन्नता से तेजस्वी दिखाई दे रहा था।

तभी मल्लयुद्ध के कार्यक्रम की घोषणा हुई और वह तेजस्वी तरुण अखाडे मे आ खडा हुआ। सब उत्सुकतापूर्वक उसी ओर देख रहे थे। महाराजा ने भी तब ध्यानपूर्वक उस तरुण को देखा जो अपनी तरुणाई में अतीव ही आकर्षक और मनमोहक लग रहा था। यही नहीं, उसे देखकर उनके हृदय मे ऐसा रोमाच होने लगा था कि वे बिना कारण ही उसके प्रति आनन्दाभिभूत हो गये।

अखाडे मे कुश्तियॉ होने लगीं और देखते–देखते आनन्दसेन सभी नये पुराने पहलवानों को पछाडता हुआ चला गया। वह सर्वविजेता बन गया। पुण्यवानी क्या–क्या करतब दिखाती है ? सारा जन समूह जयघोष के साथ उसकी सराहना करने लगा। महाराजा ने भी मन ही मन उसका विशेष सम्मान करने का निश्चय किया। ज्योंही आनन्दसेन के सर्व विजेता होने की घोषणा की गई तो महाराजा अपने सिहासन से स्वय उठकर अखाडे तक गये और उन्होने अपने हाथो आनन्दसेन को स्वर्ण हार पहिनाकर उसका विशेष सम्मान किया।

जब चन्द्रसेन और आनन्दसेन पास–पास खडे चारो ओर से जनता का अभिवादन स्वीकार कर रहे थे तो उस जोडी को देखकर सभी मन्त्रमुग्ध से हो गये। वे ग्यारह रानियॉ तो उस दृश्य को देखकर चौंक उठी, बल्कि एक बार ऊपर से नीचे तक काप उठीं। अरे, यह क्या ? यह आनन्दसेन कहॉ का पहलवान है ? इसे देखकर ऐसा लगा रहा है जैसे स्वय महाराजा खडे हो। दोनो इस तरह दिखाई दे रहे हैं जैसे एक नहीं दो चन्द्रसेन खडे हों। महाराजा की हूबहू प्रतिकृति सी यह कौन तरुण है जिसके प्रति देखते हुए आकर्षण समाप्त ही नहीं होता है ?

उस भव्य तरुण को देखकर जहॉ पटरानी परम प्रसन्न हो रही थीं, वहॉ अन्य ग्यारह रानियॉं शका और भय से आतकित हो उठीं। कई तरह के विचार करके उनके मस्तिष्क मे उमडने घुमडने लगे। उनका सन्देह जागा तो उनकी ईर्ष्या भी जागी। कहा जाता है चोर की दाढी मे तिनका होता है याने कि जब किसी का पता लगाने की बात आती है तो सबसे पहले चोर के मन मे ही शका जागती है। ग्यारह रानियॉ उस तरुण के प्रति सशकित हो उठीं। पटरानी की विचारधारा उनसे भिन्न दिशा में चल रही थी। वह सोच रही थी

अतीत की बाते कि जब उससे महाराजा को सन्तान की प्राप्ति नही हुई तो उन्होने एक–एक करके ग्यारह विवाह और किये, किन्तु उनसे भी सन्तति नही हुई। जब देव ने भविष्यवाणी की ओर महाराजा तदनुसार नई महारानी को ब्याह कर गर्भवती की अवस्था मे उसे राजधानी मे लाये तो सबको आशा हुई कि इस नई महारानी से महाराजा एव जनता की आशा पूर्ति अवश्य होगी। इसके विपरीत जब महारानी द्वारा कुतिया के पिल्ले जानने की बात जाहिर हुई तो महाराजा अतीव खिन्न हो गये। आज इस तरुण को देखकर कुछ का कुछ विचार आ रहा है। यह दिव्य सन्तान किसकी कुक्षि से जन्मी है–यह मैं नही जानती, मगर यह निश्चित है कि इसको जन्म देने वाली माता महारानियो सी ही शालीन, सुसस्कृत और चारित्र्य सम्पन्ना होनी चाहिये। इसको देखकर मेरे मन मे बहुत ही प्रमोद हो रहा है और यह भावना जाग रही है कि न हुआ अपना ही राजपुत्र, क्यो नही महाराजा इसे ही गोद लेले और अपने राज्य का उत्तराधिकारी बनाले ? उसने अपना यह सुझाव महाराजा को एकान्त मे निवेदन करने का भी निश्चय कर लिया। पटरानी का जीवन समता रस से ओत–प्रोत था। अत वह उस तरुण की गुणधर्मिता पर रीझ गई थी।

पटरानी जहा अमित हर्ष के सागर मे हिलोरे ले रही थी, वहीं ग्यारह रानिया शका और भय से थरथराती हुई प्रतिहिसा की ज्वाला मे जलने लगी। जबसे आनन्दसेन की आकृति देखी और उसका महाराजा की आकृति से मिलान किया तब से उनके तन मन मे शिथिलता छाने लगी थी। उसी शिथिलता की प्रतिक्रिया के रूप मे उनकी प्रतिहिसा जाग रही थी। वे सोचने लगी कि पटरानी जी को अलग रखकर हमने षड्यन्त्र रचा और सलखू नाईन के माध्यम से उसे पूरा कराया गया, किन्तु लगता है कि उसमे असफलता ही हाथ लगी है। सलखू ने नई महारानी के बच्चो की जीवन लीला समाप्त नहीं की थी और उन्हे जीवित ही सलखू कुए मे फेंक आई थी जिसका यह परिणाम हुआ हो सकता है कि वे बच्चे जीवित बचे गये हो और किसी का सरक्षण पा गये हो। यह तरुण तो इस प्रकार से बचा हुआ राजकुमार ही हो सकता हे। इससे साफ हे कि सलखू ने आश्वासन देकर भी हमे धोखा दे दिया और विपुल स्वर्ण राशि हमसे लेकर चली गई। ग्यारह रानियॉ परस्पर बहुत धीरे–धीरे बात करने लगीं कि उनके अनुमान के अनुसार यह तरुण नई महारानी विश्वसुन्दरी का ही राजकुमार होना चाहिये। इसका प्रमाण है कि इसकी और महाराजा की आकृतियॉ एकदम से समान हैं।

महोत्सव के सभी कार्यक्रम सम्पन्न हो जाने के बाद सभी अपने–अपने स्थानो को लौट गये। महाराजा भी राजभवन मे पहुँच गये किन्तु उनका मानस तब भी अतीव हर्षावेग से रोमाचित हो रहा था। बार–बार उनकी आखो के सामने आनन्दसेन की भव्य आकृति ही घूम रही थी और उसके प्रति आकृष्ट हो रहे थे। कहते हैं कि सयानो का एकमत होता है। तदनुसार पटरानी की तरह ही महाराजा के मन मे भी विचार उठा कि वह पहलवान तरुण तो मेरे से भी अधिक भव्य व्यक्तित्व वाला दीख रहा था और मुझे बहुत प्यारा लग रहा था। उस पर मेरा लाडप्यार ठीक सन्तान की तरह उमड रहा था और अब भी उमड रहा है। मैं इसे समझ नहीं पा रहा हूँ लेकिन मेरा मन हो रहा है कि वह तरुण हमेशा मेरे पास ही रहे।

राजभवन पहुँचते ही ग्यारह रानियों ने अपने कक्ष मे एक गुप्त बैठक की और उस तरुण के सम्बन्ध मे विस्तार से चर्चा की। उन्होने निर्णय लिया कि इसी समय सलखू नाइन को बुलाकर सारी पूछताछ करनी चाहिये। सलखू बुलाई गई और ज्योही वह आई, सभी रानियॉ उत्तेजित होकर बोल पडी–सलखू, तुमने यह क्या किया ? हमको तेने धोखा क्यो दिया ? उन बच्चो को तेने मारा नहीं और अब लगता है कि वे जीवित रहकर बडे हो गये हैं। सलखू भी महोत्सव के दृश्य को देख आई थी और स्वय वह भी सशकित थी, अत तत्काल कुछ बोली नहीं, शान्त खडी रही। तब तो मुखिया रानी क्रोधित होकर बोली–अब तेरा मुह बन्द क्यो है ? इतना सारा सोना भी हम से ले गई और झूठा आश्वासन देकर तूने हमे ठग लिया। हमने कितना कहा था कि हमारी लाज रखना और अब दीखता है कि वही हमारी लाज चौपट ही जायगी।

तब धीरे–धीरे सलखू कहने लगी आपसे मैं माफी चाहती हू। उन नवजात शिशुओ की आकृति ही इतनी भव्य और प्यारी थी कि मैं चाहकर भी उन्हे मार डालने की हिम्मत नही जुटा पाई। मेरी अन्तरात्मा ने भी साक्षी दी कि ऐसे शिशुओ को अपने हाथो से मारने का पाप मत कर इसलिये एक बार तो मैंने कुछ भी नही करने का विचार किया। लेकिन तुरन्त ही मुझे आपको दिये गये मेरे आश्वासन का ध्यान आगया और मैंने सोचा कि उसको पूरा करने के लिये मुझे कुछ तो करना ही चाहिये। यह सोचकर ही मैं दोनो शिशुओ को कुए मे फैंक आई कि इस तरह मुझे उन शिशुओं को हाथ से मारना भी नहीं पडेगा और आपका काम भी बन जायेगा।

मुखिया रानी चीख उठी—यह सब तो हमने सुन रखा है लेकिन क्या तेने आज कुश्तियो मे सब पहलवानो को पछाड देने वाले उस तरुण को नहीं देखा ? क्या उस पहलवान तरुण की आकृति हूबहू महाराजा की आकृति से नही मिलती थी ? उसे देखकर क्या तेरे मन मे यह विचार नही उठा कि महाराजा का ही वह राजकुमार होना चाहिये ? महाराजा कभी भी चरित्रहीन नही हो सकते, इसलिये यह तय है कि वही विश्वसुन्दरी की कौंख से जन्मा हुआ राजपुत्र होना चाहिये। अब देखले कि जब तक वह तरुण जीवित हे, न हमारा जीवन सुरक्षित है और न ही तुम भी कठोर दड से बच पाओगी। हमे एक पल भी चैन नही पड रहा है—यह तू समझ ले और जो कुछ अब भी कर सकती हो, वह कर वरना हम तो उपाय कर ही रही हैं।

आनन्दसेन ने भला इनमे से किसका क्या बिगाडा था ? अज्ञानी व्यक्ति अपने स्वार्थो मे अन्धे बन कर दूसरो को देखकर जलते—भुनते हैं और निर्दोष होने पर भी उनको हानि पहुचाने की कुचेष्टाएँ करते हैं। बारीकी से देखे तो आज यही दशा ठौर—ठौर पर इस ससार मे बन रही है। सासारिक प्राणी अपने दोष नही देखते चाहे वे पहाड जितने बडे हो मगर दूसरो के राई जितने दोष भी देखते हैं और उनको पहाड जितना बना कर दूसरो को दिखाते हैं। यह दोष दृष्टि क्यो बढ रही है ? इसलिये कि इस लालसाग्रस्त मन मे अशान्ति व्याप्त हो रही है ? इसलिये कि इस लालसाग्रस्त मन मे अशान्ति व्याप्त हो रही है। उस अशान्ति के कारण उसमे अपने आपको देखने की आदत नही रही है। इस कारण सशोधन नही हो पाता है।

रानियो ने सलखू नाइन को डपट कर कहा—अब देखना कि हम क्या करती हैं ? लेकिन याद रखना कि हमारी बात कही बाहर न फूटे। सलखू ने हाथ जोडकर कहा—इसके लिये आप बिल्कुल निश्चित रहे। मैं आपके साथ हूँ। जब भी मेरी सेवा की जरूरत समझे तो मुझे बुलवा ले। मैं आपकी आज्ञा का पालन करूगी। सलखू को रवाना करके ग्यारह रानिया गुप्त मन्त्रणा करने लगी कि अब आगे क्या किया जाय ? हमारा अभी महाराजा से जो मधुर सम्बन्ध चल रहा है, अगर इस काटे को राह मे से नही हटाया तो वह खतरे मे पड जायेगा। वे सब नया षड्यन्त्र रचने मे व्यस्त हो गई।

फिर जब महाराजा उनकी तरफ आये तो उन रानियो ने बडा त्रिया चरित्र दिखाया। राजभवन के अपने निवास वाले हिस्से की ऐसी दुर्दशा बनादी जैसे कि किसी डाकू ने घुस कर उटका पटक कर दी हो। अपने वस्त्रो

व वालो की दशा भी ऐसी अपरूप कर दी जैसे कि उधर आने वाले डाकू ने उनके साथ भी बलपूर्वक छेडछाड की हो। महाराजा उस अस्त–व्यस्तता को देखकर चौंक उठे कि राजभवन मे आकर इस तरह का अपराध करने का दुस्साहस किस दुष्ट ने किया है ? रानियो ने भाति–भाति के बनावटी हाव–भाव दिखाये और दासियो की झूठी साक्षिया प्रस्तुत कराई कि जिसने आकर यहा सबको सताया है उसको हमने कल ही मल्लयुद्ध मे देखा था–वही आनन्दसेन जिसने सभी पहलवानों को पछाड दिया था। रानियो ने एक स्वर से कहा–महाराज, आपने उसका बहुमान किया तो उसका हौंसला बढ गया। उसी ने आकर राजभवन मे यह तहस–नहस मचाया है और हमारे साथ भी उसने दुर्व्यवहार किया है।

महाराजा भौंचक्के होकर उन रानियो को देखते रहे और अपनी ऑखो मे तैरती हुई आनन्दसेन की शिष्ट व सदाशयी मूर्ति को ध्यान मे लेकर सोचते रहे कि यह कैसी विचित्र घटना उन्हे बताई जा रही है ? क्या आनन्दसेन जैसा भव्य व्यक्तित्व वाला तरुण कभी भी ऐसा उपद्रव कर सकता है ? महाराजा ने विचार किया कि मैं ग्रहस्थाश्रम में रहता हुआ वीतराग देवका अनुयायी हूँ और श्रावक के बारह अणुव्रतों का पालन करता हूँ। श्रावक का पहला अणुव्रत मैंने अगीकार कर रखा है कि निरपराधी प्राणी को न मारना है न सताना है, किन्तु अपराधी– हिसा का मुझे त्याग नहीं है। वीतराग का अहिसा धर्म कायरो का नही, वीरो का धर्म है। जो वीतरागवाणी का आशय भली प्रकार नही समझते हैं, वे सन्तो की अहिसा वृत्ति को देखकर बिना विचारे बोल पडते हैं कि यह अहिसा तो कायरों की अहिसा है। जैसे साधु धर्म है कि कोई एक गाल पर चाटा मार दे तो दूसरा गाल भी उसके सामने कर दो, लेकिन अपनी ओर से किसी प्रकार की हिसा वृत्ति मत दिखाओ। दूसरे लोग सोचते होंगे कि जैसा साधु करते हैं वैसा ही श्रावक भी करते होगे। किन्तु गृहस्थाश्रम मे रहने वाला श्रावक पाच महाव्रतों का नहीं बारह अणुव्रतो का पालन करता है जिसके अनुसार वह अपने प्रति अपराध करने वाले अपराधी के अपराध का प्रतिकार करने का त्याग नहीं करता है।

इस विचारणा के साथ महाराजा चन्द्रसेन ने सोचा कि जब रानियो से तथा अन्य साक्षियो से प्रमाणित हो गया कि राजभवन मे आकर आनन्दसेन ने ही अपराध किया है तो मैं श्रावक होते हुए भी अपराधी के नाते आनन्दसेन को दण्ड दे सकता हूँ। वे भला इतनी साक्षियों को अविश्वसनीय क्यो मानते ? अत उन्होने उस तरुण के प्रति अपने मन मे उठे प्यार के ज्वार को

भी दूर धकेल दिया। उन्होने निश्चय कर लिया कि आनन्दसेन के इस गम्भीर अपराध को देखते हुए प्राणदड ही दिया जाना चाहिये तब उन्होने इस निर्णय को कार्यान्वित करने के लिये कार्यवाही शुरू कर दी।

तत्काल महाराजा ने सेनापति को बुलाकर आज्ञा दी–तुम आज रात को ही सेना की टुकडी साथ ले जाकर बाबा ब्रह्मानन्द के आश्रम को घेर लो और उनके पुत्र आनन्दसेन को पकड लो जिसे मैंने प्राणदड देने का निर्णय लिया है। महाराजा की आज्ञा से सूर्योदय होने से पहले ही बाबा ब्रह्मानन्द का आश्रम घेर लिया गया। तब सेना का मुख्य अधिकारी बाबा के पास पहुँचा और बोला–महाराजा की आज्ञा है कि आप अपने पुत्र आनन्दसेन को हमे सौंप दो, क्योकि वह अपराधी है–राजद्रोही और देशद्रोही हे। हम उसे प्राणदण्ड देगे। बाबा ने अपने ध्यानयोग से आसन्न सकट को समझ लिया ओर तदनुसार अपना उत्तर देने लगे।

बाबा ब्रह्मनन्द ने सेना के मुख्य अधिकारी को अपना उग्र रोष जताते हुए कहा आप मुझे क्या कह रहे हैं–इसका भी आपको भान हे ? आप मुझसे मेरा पुत्र माग रहे हो सो ऐसा कहते हुए क्या आपको शर्म नही आती ? मै जन्मजात ब्रह्मचारी हूँ और क्या ब्रह्मचारी के भी कोई सन्तान होती है ? फिर कोई भी मेरा पुत्र कैसे हो सकता है ? ब्रह्मचारी के स्त्री, घरबार आदि कुछ भी तो नही होता। आपको एक सन्यासी के सामने सोच समझ कर बोलना चाहिये।

सन्यासी की डाट सुनकर सेना का वह अधिकारी स्तब्ध रह गया। बात बाबाजी की सही थी। अब आगे बाबाजी से तर्क वितर्क करने मे उसे कोई सार नही दिखाई दिया। इस कारण उसने अपने सिपाहियो को आदेश दिया कि वे खुद ही आश्रम का चप्पा छान मारे जहा भी वह आनन्दसेन दिखाई दे, उसे धर पकडे। अपने अधिकारी की आज्ञा पाकर वे सिपाही नि शक होकर बाबाजी के आश्रम मे प्रवेश कर गये। सिपाहियो ने सारे आश्रम को छान मारा लेकिन वहा तो आनन्दसेन क्या, न तो कोई प्राणी मिला, न कोई सम्पत्ति ही। निराश होकर अधिकारी ने आश्रम से उन सैनिको को हटा लिया तथा चारो तरफ दूर–दूर तक आनन्दसेन की खोज मे उनको रवाना कर दिया। किन्तु आनन्दसेन का दूर तक भी कही पता नही चला।

सेना के उस मुख्याधिकारी ने तब यह सूचना महाराजा को दी–राजन् उस आश्रम मे तो हमे आनन्दसेन भी नही मिला, किन्तु कोई आपत्तिजनक

सामग्री भी नहीं मिली। आनन्दसेन आश्रम मे रहता है—यह बात आपको किसने बताई थी ताकि उससे पूछताछ की जाय। महाराजा ने कहा कि यह बात तो महारानियो ने ही कही है। तब वह सैनिक अधिकारी बोला—महाराज, आप ही विचार करे कि आश्रम और पहलवान का भला आपस मे क्या सम्बन्ध हो सकता है ? मैंने सैनिको को चारो तरफ दूर—दूर तक खोजने के लिये भी भेजा किन्तु कही भी आनन्दसेन का कोई पता नहीं लगा। महाराजा ने सोचते—सोचते हुए फिर भी कहा—पता लगाओ कि आखिर वह राजभवन मे घुस कैसे गया और उड कर फिर चला कहॉ गया ? मन में सोचते रहे कि यह कहीं किसी व्यन्तर देव—देवी की करामात तो नहीं है। आखिर उन्होने उस मामले को वहीं समाप्त कर देना उचित समझा और उस सेनाधिकारी को बिना कोई नया आदेश दिये ही वापिस भेज दिया। उन्होने जाकर रानियो को आश्वासन दे दिया कि आश्रम मे पहलवान नही मिला है और उसकी सब जगह भी खोज करा ली गई है हो सकता है कि यह उत्पात आनन्दसेन का रूप बनाकर किसी देव—देवी ने किया हो अत घबराने की कोई बात नहीं है। पहलवान की खोज जारी है सो जब भी और जहॉ भी वह मिलेगा, उसे खत्म करवा दिया जायेगा। वह उत्तर सुनकर वे रानिया सन्तुष्ट हो गई कि अब वह बच नहीं सकेगा।

वे ग्यारह रानिया हर्ष मनाने लगी कि अब उनके खतरे के दूर होने मे कोई सन्देह नही रह गया है। न रहेगा बास, न बजेगी बासुरी। वह तरुण इस ससार मे नहीं रहेगा तो कभी भी उनके षडयन्त्र का भडाफोड नहीं होगा। इसके साथ ही कभी भी विश्वसुन्दरी का सम्मान नहीं होगा तो उनके प्रति चल रहा महाराजा का सम्मान और सद्व्यवहार बना रहेगा। अपने आपको सभी प्रकार से निष्कटक समझ कर वे रानिया अपने आपको सोभाग्यशालिनी मान रही थी।

सत्य को बार—बार अपने कपटपूर्ण प्रपचो से ढकते रहो किन्तु एक दिन ऐसा अवश्य आता है जब असत्य का अन्धेरा मिट जाता है और सत्य का प्रकाश चारो ओर फैल जाता है।



14

अपने ध्यान योग से बाबा ब्रह्मानन्द ने पहले ही देख लिया था कि अभी आनन्दसेन का सार्वजनिक रूप से अपने आपको प्रकट करने का समय नही आया है। इसी कारण उन्होने उसे मल्लयुद्ध प्रतियोगिता मे भाग न लेने की सलाह दी थी किन्तु आनन्दसेन की तरुणाई की हठ को देखते हुए उन्होने अनुमति अवश्य दे दी, पर उसके भविष्य के सम्बन्ध मे वे पूर्ण सतर्क भी हो गये थे। उन्हे आशका थी कि महोत्सव समाप्त होने के बाद दोनो भाई बहिनो के लिये कोई खतरा पैदा हो सकता है। उन्हे यह तथ्य भी ज्ञात हो गया था कि जन समूह को आनन्दसेन का किसी प्रकार का अन्य परिचय तो हुआ नही था, केवल यही पता चला था कि वह बाबा ब्रह्मानन्द के आश्रम से आया है। अत कोई खतरा आया तो उन्होने सोच लिया था कि वह उनके आश्रम के ही माध्यम से आयेगा। इस दृष्टि से किसी प्रकार का खतरा आने के पहिले ही उन्होने दोनो भाई बहिनो की जीवन रक्षा की योजना बना ली तथा यथा समय उसे कार्यान्वित भी कर दी। यह उनके पूर्व ज्ञान तथा दूरदर्शिता के कारण ही सम्भव हो सका था।

अर्ध रात्रि के बाद पहले प्रहर मे अपने पालक पिता बाबा ब्रह्मानन्द की आज्ञा पाकर आनन्दसेन और चम्पकमाला तीव्रगामी अश्व पर आरोहण करके पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान कर गये। रात्रि के शेष भाग मे वे बराबर आगे बढते रहे और सूर्योदय के समय तक उन्होने महाराजा चन्द्रसेन के राज्य की सीमा को पार कर ली। तब वे अन्य राज्य की सीमा मे प्रविष्ठ हो गये। प्राचीन काल मे एक राज्य की सीमा समाप्त होने पर सीमा सूचक पत्थर लगाये जाते थे, जिन्हे देखकर ही आनन्दसेन निश्चय कर सका कि अब वे दूसरे राज्य की सीमा मे है और अब चम्पानगरी के राज्य का कोई भी सकट उनका बाल भी बाका नहीं कर सकता है।

आनन्दसेन ने अपनी बहिन चम्पकमाला को ढाढस बधाया– बहिन, तुम किसी प्रकार से कोई चिन्ता अथवा भय से अपने मन मे स्थान मत देना। मैं तुम्हारे साथ मे हूँ और अपने गुरु ने जो मत्र हमे दिया है उसे हम बराबर जपते रहें क्योकि वह मत्र इतना प्रभावशाली है कि हर ठिकाने वह हमारी रक्षा करेगा। बाबा ने उन्हे भी साधना का अमृत पिलाना शुरू कर दिया था, अत वे दोनो घोडे पर से उतरे और एक स्वच्छ स्थान देखकर दोनो ने साधना स्वरूप ध्यान किया तथा वे महामत्र को निष्ठापूर्वक जपते रहे। आत्मा को

उसकी खुराक देने से आत्मबल बढता है और आत्मबल ही वस्तुत जीवन का प्रधान सम्बल होता है।

जैसे शरीर को भूख लगती है तो सब काम छोडकर पहले उसको उसकी खुराक देनी पडती है और जो समझता है, वह महसूस करता है कि आत्मा की भूख उससे भी अधिक प्रबल होती है। एक साधक नियमित समय पर अथवा जब भी आत्मा को भूख लगती है, सब काम और विचार छोडकर आत्म–भाव मे तल्लीन बन जाता है। आनन्दसेन और चम्पकमाला भी ध्यानस्थ होकर तथा महामत्र का जाप करते हुए आत्म भाव मे तल्लीन हो गये।

साधना से सानन्द निवृत्त होकर वे दोनों नित्यकर्म से निवृत्त हुए तथा शरीर की भूख मिटाने के साधन की इधर–उधर खोज करने लगे। पास मे उन्हे फलो के वृक्ष तथा शुद्ध जल का झरना मिल गया। आनन्दसेन ने आवश्यक फल तोडे, दोनो भाई बहिनो ने खाये, झरने का शीतल जल पिया और दोनो तृप्त हो गये। बाबा ने उन्हे सिखाया था कि भोजन से पहले भावना भानी चाहिये तथा प्रतीक्षा करनी चाहिये कि किसी महात्मा को अपने हाथ से भिक्षा दे। तदनुसार उन्होने उस वन प्रान्तर मे भी फल खाने से पहले भावना भाई और प्रतीक्षा की किन्तु वहॉ कौन महात्मा आते ?

वहॉ कुछ समय तक विश्राम कर लेने पर दोनों भाई बहिन आगे बढने के लिये तैयार हो गये। घोडे पर चढकर वे आगे बढने लगे। उन्होने विचार किया कि जिस नये राज्य की सीमा मे वे प्रविष्ठ हो गये हैं उसी राज्य की राजधानी की ओर उन्हे चलना चाहिये। वे आगे से आगे बढते रहे। तब उन्हे दूर से भव्य भवनो की पक्तियॉ दिखाई देने लगी जिससे उन्होने अनुमान लगाया कि वे राजधानी तक शीघ्र ही पहुँचने वाले हैं। किन्तु उन्हे इस बात का आश्चर्य होने लगा कि मार्ग पर आने जाने वाला एक भी व्यक्ति उन्हे नहीं मिला। आगे बढे तो नगर का परकोटा दिखाई दिया। मुख्य द्वार तक पहुँचे तो उन्हे अधिक आश्चर्य हुआ कि मुख्य द्वार पर भी कोई पहरेदार नहीं था। नगर मे प्रविष्ठ हो गये तो बाजार और दूकाने दिखाई दे रही थीं लेकिन मनुष्य का नामोनिशान तक कहीं नहीं था। तब उन्होने अनुमान लगाया कि यह राजधानी वीरान हो गई लगती है। लेकिन ऐसी सुन्दर राजधानी वीरान कैसे हो गई– इस रहस्य का तो पता लगाना ही चाहिये– उन्हाने सोचा। इस रहस्य को विदित किये बिना सहसा आगे नहीं बढ जाना चाहिये।

आनन्दसेन ने कहा–हो सकता है यही बाजार वीरान हो गया हो इसलिये नगर के अन्य हिस्सो मे भी घूम कर स्थिति का ज्ञान करले। सम्भव है दूसरे हिस्सो मे मनुष्य मिल जाये। यह कहकर वे आगे बढने लगे तो चम्पकमाला ने सावधानी दिखाई– भैया, यह आश्चर्यजनक है कि यह राजधानी मनुष्य विहीन कैसे बन गई ? कोई न कोई गम्भीर रहस्य अवश्य होना चाहिये। हम पूरी तरह से सावधान होकर चले। तब दोनो विशेष रूप से सावधान हो गये तथा चौकन्ने होकर आगे बढने लगे। आगे की स्थिति को देखते हुए चम्पकमाला ने फिर याद दिलाई कि अब आगे सोच समझ कर ही बढना चाहिये क्योकि उनके पास किसी प्रकार का कोई शस्त्र भी नहीं है। आनन्दसेन ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा– बहिन, तुम व्यर्थ ही भयभीत हो रही हो। मेरे पास शस्त्र नही हे तो क्या हुआ ? मेरे पास अपूर्व आत्म–बल एव शरीर–बल जो है। मैंने अच्छे–अच्छे पहलवानो को अभी कल ही तो पछाडा है। क्या तुम भूल गई हो ?

तब वे दोनो भाई बहिन छोटी–छोटी गलियो और सकडे मार्गों पर होते हुए बहुत दूर तक निकल गये फिर भी उन्हे कही भी कोई पुरुष, स्त्री या बच्चा नहीं मिला। उसके बाद वे दोनो यह सोचकर राजभवन की तरफ बढे कि वहॉ पर तो कोई न कोई अवश्य मिलेगा। किन्तु वहॉ पर भी न उन्हे कोई रक्षक मिला, न कोई सिपाही या दास दासी। समाधान पाने की जिज्ञासा से वे राजभवन के भीतरी प्रवेश द्वार की तरफ आगे बढने लगे। उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उन्हे उस प्रवेश द्वार पर एक विकराल स्वरूप वाला व्यक्ति बैठा हुआ दिखाई पडा। उसे देखकर चम्पकमाला ने आनन्दसेन को रोका और कहा–भैया, सभल कर आगे बढो। ऐसा लगता है कि यह नगर किन्हीं विकट परिस्थितियो मे से होकर गुजरा है इसीलिये कही भी कोई व्यक्ति नहीं बचा है। इस सर्वविनाश की जड कहीं यह विकराल व्यक्ति ही न हो। आनन्दसेन बोला–अरे कोई खास बात नही है। इसकी विकरालता असली नही है, नकली मालूम होती है। फिर भी हम विशेष रूप से सावधान हो जाते हैं।

आनन्दसेन यह कहकर घोडे से नीचे उतर पडा और उसने सावधानी से चम्पकमाला को भी नीचे उतार ली। फिर घोडे को वही पर बाध कर वे दोनो पैदल–पैदल ही आगे बढे। बढने से पहले चम्पकमाला ने अपने भाई को रोका और कहा कि थोडी देर के लिये महामन्त्र का जाप करलो ताकि हमे हमारे इस कार्य मे सफलता प्राप्त हो। दोनों भाई बहिनों ने तब पहले णवकार

मन्त्र का पाठ किया।

मानसिक एव शारीरिक शक्ति से सम्पन्न आनन्दसेन सुन्दर तरुण था। पूर्व जन्म के पुण्य कार्यो का उदय भी साथ मे हुआ सो वह जन्म से माता के स्तनपान और लाड प्यार से वन्चित रहा। यह तो नही हुआ सो नही सही, लेकिन उन दोनो का लालन पालन भी राजकीय सुख सुविधा के अनुसार नहीं हो सका। जितनी सुविधा से वे बाबा ब्रह्मानन्द के आश्रम मे रह रहे थे, यह सुविधा भी आकस्मिक रीति से छूट गई। अब भी पाप कर्मो का उदय ही प्रमुख चल रहा था कि वे इस नये सकट से घिर गये थे। किन्तु उनकी पुण्यशालिता यह थी कि मृत्यु मुख मे जाकर भी वे बच गये और उन्हे धर्म का सुखद बोध मिला। वह पुण्यशालिता ही उनकी सरक्षक बनी हुई थी जो जब भी वे कष्टो से घिर जाते, उनकी रक्षा करती थी।

चलते हुये चम्पकमाला ने अपने भाई को रोका कि वह आगे नहीं बढे क्योकि विकरालता लिये हुए वह व्यक्ति सामान्य मनुष्य नहीं बल्कि राक्षस जैसा दिखाई दे रहा है जो अतिक्रूर हो सकता है। आनन्दसेन विशेष रूप से निर्भय था। उसने निश्चिन्त होकर कहा–बहिन, तुम चिन्ता न करो। बाबा ने मेरे मन मे से भय को पूरी तरह से निकाल दिया है तथा हाथी पहलवान ने मुझे अपूर्व शरीर–शक्ति से सम्पन्न बना दिया है। इससे ऊपर महामन्त्र सर्वत्र सफल होता है। फिर आनन्दसेन ने चम्पकमाला को वहीं रोक दिया और वह अकेला ही आगे बढने लगा।

आनन्दसेन तो निर्भीक तरुण था। वह चलकर उस विकराल आकृति के सामने पहुँचा और बोला–भाई, तुम कौन हो और यहा किस प्रयोजन से बैठे हुए हो ? यह पूछकर वह सोच रहा था कि उसे कुछ न कुछ उत्तर मिलेगा। किन्तु उस राक्षस ने आनन्दसेन पर आकस्मिक रीति से प्रहार कर दिया। प्रहार प्रबल था अत वह यकायक मूर्छित हो गया। चम्पकमाला ने सोचा कि आवेश मे आकर भैया भान भूल गया है तो मैं लगातार महामन्त्र का जाप करती रहूँ। इस महामन्त्र के प्रभाव से हम इस सकट से अवश्य ही शीघ्र निकल जायेगे। बाबा का नाम स्मरण भी करने लगीं। जाप की ही मुद्रा मे चम्पकमाला ने आगे बढकर अपने भाई के मस्तक पर हाथ फिराया और आश्चर्य के साथ देखा कि आनन्दसेन सजग होकर खडा हो गया है। महामन्त्र के जाप से और बाबा के नाम स्मरण का प्रभाव प्रमाणित हो गया था। दोनो प्रसन्न हुए और तब दोनों साथ–साथ महामन्त्र का जाप और बाबा

का नाम स्मरण जोर–जोर से करने लगे।

आनन्दसेन पूर्ण सचेतन हो गया। महामन्त्र के जाप और बाबा के नाम स्मरण से उसमे नया ही जोश जाग गया। उसे बाबा का यह कथन भी याद आया कि क्रूर व्यक्ति के वचन या व्यवहार पर किसी विवेकशील पुरुष को क्रोध नही करना चाहिये। कारण, क्रोध के आवेश मे उसका विवेक निष्क्रिय हो जाता है। हमेशा क्रोधी पर क्षमाशील की ही विजय होती है। उसने उस राक्षस पर कोई क्रोध नहीं किया बल्कि भोलापन जताते हुए कहा–अरे मामा तुमने यह क्या कर दिया ? 'मामा' शब्द सुनकर वह कुछ शान्त हुआ। धीरे–धीरे उस सम्बोधन ने ऐसा जादू किया कि वह प्रसन्न हो उठा। जब वह प्रसन्न होकर प्रेम जताने लगा तो आनन्दसेन ने कहा–हम तो आपको मामा जी समझ रहे हैं और आप ने भाणेज के साथ ऐसा बर्ताव किया। आनन्दसेन की उस मिष्ट वाणी ने न जाने क्या जादू किया कि वह राक्षस पानी–पानी हो गया और अपने किये पर पछताने लगा। जैसे उसकी राक्षसी वृत्ति छूट गई और वह मानवता के धरातल पर खडा हो गया। वह कहने लगा– यह नगर मेरे कारण ही खाली हो गया है। मैं जब राक्षसी उपद्रव करता तो सभी लोग गुस्सा करते थे, मुझे गालियॉ निकालते थे और ऐसी ही ओछी हरकते करते थे। तब मेरा क्रोध बढ जाता था और मैं भान भुलकर अधिक हिसक उपद्रव करने लगता था। आखिर वे सब परेशान हो गये और यहॉ से भाग छूटे। तब से इस नगर में मैं ही अकेला हूँ। अगर यहॉ के निवासी भी तुम्हारी तरह मेरे पर गुस्सा न करते और जरा सा भी स्नेह जताते तो मैं उनका गुलाम हो जाता। तुमने प्रेम से मुझे मामा क्या कहा कि मेरा दिल भर आया। समझलो कि मैं तुम्हारा मामा ही हू और तुम्हारे लिये मैं कुछ भी कर सकता हूँ। मैं तो सिर्फ प्रेम का भूखा हूँ आज तुमने मुझे आनन्द से भर दिया है।

ऐसे विचित्र परिवर्तन से आनन्दसेन और चम्पकमाला आनन्द विभोर हो गये। उनकी आन्तरिक निष्ठा सुदृढ हो गई कि णवकार महामत्र एव बाबा के नाम का अमित प्रभाव है। आनन्दसेन ने हर्षित होते हुए राक्षस से कहा–आपने मुझे जब भाणेज मान ही लिया है तो मैं आशा करू कि आप हम दोनो के साथ पूर्ण स्नेहयुक्त व्यवहार ही करेगे। राक्षस प्रसन्नता से लोटपोट होते और आनन्दसेन को गले लगाते हुए बोला–मेरे व्यवहार की क्या बात करते हो ? देखो, यह पूरा नगर, राज्य और राजभवन मैंने तुम्हे इसी समय बक्शीस कर दिया है और तुम इसके स्वामी हो। आनन्दसेन बोला–मामाजी, इस वीरान नगरी मे मैं क्या करूगा ? हसी का ठहाका लगाते हुए राक्षस मामा

ने कहा–तुम किसी बात की फिक्र मत करो। मैं तुमको इस नगरी का राजा बना देता हूँ और सारे नगर को फिर से बसा दूँगा।

वाणी वाणी मे कितना अन्तर होता है ? एक वाणी ऐसी होती है जो दिलो के टुकडे–टुकडे कर देती है और एक वाणी ऐसी होती है जो टूटे हुए दिलो को फिर से जोड देती है। नगरवासियो की कटु वाणी से राक्षस कुपित हो गया और उन्हें वहाँ से भाग जाने के लिये मजबूर किया। दूसरी और आनन्दसेन की मीठी वाणी से राक्षस का हृदय भी पिघल गया और उस पर अपना सम्पूर्ण स्नेह न्यौछावर करने के लिये वह तत्पर हो गया। एक प्रेमभरे शब्द ने सारे उल्टे वातावरण को सुल्टा बना दिया। आनन्दसेन भी अगर कटु वाणी का प्रयोग करता तो सोचिये कि उस वीरान नगर मे उन दोनो की वह राक्षस कैसी दुर्गति बना देता ? ईट का जवाब पत्थर से न देकर शीतलता के साथ दिया जाय तो दोनो तरफ सद्भावना का प्रसार हो जाता है।

बाद मे तो उस राक्षस मामा ने जैसा कहा वैसा ही करके भी दिखला दिया। वह कोई राजनेता नही था जो आश्वासन तो लम्बा–चौडा देता और करने के नाम पर महत्त्वहीन सा करता। वह राक्षस भले ही था लेकिन दिल का बहुत सीधा सादा था। जो वायदा किया उसे पूरा करने मे उसने कोई कसर उठा नही रखी। वह राक्षस होते हुए भी देवपुरुष जैसा बन गया।

उस नगर के निवासी वहाँ से भागकर जहाँ–जहाँ जाकर बस गये थे, वहा–वहा वह राक्षस गया और उन्हे समझाने लगा कि वे फिर से अपने छोडे हुए नगर मे आकर बस जाये क्योकि वहाँ एक ऐसा दिव्य पुरुष आया है जिसने अपने सद्व्यवहार से मेरा पूरा जीवन ही बदल दिया है। अब मैं न तो उपद्रव करूगा और न ही ऐसी कोई हलचल जिससे आप लोगो को किसी तरह की परेशानी हो। इसके विपरीत मैने तो सोच लिया है कि जितनी मेरे से आप लोगो की सेवा बन पडेगी मैं करने के लिये तत्पर रहूगा। उसने सबको एक खुशी की बात और सुनाई कि मेरे जीवन का रूपान्तरण करने वाले उस दिव्य पुरुष ने आपके नगर और राज्य की व्यवस्था सम्हाल लेने का मुझे वचन दे दिया है जिससे आप लोगो का जीवन सुखी और समृद्ध बन जायेगा।

यह उन सभी नगर निवासियो के लिये बडा ही सुखद समाचार था कि स्वय उत्पात मचाने वाला राक्षस ही बदल गया है और उन से वापिस चलने का अनुरोध कर रहा है। उन्हे अपनी जन्मभूमि से बडा प्यार था अत

वे फिर से अपनी जन्मभूमि मे जाकर बस सकेगे--इससे उनके हृदयो मे हर्ष की लहर दौड गई। उन्हे इस बात को जानने की भी उत्कृष्ट अभिलाषा हुई कि वह दिव्य पुरुष कैसा है जिसने ऐसे क्रूर राक्षस का हृदय-परिवर्तन कर दिया ? फिर वह दिव्य पुरुष ही उनका राजा बनेगा तो हकीकत मे उसकी राज्य व्यवस्था भी सुचारू रहेगी। उसके बाद सभी नगर निवासी उस वीरान मे पहुँचकर अपने-अपने घर-दुकानो मे बस गये। अब उनके मन मानस मे नया उत्साह जागा था, अत एक ओर तो उन्होने नगर की नई साज-सज्जा की और दूसरी ओर सबने अपने काम धन्धे मेहनत करके बढा लिये। इस कारण उस नगर की नई रौनक देखते ही बनती थी। उस नगर के शासक के रूप मे आनन्दसेन के सिहासनारोहण का उत्सव बहुत धूमधाम से मनाया गया।

आनन्दसेन विचार करने लगा--इस ससार की ओर कर्मों की कैसी विचित्र दशा होती है ? मैं जन्मा तब तो मुझे जीने के भी लाले पडे हुए थे। माँ के वक्षस्थल के दूध की एक बूद तक पीने को नही मिली। पूर्व जन्म मे जो धर्म कर्म किया था, सत् सगत साधी थी और जो पुण्यवानी कमाई थी उसके फलस्वरूप जीवन की रक्षा हो गई। बाबा ने सरक्षण देकर जीवन का निर्माण किया। और आज यह समय आया है कि मैं एक नगर व राज्य का महाराजा भी बन गया हूँ जिसके नाते समग्र जनता का माता पिता हो गया हूँ। अल्पायु मे भी मेरे ऊपर जो उत्तरदायित्त्व आ गये हैं, उन्हे मुझे कर्त्तव्य-बोध के साथ निभाने होगे। इस कारण मेरा फर्ज नही है कि मैं मोज मजे करू या गुलछरे उडाऊ। मुझे तो अपने जीवन को साधना के बल पर सन्तुलित बनाना है तथा अहिसा धर्म की पद्धति पर सारे नागरिक जीवन को ढालना है। इसके लिये मुझे कठिन परिश्रम करना होगा।

इस चिन्तन के साथ उसने राज्य की सुव्यवस्था की रूपरेखा बनाई और तदनुसार सारे प्रशासन का ढाचा जमाया। अहिसा को प्रमुखता देने की दृष्टि मे राजाज्ञा के द्वारा सारे राज्य मे शिकार पर उसने प्रतिबन्ध लगा दिया। किसी शिकारी को राज्य मे रहने की भी मनाही करा दी। लोगो से हिसक कार्य प्रेमपूर्वक छुडाये गये तो आपसी भाईचारा बढाने के लिये आपसी विवादो के भी सन्तोषजनक निर्णय किये गये। न्याय का कार्य आनन्दसेन ने अपने ही हाथ मे रखा ताकि पारस्परिक वैर-वैमनस्य नागरिको के बीच ना रहे। इन सारे प्रबन्धो का श्रेष्ठ परिणाम निकला। यथा राजा तथा प्रजा की उक्ति सार्थक होने लगी। नागरिकों में भी वैसी ही सद्भावना, सहयोग तथा

सौजन्य की झलक दिखाई देन लगी। आनन्दसेन एक अतीव लोकप्रिय शासक हो गया।

उत्तम भावना भवनाशिनी होती है, क्योकि वह पाप का नाश करती है। अच्छी भावना के साथ सारा जीवन सवरता और सजता है। आनन्दसेन का आदर्श तो मनुष्यो के प्रति सद्भावना से ऊपर उठकर पशुओ का हितकारी भी हो गया था। इसी कारण तो उसने शिकार पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया था। किन्तु वह केवल प्रतिबन्ध की आज्ञा प्रसारित करके ही शान्त नहीं बैठ गया बल्कि उसने राज्य की सीमाओ पर सिपाहियो की ऐसी मजबूत व्यवस्था भी कर दी ताकि उसके राज्य का कोई भी निवासी शिकार नहीं कर सके और बाहर का कोई शिकारी भी उसकी राज्य सीमा मे प्रविष्ट होकर शिकार न कर सके। यह पशुओ के प्रति भी उसकी सहृदयता का प्रमाण था। उसकी अच्छी भावना की सीमा न सिर्फ मनुष्य जाति बल्कि समस्त प्राणियो तक फैल गई थी। उसने सिपाहियो को यह आदेश भी दे रखा था कि अगर कोई शिकारी अपनी राज्य सीमा मे घुस आवे तो उसको पकडकर सीधे मेरे सामने प्रस्तुत किया जाये। आनन्दसेन की भावना यह थी कि बजाय दण्ड देने के उस शिकारी का अहिसा-पालन की दृष्टि से हृदय परिवर्तित हो जाय तो वैसा प्रयास उसे स्वय को करना चाहिये। इस प्रकार की उत्तम भावना उस राज्य मे राजा से लेकर प्रजा तक प्रसारित हो रही थी।

महाराज चन्द्रसेन भी चम्पानगरी का राज्य चला रहे थे लेकिन विश्वसुन्दरी के उस प्रसव के बाद खिन्नता उनके मन मे मिटी ही नहीं। वे सोचते रहते थे कि उन्होने अपन मन मे प्रकाश के कैसे-कैसे दीपक जलाये थे और कितनी उत्कृष्ट आशा रखी थी कि विश्वसुन्दरी की कौख से अद्वितीय गुण सम्पन्न राजकुमार जन्म लेगा जो उसके राज्य का उत्तराधिकारी बन कर जनता की निष्ठापूर्वक सेवा करेगा और उसका यश बढायेगा ? क्या सोचा था और हो क्या गया ? क्या विश्वसुन्दरी जैसी भव्य महिला की कौख से कुतिया के पिल्लो को ही जन्म लेना था ? यह मेरी कैसी कर्मदशा प्रकट हुई ? मन मे रह-रह कर यही विचार उठता कि उन्होने पूर्व जन्म मे कुछ क्रूर कर्म किये होगे जिसके परिणाम स्वरूप यह सब घटित हो रहा है। इसलिये अब प्राणीरक्षा और जीवदया के कुछ ऐसे कार्य करे ताकि आगामी जन्म मे इन कार्यो के पुण्य काम आवे। इसलिये उन्होने अपने राज्य मे क्रूर हिसक कार्यो को रोकने तथा शिकार न करने के आदेश प्रसारित करवा दिये। महाराजा स्वय शिकारी वेश मे राज्य सीमाओ पर अपने इक्के-दुक्के साथियो

के साथ घूमते ताकि अवैध शिकार करने वालो को खुद पकड सके। इतनी कठोरता के साथ वे शिकार बन्दी का पालन करवाने लगे।

एक बार उन्हे सन्देश मिला कि सीमा पर कोई शिकारी चोरी छिपे शिकार कर रहे हैं तथा एक दस्यु दल राज्य की गायो का टोला लेकर भाग गया है। इस मामले मे महाराजा जागरूक थे अत हमेशा की तरह एक–दो साथियो को लेकर उनका पीछे करने के लिये अश्वारोही लेकर सीमा की तरफ चले गये। वहा पीछा करते–करते वे अपने साथियो से अलग हो गये और अकेले ही बहुत दूर निकल गये। वे अपने राज्य की सीमा से बाहर आनन्दसेन के राज्य की सीमा से बाहर आनन्दसेन के राज्य की सीमा मे पहुँच गये थे।

शिकारी की पोशाक मे महाराजा चन्द्रसेन एकाकी होकर आनन्दनगर की सीमा मे पहुँच गये। शिकारी की पोशाक होने के कारण आनन्दनगर के सिपाहियो ने तुरन्त उन्हे धर पकडा और जैसी कि उन्हे आज्ञा दी हुई थी, वे महाराजा चन्द्रसेन को पकड कर अपने महाराजा आनन्दसेन के समक्ष प्रस्तुत करने के लिये ले चले।

किसी भी व्यक्ति के वर्तमान जीवन मे जब घटना चक्र विविध प्रकार के मोड लेता है और सम–विषम परिस्थितियाँ झेलनी पडती हैं, तब उन्ही दृश्यो मे पूर्वाजित कर्मों की झलक दिखाई देती हैं। महाराजा चन्द्रसेन के जीवन का घटनाक्रम भी ऐसा ही विचित्रता के साथ चल रहा था। पुत्र नही जन्मा तो एक के बाद एक विवाह किये, तरह–तरह की कामनाएँ की और उन्होने पटरानी से सामायिक साधना की प्रेरणा ली। जन भावना से पसीज कर देवता का आह्वान किया–जैसा उसने बताया, यथाविधि वे सब कार्य उन्होने पूरे किये। मणि भी मिली तो विश्वसुन्दरी से विवाह भी हो गया और हकीकत मे उनकी चाहना–कल्पना से भी अधिक दिव्य सन्ताने उन्हे मिलीं, किन्तु वे अपने आपको नि सन्तान ही मानकर खिन्न होते रहे। हकीकत पर भी पर्दा डाल देता है यह कर्मों का पुज और जब समय आता है, यही पर्दा उठा भी देता है।



15

कर्मों की ही विडम्बना देखिये कि पिता–पुत्र आमने–सामने खडे थे, किन्तु कोई भी अपने सम्बन्ध को नहीं जान रहा था। पुत्र शासक और न्यायकर्त्ता के रूप मे सिहासन पर बेठा हुआ था तो पिता शासक होते हुए भी उस समय पुत्र के दरबार मे एक अपराधी की हैसियत से खडे हुए थे। तब भी चन्द्रसेन के दिल मे यह दु ख पल रहा था कि सब कुछ करने के उपरान्त भी वे अभागे ही रहे, जो पुत्र और अपने राज्य का अपने जैसा उत्तराधिकारी प्राप्त नहीं कर सके। आनन्दसेन के दिल के भी किसी कोने मे यह व्यथा समाई हुई थी कि वह भले ही महाराजा हैं किन्तु अपने माता–पिता के प्यार से वह वचित रहा है। दोनों के दिलो को अपना–अपना दु ख साल रहा था जब कि दोनो के दिलो के दु खो के सुखद समाधान रूप दोनो आमने सामने थे। वास्तविकता सामने थी किन्तु दोनो वास्तविकता से अनभिज्ञ थे। इसे ही कहते हैं कर्मों की विडम्बना।

आनन्दनगर के महाराजा आनन्दसेन ने प्रेम एव सम्मानभरी दृष्टि से अपने सामने खडे अपराधी को देखा तो उसने अनुभव किया कि इतना सदाशयी दिखाई देने वाला व्यक्ति न तो शिकारी हो सकता है और न ही अपराधी। इसमे कुछ न कुछ रहस्य अवश्य है। सामने दिखाई दे रहे प्रभावशाली व्यक्ति को वह अपराधी कैसे मान लेता ? यह भी वह नहीं सोच सका कि उसे वह कोई उपदेशात्मक बात कहे, क्योकि उसे वह गुरु गम्भीर एव साधक व्यक्तित्व दिखाई दे रहा था। उसके हृदय मे तो उन्हे देखकर एक नये ही चमत्कार ने जन्म लिया। अनायास ही वह सामने खडे व्यक्ति के प्रति विनयावनत हो उठा। उसे ऐसी आनन्दानुभूति होने लगी कि जैसे वह वहाँ से उठकर उनके चरणो मे गिर पडे उसके मन मे उग्र अभिलाषा जगी कि वे उसे अपनी छाती से लगा ले और सम्पूर्ण हृदय से उसे प्यार करे। उसका अन्त करण इतना आल्हादित होने लगा कि वह सिहासन पर बैठा–बैठा भी बुरी तरह से अस्थिर हो उठा। उसे समझ मे नही आ रहा था कि ऐसा क्या हो रहा है और वह इस समय मे क्या करे ?

हृदय से हृदय का सम्बन्ध होता है तो हृदय से हृदय मिल जाता है और हृदयधारी स्वय को कुछ भी समझ मे नहीं आता। पुत्र के हृदय मे जिस प्रकार आनन्द हिलोरे लेने लगा पिता के हृदय मे उन हिलोरो का वेग और भी ज्यादा तीव्र था। चन्द्रसेन मुग्ध भाव से सिहासन पर बैठे हुए व्यक्ति को

देख रहे थे और सम्पूर्ण मन से भाव विभोर हो रहे थे। उसे देखते-देखते उनकी दृष्टि इतनी केन्द्रीभूत हो गई कि उन्हे आनन्दसेन की भव्य आकृति के सिवाय कुछ भी दिखाई नही दे रहा था। उनका दिल धडकने लगा कि वे सब कुछ भूलकर उसे अपनी छाती से चिपका ले, गले लगाले और अपने प्यार भरे आसुओ से उसे नहला दे। प्रेम नदी की बाढ की तरह उमड रहा था, किन्तु वे समझ नही पा रहे थे कि इस तरुण को देखते ही उनके मन मे ऐसा क्यो हो रहा है ?

पिता-पुत्र के हृदय परस्पर मिल लिये किन्तु उनके शरीर स्तब्ध बने अपने-अपने स्थान पर ही थे। आखिर आनन्दसेन शासक था, शान्ति भग उसने ही की और कहा-आपके भव्य व्यक्तित्व को देखकर मैं यह नही समझ पा रहा हूँ कि आप अपराधी हो सकते हैं। शिकारी भी आप नही हो सकते क्योकि आपकी आकृति पर असीम दया झलक रही है। मेरी उलझन यही है कि आप शिकारी के वेश मे कैसे हैं ? और उसने मन ही मन सोचा कि सबसे बडी उलझन तो यह है कि इनके प्रति मेरा समग्र प्रेम क्यो आकर्षित हो रहा है ? उसे ध्यान आया कि यह तो वही व्यक्तित्व दिखाई दे रहा है जिनके हाथो वह मल्लयुद्ध मे विजय प्राप्त करने के बाद सम्मान पा चुका है। अचानक उसकी चेतना लौटी कि तब तो ये चम्पानगरी के महाराजा ही हैं। वह अपने स्थान से उठ खडा हुआ और उसने अनुरोध किया कि वे उसके पास लगे समकक्ष आसन पर बिराजे।

चन्द्रसेन बोले-आप शासक हैं और मैं एक अपराधी के रूप मे आपके सामने हूँ, इसलिये एक बार मेरा स्पष्टीकरण तो सुन लीजिये। आपने ठीक ही अनुमान लगाया है कि मैं शिकारी नहीं हूँ। अपराध है तो यही कि मैं अपने साथियो से अलग होकर भटक गया। और अनजाने मे आपके राज्य की सीमा मे चला आया। इसका दण्ड दिया जा सकता है।

चन्द्रसेन तो समता के साधक थे अत अपने अपराध को स्वीकार कर लेने मे उन्हे कोई हिचक नही हुई। उन्होने कहा-मैं शिकारी के वेश मे भी एक कारण से हूँ। मेरे राज्य मे मैंने शिकार पर प्रतिबन्ध लगा रखा है इसलिये अवेध रूप से शिकार करने वालो को पकडने के लिय मैं स्वय शिकारी के वेश मे घूमता हू ताकि उनका अपराध मेरे सामने स्पष्ट हो जाये और मैं उसके हृदय को वहीं परिवर्तित करके सच्चा अहिसक बना सकू। वे बोल ही रहे थे तव तक तो आनन्दसेन ने वहॉ पहुँचकर उनका स्वागत किया और निवेदन

किया–आप तो चम्पानगरी के महाराजा दिखाई देते हैं। आप प्रौढ़ हैं और मेरे पूज्य हैं। आप पधारकर सिंहासन पर विराजिये। आनन्दसेन उन्हें सम्मानपूर्वक तब वहाँ तक ले गया। स्वयं मैंने भी अपने राज्य में शिकार पर प्रतिबंध लगा रखा है तथा शिकारी वेश में मिलने वालों को पकड़ कर मेरे सामने प्रस्तुत करने के आदेश के पीछे आप जैसी ही मेरी भावना है।

आनन्दसेन के ऐसे शालीन व्यवहार से चन्द्रसेन हर्ष विभोर हो गये कि इतनी सी आयु में भी यह तरुण कितना विवेकपूर्ण और अहिंसक शासक है। वे सोचने लगे कि यह तो हर बात में मेरे ही समान लग रहा है–आकृति से भी, व्यवहार से भी और ज्ञान–विवेक से भी। इसके पास बैठकर जैसे मेरे तन–मन में शीतलता और शान्ति व्याप्त हो गई है। इस तरुण के जीवन में सद्‌गुणों का विकास जिस परिपक्व रूप में दिखाई दे रहा है, उससे तो यही सद्‌गुणी जन जीवन अपने माता–पिता के खून से भी मिला है। तभी तो जीवन का इतना सुन्दर स्वरूप दिखाई दे रहा है। सोच–सोच कर उनका हृदय अपूर्व रूप से प्रमुदित होने लगा। प्रमोद भाव से ही वे बोले–ठीक है, मैं चम्पानगरी का शासक हूँ तो आप भी आनन्द नगर के शासक हैं और इतनी अल्पायु में इतने सद्‌गुणी और सुयोग्य शासक हैं–यह निश्चय ही आपके पूर्वार्जित कर्मों के सुफल का उदय है। एक मैं हूँ, शासक भी हूँ किन्तु आप नहीं जानते कि मैं कितनी बड़ी मानसिक पीड़ा को झेल कर चल रहा हूँ, किन्तु उसे भी मैं अपने पूर्वार्जित कर्मों का ही फल मानता हूँ। अन्तर यही है कि आपके शुभ फल का उदय है और मेरे अशुभ फल का।

आनन्दसेन और चम्पकमाला ने महाराजा चन्द्रसेन का ऐसा भावभरा स्वागत किया कि स्नेहपूर्ण नया ही वातावरण बन गया। उस वातावरण मे चन्द्रसेन को पता ही नही चला कि सबके शामिल रहते हुए कितने दिन बीत गये। जब भी चन्द्रसेन जाने का निश्चय करते, उनका मन उन्हें रोक देता और वे रुक जाते। इस तरह वहॉ रहते–रहते छ माह व्यतीत हो गये।

एक दिन चन्द्रसेन ने आनन्दसेन से पूछा–यह कौनसा महीना चल रहा है। आनन्दसेन ने महीना बताया तो उन्होने हसते हुए कहा–अरे, मुझे तो यहॉ रहते–रहते छ माह व्यतीत हो गये हैं और पता ही नही चला। अब तो मुझे प्रस्थान कर देना चाहिये। यहॉ अकेला ही मैं इतना रह गया हूँ–पता नहीं राज्य के क्या हालचाल चल रहे होगे।

इधर महाराजा चन्द्रसेन आनन्दनगर मे इतने लम्बे अर्से तक रुक गये और उधर चम्पानगरी मे तहलका मचा हुआ था कि बीहड वन मे महाराजा अकेले पड गये थे और अब तक भी नही लौटे सो न जाने उनके साथ क्या घटित हुआ होगा ? राज परिवार, दीवान, अधिकारी और नागरिक–सभी चिन्तातुर बने हुए थे। वहॉ किस को यह समाचार मिल सकता था कि महाराजा आनन्दपुर मे रुके हुए हैं। चम्पानगरी की ऐसी ही परिस्थिति का विचार करते हुए अन्ततोगत्वा महाराजा ने अपने दिल को कडा करके आनन्दनगर से प्रस्थान करने का निश्चय किया।

उनके इस निश्चय को सुनकर दोनो भाई बहिन भाव–विह्वल हो उठे और मनुहार करने लगे कि वे कुछ दिन तो और बिराजे। उनका मन मान ही नही रहा था कि महाराजा उनसे कभी भी विलग हो। उनके अन्तकरण की सच्ची अभिलाषा तो यह बन गई थी कि महाराजा सदा–सदा के लिये दोनो भाई–बहिन के साथ ही रहे। सम्बन्ध का बाह्यरूप भले ही प्रकट न हुआ हो किन्तु आन्तरिक स्वरूप तो दोनो के मन–मानस पर सम्पूर्णतया छा ही गया था। उन्होने बहुत–बहुत अनुरोध किया किन्तु यह समझने को विवश हुए कि राज्य व्यवस्था की दृष्टि से महाराजा को जाना ही पडेगा। तब उन्होने दुखित मन से चन्द्रसेन को विदाई दी।

महाराजा चन्द्रसेन को आनन्दनगर से न सिर्फ महाराजा आनन्दसेन और उसकी बहिन चम्पामाला ने, बल्कि समग्र जनता ने भाव एव सम्मानपूर्ण विदाई दी। विवशतावश चन्द्रसेन आगे बढ रहे थे लेकिन बडे शिथिल चरणो से–जैसे कि उनका दिल तो उनसे छूट कर आनन्दनगर मे ही रह गया हो।

व विचारने लगे कि मै मुर्दा होकर चल रहा हूँ। मेरी आत्मा और मेरे प्राण तो आनन्दसेन और चम्पामाला से ही जुडे हुए रह गये हैं। वियोग की पीडा को झेलते-झेलते वे चम्पानगरी पहुँचे।

महाराजा चन्द्रसेन अपनी राजधानी मे पहुँचे और किन्ही नागरिको ने उनके दर्शन किये तो उनके आगमन का शुभ समाचार सारी नगरी मे तुरन्त ही फैल गया। फिर तो सारा नगर उनका स्वागत करने के लिये उमड पडा। सबके हर्ष का पार नही था कि उनके प्यारे शासक सकुशल लौट आये हैं। सभी महाराजा के इर्द-गिर्द इकट्ठे हो गये और पूछने लगे कि इतने दिनो तक कहाँ पर बिराजना हो गया ? क्या किन्हीं सकटो ने तो महाराजा को नहीं घेर लिया था ? तब महाराजा ने जन समूह को सम्बोधित करते हुए बताया-मैं शिकारियो और दस्युओ का पीछा करते हुए अकेला पड गया तथा निकट के राज्य आनन्दनगर की राजधानी मे पहुँच गया। वहां के महाराजा इतने सौम्य सुयोग्य और शिष्टाचारी हैं कि क्या कहूँ ? उनका नाम आनन्दसेन और उसकी बहिन का नाम चम्पकमाला है। दोनो ने मुझे इतना स्नेह और सम्मान दिया कि दीर्घकाल से खिन्न बना मेरा मन अतीव सन्तुष्ट और तृप्त हो गया। उन्होने मेरी इतनी सेवा की कि मानो वे मेरे पुत्र और पुत्री ही हो। प्रेम के उस स्निग्ध वातावरण मे इतने समय के बीत जाने का मुझे कुछ ख्याल ही नहीं हुआ। मेरा मन तो नही चाहता था किन्तु आप लोगो की चिन्ता करते हुए मुझे उनसे अब तो विदाई लेनी ही पडी। मेरे जीवन मे जिस तरह से घटनाऐ घटित होती रही हैं उनको देखकर और उनके माध्यम से अपने कर्मो के फल को समझ कर इस ससार से मेरी आसक्ति हटती जा रही है। अब मै अपने विचार और आचार मे आध्यात्मिकता का अधिक से अधिक विकास करना चाहता हूँ। आनन्दसेन और चम्पकमाला की दिव्यता और स्नेहशालीनता मेरे अन्तःकरण मे बस गई है।

आनन्दसेन तो नही है जिसका जीवन समाप्त कर देने के उनके पहले षडयन्त्र के असफल हो जाने के बाद रचे गये दूसरे षड्यन्त्र को वे सफल मान रही थी—वही आनन्दसेन जो नई महारानी विश्वसुन्दरी का पुत्र था और उनकी राह का सबसे बडा कॉटा था ? उन रानियो का प्रतिशोध भाव फिर से भडक उठा। उन्होने निश्चय किया कि इस तथ्य का पूरी तरह से पता लगाया जाना चाहिये। मन्त्रणा करने के लिये उन्होने सलखू नाइन को भी बुलवा लिया।

सभी बैठकर आपस मे सोचने लगी कि महाराजा ने अपने वक्तव्य मे जिस आनन्दसेन का उल्लेख किया है, वह क्या वही आनन्दसेन पहलवान और विश्वसुन्दरी का ही पुत्र तो नही है ? एक रानी ने कहा—हमने जब आनन्दसेन पहलवान द्वारा रनिवास पर आक्रमण का नाटक रचकर महाराजा से शिकायत की थी तब महाराजा ने बाबा ब्रह्मानन्द के आश्रम पर सैनिको स छापा डलवाया था, लेकिन वहॉ आनन्दसेन के न मिलने पर महाराजा ने आश्वासन दिया था कि खोज करवा कर इस अपराध के लिये उसको मृत्युदण्ड ने दिया जायेगा। हम सब तो यही सोच रही थी कि उसका काम तमाम हो गया होगा। लेकिन लगता है कि उस समय आनन्दसेन बच गया और वह किसी तरह आनन्दनगर का महाराजा बन गया। यदि ऐसा है तो खतरा फिर से हमारे ऊपर मण्डराने लगा है—ऐसा हमको समझना चाहिये। सलखू ने भी हॉ मे हॉ भरी और कहा—मुझे भी ऐसा लगता है। यदि उस समय आनन्दसेन को मृत्युदण्ड दे दिया गया होता तो उसका कही न कही अन्तिम सस्कार तो किया जाता। हमने तो ऐसी कोई खबर सुनी नही। वे सभी आपस मे सोच विचार कर रही थी, तभी उन्हे सूचना मिली कि महाराजा उन्ही की तरफ आ रहे हैं।

महाराजा वहॉ आये तो सभी के चेहरे कृत्रिम भावो से रगे हुए थे। उन्हान वियोग के दु ख का ऐसा जबरदस्त नाटक रचा कि वे महाराजा के पधार जाने के वाद से अपनी भूख प्यास सव कुछ भूली हुई हैं और निरन्तर उन्ही की चिन्ता करती रही हैं। महाराजा तो भद्रिक स्वभाव के थे। उन्हाने राव की गात सुनी ओर अपना सारा विवरण वताया। रानियो ने विवरण नुनकर पूछा—राजन, उन महाराजा आनन्दसेन की आयु कितनी होगी ? महाराजा न वताया कि वह वीस वर्ष करीव का तरुण होगा। रानियो को तो उसक जन्म क दिन और घण्टे तक मालुम थे। उन्हे निश्चय हो गया कि आयु, सुन्दरता और दूसर सार वर्णन रो वही आनन्दसेन पहलवान ही होना चाहिये।

महाराजा तो अपनी बात करके चले गये लेकिन वे रानियाँ नया षडयन्त्र रचने में संलग्न हो गई।

महाराजा चन्द्रसेन जिन्होंने वीतराग देव के कुछ सिद्धान्तो का रसास्वादन किया था अपने जीवन को पवित्र बनाते हुए सासारिकता के प्रति अपने आसक्ति भाव को घटा रहे थे। सन्तान नही होने की खिन्नता को भी वे कम करने लगे और आत्मिक ज्ञान को पुष्ट बनाकर अपने जीवन को सार्थक बनाने की शुभ प्रवृत्ति मे तल्लीन होने लगे। फिर भी रह रहकर आनन्दनगर की स्मृतियाँ उनके विचारो को घेर लेती थी कि आनन्दसेन और चम्पकमाला ने बिना किसी स्वार्थ भाव के उनको कितना तरल स्नेह और सम्मान दिया था ? कितना विचक्षण और दिव्य था उन दोनो का स्वरूप ? कितने सरल और सहृदय लगते थे वे दोनो ? वे दोनो उनके मन को कितना भा गये थे कि जैसे वे उन्ही की प्रतिकृतियाँ ही हो ? उन्होने उनकी कितनी हार्दिकता से सेवा की थी ? उनके एक-एक व्यवहार और एक-एक कार्य मे आत्मीयता भरी हुई थी। उन्हे देखकर ही सदा हृदय भर आता था और वे गद्‌गद् हो जाते थे। यही नहीं। आनन्दसेन इतनी छोटी आयु मे ही शासक बनकर भी मानवता की रक्षा एव अहिंसा की पालना के प्रति कितना निष्ठावान था ? उस छोटे से जीवन मे मैंने सद्‌गुणो का कितना विशाल सचय देखा कि मैं अपने आपको ही भूल गया। उन्हे इस बात का सन्तोष हुआ कि जब उन्होने अपने वक्तव्य मे सारा विवरण सुनाते हुए आनन्दसेन के प्रति आभार व्यक्त किया तो उसका समग्र जनता ने समर्थन किया। यही नही उनकी रानियो ने भी उसका समर्थन किया। वे इन सुखद स्मृतियो के बीच साधना और धर्माराधना मे जुट गये।

फल था। अब पुन यह जानकर कि विश्वसुन्दरी के पुत्र–पुत्री जीवित हें तथा आनन्दसेन शासक के पद पर प्रतिष्ठित हैं–उनकी यह आग फिर से प्रज्ज्वलित हो उठी। महाराजा ने दोनो भाई बहिन की प्रशसा मे जो शब्द कहे, वे उनकी इस आग मे घी बन गये। वे फिर बेचैन हो गईं कि अब क्या किया जाये ? उन्हे कुछ भी सूझ नही पड रहा था इसलिये मदद के लिये उन्होने फिर से सलखू नाइन को बुलवा भेजा।

उन रानियो ने अपनी विश्वस्त दासी को रात्रिकाल मे सलखू नाइन को बुलाने के लिये भेजा। दासी को देखकर सलखू एकदम चौंक गई कि यह फिर से बुलावा क्यो ? उसने पूछा–ऐसी क्या बात हो गई सो इतनी रात गये मुझे बुलाने के लिये आई हो ? दासी ने इतना ही कहा कि बुलाया है। इतना सोना ले रखा है तो उनकी सेवा करनी ही पडेगी–यह सोचकर सलखू उसके साथ चल दी। करीब अर्धरात्रि के समय वह रनिवास मे पहुँची। पहुँचते ही पहले तो रानियो ने उस पर रोष जताया कि जन्मते ही नवजात शिशुओ को अपने हाथो से ही न मारकर उसने सारी समस्या को अब अति जटिल बना दिया है। मुखिया रानी ने कडवा उलाहना दिया–अरी सलखू, हम नही जानती थी कि इतनी धनराशि देने पर भी तू हमारे साथ विश्वासघात करेगी। हमने जब मारने की ही योजना बनाई थी तो उसे यथावत् पूरी नहीं करके तुमने विश्वासघात ही तो किया। उसका नतीजा यह हुआ कि आनन्दसेन पहलवान हो गया और अब आनन्दनगर का महाराजा बन गया है। महाराजा दोनो पुत्र–पुत्रियो के प्रति पूर्णत आकृष्ट हो गये हैं तो हमारी समस्या तो ज्यो की त्यो ही खडी रही न ? सलखू दबती हुई बोली–महारानी जी, जो मैं कर सकती थी, वह मैंने अपनी पूरी हिम्मत से किया। आप बताइये कि अब क्या किया जाये ? रानियॉ कहने लगी–सलखू, महाराजा की प्रसन्नता को देखते हुए तो यह कहा जा सकता है कि वे अब उस आनन्दसेन को चम्पानगरी का भी उत्तराधिकारी बना देगे। फिर सोच, हमारी क्या दुर्दशा हो सकती है ? सलखू ने तब समझाईश की–ये तो सब पुण्यवानी के खेल होते हैं। आदमी अपनी कोशिश करता है लेकिन वह कामयाब हो ही जाये–क्या यह जरूरी हे ? यह आनन्दनगर का महाराजा कोई दूसरा ही आनन्द भी तो हो सकता है।

महारानियो ने उसे आगे बोलने से रोक दिया और कहा– महाराजा की प्रशसा का साफ मतलब है कि उनके बीच मे प्रबल आकर्षण पैदा हुआ है ओर ऐसा आकर्षण पिता–पुत्र का ही हो सकता है। हमारा विचार तो यही है कि यह आनन्दसेन वही आनन्दसेन है। अब तू बता कि तेरा क्या सहयोग

हो सकता है? वह बोली—मैंने आपसे इतनी धनराशि प्राप्त की है तो मैं कृतघ्न नहीं बनूँगी। अब भी मैं कोई ऐसा प्रयत्न कर सकती हूँ कि वह आनन्दसेन मृत्यु के मुख में पहुँच जाय।

नीतिकारों ने नायिन जाति को बड़ी चालाक बताया है सो उस सलखू नाइन ने चालाकी का बर्ताव करने की ही सोची—आप फिक्र न करें। मैं अब पूरी तरह से आपके साथ हूँ। यद्यपि अब मुझे बहुत ज्यादा परिश्रम करना पड़ेगा अतः उसके लिये काफी धन राशि की जरूरत होगी। इसकी आप व्यवस्था कर दें। मैं पूरी वफादारी से आपका काम पूरा करूँगी। इतने बड़े साहसी को मारने के लिये अब कई तरह की योजनाएँ बनानी पड़ेगी। रानियों की मुखिया ने कहा—तू धनराशि की बिल्कुल चिन्ता मत कर। वह जो चाहेगी, मिल जायेगा लेकिन यह सोचले कि इस बार हर कीमत पर सफलता मिलनी चाहिये। लोभ के वश कोई अपना कितना अधःपतन कर सकता है तथा साथ ही [illegible] सकता है। सलखू उन्हें पूरा आश्वासन देकर तथा धन राशि लेकर अपने घर चली गई।

16

मात्र भौतिक दृष्टिकोण वाली आत्माएँ धन के लिये कैसा भी पाप कार्य करने के लिये उद्यत हो जाती हैं। वर्तमान समय मे तो इस दृष्टिकोण की बहुलता दिखाई देगी। किन्तु जो बखान तो आध्यात्मिकता का करते हैं, और भीतर ही भीतर भौतिकता का अनुसरण करते हैं, आज के युग मे ऐसे लोग भी मिल जाते हैं। ऐसे व्यक्तियो को दुहरा चरित्र अधिक घातक बनता है। ये लोग धन की लिप्सा मे ऐसे फसे हुए होते हैं कि धनार्जन को ही प्रधानता देकर अपने व्यक्तिगत चारित्र्य अथवा सामाजिक नैतिकता को भूल जाते हैं। गलत रास्तो से धन कमाने के पीछे अपने मन, वचन एव कर्म को कितना विकृत बना लिया जाता है—उसका कोई हिसाब नही। फिर जो आध्यात्मिकता की दिशा मे एक कदम भी आगे नहीं बढे हैं, उनकी धन लिप्सा तो हदबाहर होती है। पूर्व काल मे भी ऐसे धन लिप्सु कोई—कोई मिल जाते थे जिनके उदाहरण के रूप मे सलखू नाइन थी जो ग्यारह रानियो से धन प्राप्त करके आनन्दनगर के महाराजा आनन्दसेन की कुटिलतापूर्वक हत्या कर देने के लिये तेयार हो गई।

तीसरी बार रचे गये षड्यन्त्र को सफल बनाने की जिम्मेदारी लेकर सलखू नाइन राजभवन से अपने घर पर पहुँची और आनन्द—नगर जाने के लिये आवश्यक साधन जुटाने लगी। दूर देश जाने के लिये रक्षा हेतु किन्ही रक्षको को भाडे पर लिया तो अन्य आवश्यक सामग्री भी साथ मे ले ली और आनन्दनगर के लिये रवाना हो गई।

जब वह आनन्दनगर के मुख्य द्वार पर पहुँची तब करीब अर्ध रात्रि का समय हो रहा था। नगर के बाहर ही उसने भाडे के रक्षको को छोड दिया और स्वय नगर मे प्रविष्ठ हो गई। तब वह राजभवन पहुँची और द्वारपाल से बोली—मुझे भीतर जाने दो। द्वारपाल ने पूछा—तुम कौन हो ? सलखू ने हाथ झटका कर कहा—मुझे पूछते हो कि मैं कौन हूँ ? मैं जगत्प्रसिद्ध बाबा ब्रह्मानन्द की बहिन हूँ। तुम्हारे महाराजा इन्ही बाबा के शिष्य हैं। मैं उनसे मिलने के लिये आई हूँ। तुम मुझे तुरन्त भीतर जाने दो। द्वारपाल ने कहा—तुम अगर महाराजा से मिलने आई हो तो रात्रिकाल मे क्यो आई हो ? दिन मे आना चाहिये। हम तुम्हे पहिचानते नहीं और बिना पहिचान भीतर नही जाने देंगे। तुम न जाने कौन हो और महाराजा के लिये कोई खतरा पैदा कर दो तो यह हमारी जिम्मेदारी होती है। हम गलत काम नही कर सकते हैं। सलखू

द्वारपाल से लड़ने लगी। डाँटने लगी। उसे बुरा भला कहने लगी। द्वारपाल ने उसे द्वार पर ही रोक दिया सो रोक ही दिया। उसे भीतर जाने की अनुमति नहीं दी।

जब सतरुपा की कुछ न चली तो उसने अपना नाइन चरित्तर शुरू कर दिया। वह जोर-जोर से रोने लगी। उसके रोने की आवाज चारों ओर फैलने लगी। निद्रा भी कई तरह की होती है। किन्हीं लोगों की नींद ऐसी होती है कि उनके पास जाकर ढोल पीटा जाये तब भी उनकी नींद नहीं खुलती है। दूसरे चमक निद्रा वाले होते हैं जो जरा से खटके पर ही जाग जाते हैं। पवित्र हृदय वालों की निद्रा अधिकतर चमक निद्रा होती है। उस रुदन से आनन्दसेन की निद्रा तुरन्त खुल गई और सोचने लगा कि अर्धरात्रि के समय यह कौन महिला है जो राजभवन के बाहर इस तरह रो रही है? कहीं किसी ने उस पर कोई अत्याचार तो नहीं किया? उसने रक्षक को बुलाया और पूछा—यह कौन स्त्री है जो रो रही है और किस कारण से रो रही है? रक्षक भागा हुआ गया और द्वारपाल से विवरण पूछ कर वापिस आगया। उसने महाराजा को उत्तर दिया—स्वामी! कोई एक स्त्री द्वार पर खड़ी रो रही है कि द्वारपाल उसको भीतर प्रवेश नहीं करने दे रहा है। वह अपने आप को बाबा ब्रह्मानन्द की बहिन बता रही है। द्वारपाल या अन्य कोई व्यक्ति उसे पहिचानता नहीं इस कारण उसे बाहर ही रोक रखा है। रात्रिकाल में किसी अजनबी को आप तक आने देना उचित नहीं है। कारण कोई धोखा भी हो सकता है।

वर्तमान युग मे देखे तो गृहस्थाश्रम मे रहते हुए अधिकाश व्यक्ति अपने माता–पिता की समुचित सेवा तो नही करते सो न सही किन्तु उनसे रात दिन लडाई झगडा करते रहते हैं और उनको असह्य कष्ट पहुँचाते रहते हैं–यह कितनी निकृष्टता की वस्तुस्थिति है ? वे लोग सद्‌गुणी नही कहला सकते। जो सद्‌गुणी होते हैं, वे इस जन्म के माता–पिता की तो सेवा करते ही हैं लेकिन अनन्त जन्मो मे रहे हुए माता–पिताओ को कष्ट नही पहुँचाने की शुभ भावना से प्राणी मात्र पर भी दया भाव रखते हैं। इसी भावना के साथ आनन्दसेन ने चम्पकमाला को नीचे खडी स्त्री के रहस्य के बारे मे पता लगाने की बात कही।

आनन्दसेन अपनी बहिन चम्पकमाला को साथ मे लेकर नीचे पहुँचा और सलखू को कहा–आप कौन हैं, क्यो रो रही हैं ? बताइये कि आप को क्या दु ख है ? तब सलखू का क्या कहना ? उसने अपने नाइन चरित्तर को तेज कर दिया। वह और अधिक जोर से रोने लगी और तूफान मचाने लगी। आनन्दसेन ने बहुत कहा कि जो भी कष्ट होगा, दूर किया जायेगा लेकिन रोना बन्द करो। किन्तु सलखू का नकली रोना चलता ही रहा। तब आनन्दसेन ने चम्पकमाला से कहा कि तुम इन्हे चुप कराओ। चम्पकमाला ने उसके चेहरे पर हाथ फिराते हुए कहा–आप रोना बन्द करो। स्वय महाराजा आपके सामने खडे हैं। जो भी आपका दु ख हो, इन्हे बताओ। ये अवश्य उस दु ख को दूर करेगे। तब सिसकियॉ भरते हुए सलखू बोली–मैं बाबा ब्रह्मानन्द की बहिन हूँ। यहॉ इसलिये आई हूँ कि मेरा दु ख दूर होवे। मैंने सुना कि बाबा का शिष्य आनन्दसेन यहा का महाराजा है और बहुत दयालु व परोपकारी है। ब्रह्मानन्द तो साधु बना हुआ है सो स्त्रियो को अपने आश्रम मे स्थान नही देता है। अत मैं यहॉ आश्रम पाने के लिये आई हूँ। जब राजभवन मे जाने से द्वारपाल ने मुझे रोक दिया तो मुझे अपनी दुर्दशा पर रोना आ गया। आनन्दसेन ने कहा–यदि आप बाबा की बहिन हैं तो हमारी माता के समान हैं। आप हमारे साथ रहो। हम आपकी हर तरह से सेवा करेगे। फिर क्या था–सलखू महाराजा आनन्दसेन और चम्पकमाला के साथ सम्मान और आनन्द से रहने लगी।

सलखू तो अपने षड्‌यन्त्र के प्रसग से चल रही थी। आनन्दसेन भद्रिक स्वभावी था अत बाबा की बहिन के प्रति अपना कर्त्तव्य समझ कर उसको आश्रय दिये हुए था। सलखू ने अपने चेहरे के दो रूप बना रखे थे। बाहर से वह स्नेह के दिखाऊ हाव–भाव किया करती और भीतर से ऐसे अवसर

वर्तमान युग मे देखे तो गृहस्थाश्रम मे रहते हुए अधिकाश व्यक्ति अपने माता–पिता की समुचित सेवा तो नहीं करते सो न सही किन्तु उनसे रात दिन लडाई झगडा करते रहते हैं और उनको असह्या कष्ट पहुँचाते रहते हैं–यह कितनी निकृष्टता की वस्तुस्थिति है ? वे लोग सद्‌गुणी नहीं कहला सकते। जो सद्‌गुणी होते हैं, वे इस जन्म के माता–पिता की तो सेवा करते ही हैं लेकिन अनन्त जन्मो मे रहे हुए माता–पिताओ को कष्ट नही पहुँचाने की शुभ भावना से प्राणी मात्र पर भी दया भाव रखते हैं। इसी भावना के साथ आनन्दसेन ने चम्पकमाला को नीचे खडी स्त्री के रहस्य के बारे मे पता लगाने की बात कही।

आनन्दसेन अपनी बहिन चम्पकमाला को साथ मे लेकर नीचे पहुँचा और सलखू को कहा–आप कौन हैं, क्यो रो रही हैं ? बताइये कि आप को क्या दु ख है ? तब सलखू का क्या कहना ? उसने अपने नाइन चरित्तर को तेज कर दिया। वह और अधिक जोर से रोने लगी और तूफान मचाने लगी। आनन्दसेन ने बहुत कहा कि जो भी कष्ट होगा, दूर किया जायेगा लेकिन रोना बन्द करो। किन्तु सलखू का नकली रोना चलता ही रहा। तब आनन्दसेन ने चम्पकमाला से कहा कि तुम इन्हे चुप कराओ। चम्पकमाला ने उसके चेहरे पर हाथ फिराते हुए कहा–आप रोना बन्द करो। स्वय महाराजा आपके सामने खडे हैं। जो भी आपका दु ख हो, इन्हे बताओ। ये अवश्य उस दु ख को दूर करेगे। तब सिसकियॉ भरते हुए सलखू बोली–मैं बाबा ब्रह्मानन्द की बहिन हूँ। यहॉ इसलिये आई हूँ कि मेरा दु ख दूर होवे। मैंने सुना कि बाबा का शिष्य आनन्दसेन यहा का महाराजा है और बहुत दयालु व परोपकारी है। ब्रह्मानन्द तो साधु बना हुआ है सो स्त्रियो को अपने आश्रम मे स्थान नही देता है। अत मैं यहॉ आश्रम पाने के लिये आई हूँ। जब राजभवन मे जाने से द्वारपाल ने मुझे रोक दिया तो मुझे अपनी दुर्दशा पर रोना आ गया। आनन्दसेन ने कहा–यदि आप बाबा की बहिन हैं तो हमारी माता के समान हैं। आप हमारे साथ रहो। हम आपकी हर तरह से सेवा करेगे। फिर क्या था–सलखू महाराजा आनन्दसेन और चम्पकमाला के साथ सम्मान और आनन्द से रहने लगी।

सलखू तो अपने षड्यन्त्र के प्रसग से चल रही थी। आनन्दसेन भद्रिक स्वभावी था अत बाबा की बहिन के प्रति अपना कर्त्तव्य समझ कर उसको आश्रय दिये हुए था। सलखू ने अपने चेहरे के दो रूप बना रखे थे। बाहर से वह स्नेह के दिखाऊ हाव–भाव किया करती और भीतर से ऐसे अवसर

की टोह मे रहती जब वह अपने षडयन्त्र को सफल बना ले। दोगले चरित्र वाले व्यक्ति बडे खतरनाक होते हैं। कुटिलतापूर्वक वे अपने भीतर के जहर को तनिक भी बाहर प्रकट नही होने देते हैं। और सलखू के ऊपर के व्यवहार को देखकर ही दोनो भाई बहिन ने उस पर पूरा विश्वास कर लिया। सलखू रक्षक के रूप मे भक्षक बन कर राजभवन मे रहने लगी।

जो व्यक्ति वास्तविक रूप से सेवा लेने नही आया है, वह अनूठी सेवा से भी प्रभावित कैसे हो सकता है ? सलखू तो रात दिन भाई–बहिन के खून की प्यासी होकर अपने काम को पूरा करने की घात मे लगी हुई थी। मन ही मन इस दुष्ट उद्देश्य के लिये उसने एक योजना गढी और उसे पूरी कर लेने के प्रयास मे जुट गई।

एक दिन वह अच्छे गादी तकियो पर सोई हुई थी। सेवा मे दासियॉ हाजिर थी। चम्पकमाला भी उसको बार–बार सभालती रहती थी। उस समय सलखू अपनी योजना को कामयाब करने के लिए अचानक इतनी जोर से रोने लगी कि जैसे सारा राजभवन गूजने लगा। रोते–रोते वह कभी इधर गिरती तो कभी उधर पडती और इस तरह जोरदार नाटक करने लगी। उसके इस तरह के क्रन्दन–रुदन को सुनकर चम्पकमाला भी तुरन्त दौडी हुई आई तो आनन्दसेन भी भगा हुआ चला आया।

भाई आनन्दसेन और बहिन चम्पकमाला दोनो ने घबरा कर पूछा–माता, आप इस तरह क्रन्दन क्यो कर रही हैं ? अचानक आपको क्या कष्ट हो गया है ? काफी देर तक दोनो पूछ–ताछ करते रहे और सलखू लगातार रोती रही। जब उसे अपने नाटक का अन्तिम अध्याय समाप्त करना था अत नाटकीय हावभाव से ही वह आखिर बोली–तुम्हारे राज्य मे न कोई मुझे कष्ट देने वाला है और न ही कोई मेरी अवहेलना करने वाला है। सेवा भी मेरी इतनी अच्छी हो रही है कि मानो मैं स्वर्ग मे पहुॅच गई होऊॅ। मेरे रोने का कारण यही है कि अचानक मेरी ऑखों मे प्राणान्तक शूल पैदा हो गया है और यह मेरे वेदनीय कर्म का ही उदय है।

आनन्दसेन कहने लगा–यदि आपकी ऑखो मे ऐसा शूल पैदा हो गया है तो अभी राजवैद्य जी को बुलवाता हूँ और वे आपकी श्रेष्ठ चिकित्सा कर देगे। आप रोओ मत और फिक्र न करो। ऐसी कौनसी कष्ट की बात है जिसका निवारण मेरे राज्य मे सभव नहीं है ? तब सलखू बोली–एक बार ऐसा ही शूल मेरी ऑखो में पहले भी पैदा हुई थी तब एक पहुँचे हुए पुरुष ने एक

चिकित्सा बताई थी जिसके अनुसार कार्य करने से उस समय शूल शान्त हो गया था। तुम दोनो भाई–बहिन मेरी जो सेवा कर रहे हो उससे में पूरी तरह से सन्तुष्ट हूँ लेकिन ऑखो की इस वेदना को दूर करने के लिये अब मैं अपने घर पर ही जाना चाहूँगी। आनन्दसेन ने इस पर अनुरोध किया–मा जी, घर पर तो आप बताती हैं कि आप का पुत्र आपकी आज्ञा नही मानता है तो फिर आपकी समुचित चिकित्सा कौन करायेगा ? आप तो यही रहिये। जिस तरह की भी चिकित्सा आप चाहेगी, उसे मैं कराऊगा। आपकी हर तरह से मैं सेवा करने को तैयार हूँ, किन्तु मैं आप को यहा से जाने नही दूगा।

पूरी मान मनुहार कराने के बाद सलखू ने अपना तीर फैंका–अब तुक इतना आग्रह करते हो तो में यही रूक जाऊँगी, लेकिन मेरी औषधि से तुम सकट मे पड जाओगे, इसलिये अभी भी यही कहती हूँ कि तुम घर पर ही जाने दो। आनन्दसेन ने कहा–आप किसी तरह का सकोच मत करो और वह उपाय बताओ जिसकी मदद से आप की ऑखो का शूल शान्त हो जाये। मामले को पूरी ऊँचाई तक ले जाकर सलखू बोली–मेरी ऑखो के शूल को मिटाने के लिये जो चीज चाहिये, मैं नही समझ पा रही हूँ कि तुम कैसे ला पाओगे ? मुझे मेरी ऑखो के लिये शेरनी का दूध चाहिये। तुम दयालु राजा हो और तुमने अपने राज्य भर मे शिकार पर प्रतिबन्ध भी लगा रखा है, फिर तुम स्वय शेरनी का शिकार करके दूध कैसे प्राप्त कर सकते हो ? शेरनी को मार दोगे तो दूध नही मिलेगा और जिन्दा शेरनी का दूध लेने जाओगे तो वह तुम्हे मार देगी। इस कारण समस्या टेढी ही है। मेरा कहना तो यही है कि तुम मुझे यहाँ रूकने के लिए हठ मत करो।

आनन्दसेन ने भाव भक्तिपूर्वक ही उत्तर दिया–मॉ जी, आप चिन्ता न करे। मैं स्वय शेरनी का दूध लाने के लिये जाता हूँ। यह कह कर आनन्दसेन वहा से चल दिया। उसने जानकारो को पूछा कि शेर–शेरनी किस दिशा मे मिल सकेगे ? जानकारो ने जब यह सुना कि शेरनी के दूध की आख का शूल ठीक करने के लिए माग की गई है तो यह सरासर धोखा है और यह आपके दुश्मन की चाल है क्योकि शेरनी का दूध बिना अपनी जिन्दगी को जोखिम मे डाले भला कैसे मिल सकता है ? इसलिये अगर आपको जाना ही हो तो पूरा बन्दोबस्त साथ मे लेकर पधारे। आनन्दसेन ने उनकी सलाह सुनी और कुछ सैनिको को साथ मे लेकर जगल की तरफ आगे बढ गया। लेकिन योग ऐसा बना कि सैनिक तो पीछे ही रह गये और आनन्दसेन घने जगल मे पहुँच गया।

उस घने जगल मे सिह की गर्जनाएँ सुनाई दे रही थी। आनन्दसेन ने सोचा कि वाकई खतरा बहुत बडा है और वह एकाकी ही रह गया है। अत क्या किया जाये ? सबसे पहले एक स्वच्छ स्थान पर वह ध्यानस्थ होकर णवकार मन्त्र का तन्मयपूर्वक जाप करने लगा। जाप करते–करते जब उसके मन मे से भय पूरी तरह निकल गया तो वह सावधानीपूर्वक आगे बढने लगा। थोडी दूर चलने के बाद उसने झाडियो के झुरमुट मे दहाडती हुई एक सिहनी को देखा। उसे महसूस हुआ कि जैसे वह किसी पीडा से कराह रही हो। उसके मन मे निर्भीकता तो थी ही और तब करुणा–भाव भी जागृत हो गया। वह नि शक होकर आगे बढ चला और सिहनी के पास तक पहुँच गया। तब उसे दिखाई दिया कि शेरनी के पॉव मे एक बडा सा काटा चुभा हुआ है जिसके दर्द से वह बुरी तरह बैचेन हो रही शी। आनन्दसेन प्रसन्न मुख कहने लगा–अरे आप सिहनी क्या हो–मेरी मामीजी हो। मैं आपकी पीडा को समझ गया हूँ और आपका काटा निकालने के लिये ही आया हूँ।

शेर–शेरनी पचेन्द्रिय प्राणी होते हैं और बहुत कुछ समझ लेते हैं। एक अजनबी व्यक्ति सामने था फिर भी उसकी आकृति पर उभरे दयापूर्ण भावो से जैसे वह शेरनी प्रभावित हो गई और उसने आनन्दसेन के सामने अपना काटा चुभा पाव आगे फैला दिया। प्रेम और परवाह से जब आनन्दसेन ने काटे को निकाल दिया और शेरनी को तुरन्त राहत मिल गई तो वह अपना सिर उसके पावों में झुकाकर जैसे उस उपकारी के प्रति अपना आभार प्रकट करने लगी। शेर शेरनी और अन्य जगली जन्तु अपने ऊपर उपकार करने वाले के प्रति किसी भी सकेत से अपना आभार प्रकट करते हैं। वे उपकार करने वाले को अपनी ओर से कष्ट नहीं देते बल्कि जो हो सकता है उस प्रकार की सहायता भी समझ लेने के बाद करने से नहीं हिचकते।

आनन्दसेन अतीव हर्षित हुआ कि इस महामन्त्र का कैसा अपूर्व प्रभाव है। उस दृढ आस्था के साथ ही उसने सकेतपूर्वक शेरनी को यह समझाया कि उसको थोडे दूध की जरूरत है। बच्चे दूध घा ही रहे थे कि वह शरनी उठी खडी हुई कि वह चाहे जितना दूध ले ले। आनन्दसेन न तुरन्त अपन साथ लाये सोने के पात्र में शेरनी का दूध झेल लिया और झुककर शरनी क आभार को मानते हुए वह वापिस लौट चला।

णवकार मन्त्र का जाप करते हुए जब वह आगे वढने लगा तभी एक चमत्कार हुआ। शेरनी का एक बच्चा आनन्दसेन के घोड के साथ–साथ भागने लगा। आनन्दसेन ने सोचा कि कहीं उसके द्वारा दूध लाने के कारण

यह बच्चा असन्तुष्ट तो नही हो गया है ? फिर कही शेरनी भी कूपित नहीं हो जाये ? वह घोडे से उतर कर बच्चे को वापिस शेरनी के पास ले जाने की चेष्टा करने लगा, लेकिन बच्चा तो एक इन्च भी पीछे नही खिसका। तब उसने शेरनी की तरफ देखा—उसे लगा कि वह उसे बच्चे को साथ ले जाने का सकेत दे रही थी। उसने बच्चे को अपनी गोद मे उठा लिया और घोडे पर चढकर अपनी राजधानी की तरफ आगे बढ गया।

जब आनन्दसेन राजधानी मे पहुँचा तो सभी आश्चर्य चकित रह गये कि यह तरुण महाराजा कितना साहसी और शक्तिशाली है जो शेरनी का दूध लाने के साथ–साथ शेर के बच्चे को भी साथ ले आया है ? इस चमत्कार से सभी विस्मित हो गये ओर महाराजा की जय–जयकार करने लगे।

उधर सलखू नाइन की आखो मे असल मे तो कोई पीडा थी नही—उसे तो इस बहाने आनन्दसेन के जीवन को समाप्त करवाना था अत जब कोई देखता होता तो वेदना का नाटक कर लेती वरना मौज मस्ती से सोई रहती। जब स्वय आनन्दसेन शेरनी का दूध लेकर उसके सामने पहुँचा तो वह हतप्रभ हो गई। यह क्या हो गया ? आनन्दसेन जीवित बच गया और तिस पर शेरनी का दूध भी ले आया। अब वह चम्पानगरी मे जाकर ग्यारह रानियो को अपना मुह कैसे दिखा सकेगी ? उसकी आखो के आगे तब निराशा का असली अधेरा छा गया कि यह तो उसका तीसरा षड्यत्र भी विफल हो गया है। ऐसे भयकर स्थान से भी बचकर आ गया है तो अब इसके जीवन को किसी प्रकार की क्षति पहुँचाना सम्भव ही नही है। हताशा से उसका सम्पूर्ण तन–मन सन्न रह गया।

आनन्दसेन ने शेरनी के थोडे दूध को एक सोने की कटोरी मे लिवा कर सलखू के सामने प्रस्तुत किया कि वह उसे अपनी आखो मे आज ले। सलखू आखिर चालाकी मे बडी आगे बढी हुई थी। इतने से समय मे उसने एक दूसरा ही उपाय सोच लिया। नकली घबराहट दिखाते हुए वह हडबडा कर बोली—गजब हो गया। शूल के कष्ट के कारण मैं तुम्हे इस दूध के साथ उपयोग मे ली जाने वाली एक दूसरी चीज तो कहना ही भूल गई। अब एक चीज तो आ गई लेकिन दूसरी चीज बाकी रह गई। चम्पकमाला ने कहा—कोई बात नहीं, जो चीज बाकी रह गई है उसको अब बता दो। मेरे भैया हर तरह की चीज लाने मे पूर्णतया समर्थ हैं। वह ढोगी नाइन बोली—इस दूध मे मिलाने के लिये असली गरूड पक्षी की बीट भी चाहिये, लेकिन मैं अब तुम्हारे भैया

को फिर से खतरे की जगह पर जाने के लिए नहीं कहूगी। तब आनन्दसेन ने आगे बढ कर कहा—मॉजी आप चिन्ता न करे। आपके आराम के लिये मैं कैसा भी खतरा झेल लूँगा। आपके लिये गरूड की बीट भी लाकर रहूगा।

तब पक्षियो की जानकारी रखने वाले लोगो को बुलाया गया और उनसे असली गरूड के निवास स्थान आदि की जानकारी ली गई। उन लोगो ने बताया कि असली गरूड बहुत ही घने जगल मे रहता है और वह इतना खूँखार होता है कि दूर तक भी किसी को फटकने नही देता। हमारा तो खयाल है कि उसके पास पहुँचकर किसी का जीवित बचना और वापिस लौटकर आना सम्भव नहीं है। उन लोगो से आनन्दसेन ने यही कहा—आप लोगो की बात ठीक है किन्तु मुझे भी बीट लाना आवश्यक है अत अपने जीवन को खतरे मे डालकर भी वहॉ पर जाऊँगा। फिर आनन्दसेन उस जगल के बारे मे जानकार कई व्यक्तियो को साथ मे लेकर बताये गये मार्ग से उस घने जगल की तरफ चल दिया। चलते—चलते जगल की एक ऐसी हद आ गई जहॉ से आगे चलने मे साथ वाले शिकारियो ने अपनी असमर्थता जाहिर कर दी। फिर भी आनन्दसेन ने परवाह नहीं की और उन्हे वहीं छोडकर वह अकेला ही आगे बढ गया।

आनन्दसेन की महामत्र के प्रति अटूट आस्था थी अत सबसे पहले उसने उसका अति अतरगता से जाप किया और नवकार मत्र का शरण लिया। फिर वह निर्भीकता पूर्वक आगे बढने लगा। चलते—चलते जब सूर्यास्त होने लगा तो उसने रात एक वृक्ष की शाखा पर बैठ कर बिताई और सूर्योदय होने पर लक्ष्य की ओर प्रस्थान कर दिया।

दुनिया मे सभी तरह के व्यक्ति होते हैं। वृक्ष की एक ही टहनी पर फूल भी होते हैं तो काटें भी होते हैं। किन्तु फूल अपनी सुगन्ध फैला कर सबके मन को खुश करते हैं, वहॉ काटे किसी के गड गये तो उसको कठोर वेदना से रूला देते हैं। इसी रूप में ससार का स्वरूप सबके सामने है। एक व्यक्ति प्रयास करे तो वह फूल के समान बनकर परोपकार के कार्य कर सकता है वरना काटे की तरह अपने स्वार्थो के लिये दूसरो की पीडा पहुँचाकर कष्टकर होना तो लज्जाजनक है ही। सभी को चिन्तन करना चाहिये कि उसे फूल बनना चाहिये या काटा। यदि फूल बनना है तो वर्तमान जीवन को त्याग एव साधना के बल पर सम्भालना और सवारना होगा।

आनन्दसेन अपने आप मे आन्तरिक सम्पन्नता का अनुभव कर रहा था। वहॉ रिक्तता नही थी। उसके स्वभाव मे जोश था, होश था और थी निर्भयता, क्योकि महामत्र के प्रति अटूट निष्ठा होने के कारण उनके अन्त करण मे एक प्रकार की शक्ति उभरी हुई थी। वह शक्ति भावना रूप थी कि मैं मानव हूँ तथा मानवता की भावना के साथ सबकुछ करने में सक्षम हूँ। इसी भावना को लेकर गरूड की बींट लाने के लिये जगल की तरफ रवाना हो गया। जानकारो द्वारा बताये गये सकेतो के अनुसार वह आगे बढने लगा। दूर से उसको एक ऐसा वृक्ष दिखाई दिया जिस पर बहुत बडा घोसला पडा हुआ था। जानकारो ने बताया उसके अनुसार चिह उस घोसले पर दिखाई दे रहे थे। उसने सोचा कि यह घोसला गरूड पक्षी का ही होना चाहिये।

अभय सूत्र को थामे हुए निर्भीकता के साथ वह धीरे–धीरे आगे बढने लगा। ज्यो ही वह उस वृक्ष के पास पहुॅचा, उसने देखा कि एक काला सर्प वृक्ष के ऊपर चढ रहा था। उसका अनुमान पक्का हो गया कि सर्प ही गरूड के बच्चो को खाने के लिये चढता है अत यह अवश्य ही गरूड पक्षी का ही घोसला है। उसने घोडे को एक तरफ बाधा और सर्प को सिसकार कर वृक्ष से नीचे हटा दिया। नीचे गिरकर सर्प एक तरफ भाग गया। सर्प को हटा दिये जाने के कारण गरूड के बच्चों की रक्षा हो गई। वृक्ष की ऊपर की शाखा पर बैठा हुआ गरूड आनन्दसेन के इस कार्य को देख रहा था। वह मन ही मन उपकार मानने लगा कि इस व्यक्ति के प्रयास से उसके बच्चो की रक्षा हुई है।

गरूड पक्षियो का वह जोडा आनन्दसेन के उस रक्षा–कार्य से बहुत ही हर्षित हुआ। उस समय उसने ऐसी ध्वनि की जिससे आनन्दसेन को यह लगा कि वे उसका आभार मान रहे हैं। उस जोडे का सकेत यह भी था कि हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं ? आनन्दसेन ने उन पक्षियो के सकेत को समझ लिया और उचित अवसर देखकर बोला–यह तो मेरा कर्त्तव्य था सो मैंने किया। आपको यह कष्ट देना चाहता हू कि मैं आपकी कुछ बींट ले लूॅ। प्रसन्न होकर उन पक्षियो ने ही अपने पैरो से बीट नीचे सरकानी शुरू कर दी तथा अपने एक बच्चे को भी भेट मे दिया कि यह बडा होकर काम आयेगा।

वह गरूड के बच्चे और बीट को लेकर घोडे पर सवार हुआ तथा तेजी से चलता हुआ अपनी राजधानी पहुॅच गया। जनता अपने महाराजा के इस

दूसरे साहसिक कार्य को देखकर अतीव हर्षित हुई तथा जय–जयकार करने लगी। लेकिन अब सलखू नाइन अनजाने भय से बुरी तरह आतंकित हो उठी।

जो निष्कृटतम स्वभाव का व्यक्ति होता है, वह अपने दुष्कृत्य पर भी लज्जा का अनुभव नहीं करता है, क्योकि उसकी आत्मानुभूति मृत प्राय हो जाती है। सलखू ने षड्यत्र रचा और मान्य मेहमान बनकर अपने मेजवान को मारने के दो–दो बार किये दुष्ट प्रयासो में विफल हो गई, फिर भी उसका हृदय परिवर्तित नहीं हुआ। यह विचार नहीं उठा कि उसकी नीचता सारी सीमाएँ लाघकर असफल हो गई हें तो अब अपने मेजवान से माफी माग लेनी चाहिये अथवा कम से कम मन मे तो प्रायश्चित की भावना लानी चाहिये। जब आनन्दसेन गरूड की बींट लेकर सलखू के सामने पहुँचा ता वह भय से आतकित होकर भीतर ही भीतर बुरी तरह काप उठी, किन्तु जल्दी ही उसने अपने आप को सम्हाला और प्रकट रूप से आनन्दसेन के अपूर्व साहस की सराहना करने लगी। तब दिखाऊ रूप से उसने शेरनी के दूध में गरूड बींट घिसनी शुरू कर दी ताकि आनन्दसेन उसकी माग को वास्तविक ही माने।

दुष्ट न छोडे दुष्टता सज्जन तजे न प्रीत। उस समय सलखू की दुष्टता इसी तरह निर्लज्ज होकर कार्यरत थी।

सलखू कुछ दिनों तक बिल्कुल चुपचाप रही और दवा को आंखों में डालने का बहाना करती रही। चम्पकमाला के समक्ष वह आनन्दसेन की खूब प्रशसा करती रहती कि यदि वह इतने साहसपूर्ण कार्य करके दूध और बींट नहीं लाता तो उसकी आंखें निश्चित ही खराब हो जाती। उन दिनों में ऊपर से तो वह प्रशसा के गीत गाती रहती और भीतर ही भीतर कोई नया षड्यन्त्र सोचने लगी क्योंकि वह असफल होकर चम्पानगरी लौटना नहीं चाहती थी। वहाँ ग्यारह रानियों से वह [illegible] कर चुकी थी, अब खाली हाथ वहाँ जाना भी खतरे से खाली नहीं था। जुआरी जब लगातार भी हारता जाता है तब भी इस आशा में वह जुआ खेलना नहीं छोड़ता कि अगली बार अवश्य ही उसकी जीत होगी। इस कारण वह बड़ा-बड़ा दाव लगाता जाता है। जुआ खेलने की [illegible] है जिसमें [illegible] तक को बरबाद होते हुए देखा गया है। [illegible] उदाहरण हमारे सामने है।

जब स्व. [illegible]

था। एक दिन सुबह [illegible]

लेने का आग्रह किया। मैंने पूछा कि सुबह ही सुबह हलवा क्यो बनाया गया है तो उन्होने कहा कि मुझे शूगर की बीमारी है सो सुबह ही डॉक्टर इन्जेक्शन के बाद हलवा खाने को कह रखा है, इसलिये मेरे वास्ते रोजाना हलवा बनता हे। मैंने उस समय कुछ नही कहा और चला आया। लेकिन बाद मे सेठ साहब के हालात सुने तो मालूम हुआ कि वे जुए की लत मे गिरकर करोडो रुपयो की अपनी सम्पत्ति बरबाद कर चुके हैं। आज भी कई लोग ऐसे मिल जायेगे जो जुआ या सट्टा खेलते हैं। इस व्यसन के आप लोगो को त्याग ले लेने चाहिये।

बार–बार हारकर भी सलखू अपने दुष्ट विचार से पीछे नही हट रही थी। उसने फिर एक षड्यत्र रचा।

एक दिन वह चम्पकमाला के पास बैठी हुई थी तथा इधर–उधर की बाते कर रही थी। पहले तो उसने राजभवन की शोभा की सराहना की, फिर कहा कि यहाँ रहते हुए वह कितनी अधिक आनन्दित हो रही है। इसी सन्दर्भ मे उसने आनन्दसेन तथा चम्पकमाला की खूब प्रशसा की कि दोनो भाई–बहिन उसकी बहुत अच्छी तरह सेवा कर रहे हैं। इस तरह मीठी–मीठी बाते बनाते हुए वह बोली–आप दोनो ने मेरे प्रति इतना प्रेम दिखाया है कि मैं फूली नही समाती हूँ। लेकिन इतना होने पर भी मेरे मन मे एक बात बहुत ज्यादा खटक रही है जो मैं सोच रही हूँ कि तुम्हारे सामने उसे कहू या नही कहू। चम्पकमाला तो भद्रिक स्वभावी थी, कहने लगी–इसमे किसी तरह का सकोच मत करो–जो भी आपकी इच्छा हो खुलकर कह दो। तब सलखू बोली–इतने बडे राजभवन मे तरह–तरह की बाल लीलाएँ करते हुए बच्चे–बच्ची नही हो तो यह बडा अखरता है। यो कहना चाहिये कि राजभवन की शोभा इस तरह से अधूरी ही है। आनन्दसेन अब तरुणाई मे पहुँच गया है लेकिन फिर भी विवाह नही कर रहा है–उचित नहीं है। वह विवाह करले तो राजभवन मे महारानी भी आवे और धीरे–धीरे बाल–बच्चो की किलकारियाँ भी गूँजे। चम्पकमाला ने कहा–मेरे भैया बहुत ही धार्मिक वृत्ति वाले हैं तथा उनका अपने मन पर नियन्त्रण सधा हुआ है। वे अभी विवाह जैसी बात मे पडना नही चाहते हैं ताकि जनता की पूरी शक्ति से सेवा कर सके। फिर उनके योग्य कन्या भी अभी दृष्टि मे नही है।

बस सलखू ने निशाना लगा दिया–आपने खोज पूरी नही की होगी। मेरी नजर मे आनन्दसेन के लायक सुयोग्य एक कन्या है। उसका नाम

शीलावती है तथा जेसा उसका नाम है वैसी ही वह सर्वगुण सम्पन्ना भी है। बहुत से राजाओ ने उसके साथ विवाह करने के प्रयत्न किये लेकिन वह कन्या जो भी उसे वरने की इच्छा लेकर आता है उससे उसका जीवन–वृत्तान्त सुनती है। किसी के जीवन मे किसी प्रकार का दुर्गुण दिखाई दे या उसके होने की आशका भी हो जाय तो वह उस पात्र को अस्वीकार कर देती है। प्रयत्न अनेकानेक राजा लोग उसे प्राप्त करने के करते रहे हैं किन्तु अभी तक किसी को भी सफलता नहीं मिली है। मैं सोचती हूँ कि वह कन्या आनन्दसेन के लिये सर्वथा उपयुक्त है तथा अपने साहस से वह उसे प्राप्त भी कर सकता है।

चम्पकमाला की जिज्ञासा जाग उठी, उसने पूछा–वह कन्या किस राजा की राजकुमारी है तथा कहॉ पर रहती है ? सलखू ने कहा–वह अद्वितीय कन्या वर्तमान मे यहॉ से सौ कोस दूर रहती है, जिस तक पहुँचने के लिये एक बियावान जगल पार करना पडता है आनन्दसेन जब इतना साहसी है तो उसे वहाँ तक पहुँचने मे कोई खास कठिनाई नहीं आवेगी। मैं तो सोचती हूँ कि वह कन्या अवश्य ही आनन्दसेन को वरण कर लेगी। जहाँ तक साहसिकता का प्रश्न था, चम्पकमाला को पूरा विश्वास था कि आनन्दसेन अवश्य ही सफल बनेगा। किन्तु सलखू ने सारा वर्णन इस चतुराई से किया कि चम्पकमाला के मस्तिष्क मे यह बात अच्छी तरह बैठ गई।

ज्यों ही आनन्दसेन आया, चम्पकमाला ने यह प्रस्ताव उसके सामने रखा और कहा–भैया, यदि योग्य कन्या मिल रही है तो आपको भी विवाह के लिये तैयार हो जाना चाहिये। उसने उत्तर दिया–बहिन तू बहुत ही भद्रिक है। राजाओ की यह परम्परा होती है कि उनका सबसे बडा पुत्र ही उस राज्य का उत्तराधिकारी बनता है, किन्तु मैं इस राज–परम्परा को समाप्त कर देना चाहता हू। मेरे हृदय में यह भावना है कि राजतन्त्र की समाप्ति होकर उसके स्थान पर मैं जनतत्रीय पद्धति लाऊ। मैं सोचता हूँ कि नागरिको मे से ही जो सर्वाधिक सुयोग्य एव सद्गुणी दिखाई दे, उसका राज्य के उत्तराधिकारी के रूप मे चुनाव करा लिया जाये। इस कारण मैं विवाह करने का इच्छुक ही नहीं हूँ।

चम्पकमाला ने समझाया–भैया यह सलखू भुवाजी कहती है कि वह ऐसी अद्वितीय कन्या है जो कई राजाओ को अस्वीकार कर चुकी है, उसके लिये तुम ही योग्य हो। जब तुम्हारा प्रभाव चारो ओर के राज्यो मे इतना फैला

हुआ कि वहाँ के राजा लोग तुम्हारे से भय खाते हैं तो ऐसे राज्य के प्रभाव को यथावत् रखने का ही प्रयास किया जाना चाहिये। तुम यदि उस कन्या का वरण करने का साहसिक कार्य पूरा कर लोगे तो तुम्हारा प्रभाव और अधिक बढ जायेगा। आनन्दसेन ने समझाया—बहिन, इस प्रभाव का लाभ राजपरिवार को ही नही, समस्त जनता को मिलना चाहिये और ऐसा तभी हो सकता है जब राजा का बेटा ही राजा न बने बल्कि जनता मे से ही कोई सुयोग्य नागरिक इस पद को सुशोभित करे। चूँकि वह निर्वाचित होकर आयेगा, अत वह अपना ध्यान जन सेवा की दिशा मे ही प्रधान रूप से केन्द्रित करके रहेगा। सत्य तो यह है कि दृष्टि बदले तो सृष्टि बदल जाये। चाहे व्यक्तिगत जीवन हो अथवा सामूहिक जीवन—नई दृष्टि नया परिवर्तन लाती ही है। यह मेरी नई दृष्टि है कि राजतन्त्र के स्थान पर जनतन्त्र लाया जाये तो तुम निश्चय मानो कि इस दृष्टि को कार्यान्वित कर देने पर नई सृष्टि अवश्य ही उभर कर आयेगी।

चम्पकमाला ने पुन आग्रह किया—यह परिवर्तन की बात तुम जानो लेकिन इस कन्या का वरण करने मे अपनी शक्ति का परिचय देने की जो बात है, उसमे तुम्हे पीछे नही रहना चाहिये। आनन्दसेन ने उत्साहित होकर कहा—अगर शक्ति का परिचय देने की ही मुख्य बात है तो मैं तैयार हूँ।



17

साहसी व्यक्ति दुर्लभ वस्तु को प्राप्त करने की कामना करते हैं। वे साहस की परीक्षा से प्रसन्न होते हैं और कठिनाईयो की कसौटी पर अपने साहस को चढाकर उसे सफल बना देते हैं। सलखू नाइन के मन मे तो कठोर दुर्भावना बनी हुई थी कि किसी भी प्रकार से महाराजा आनन्दसेन के प्राणो का हरण हो जाये। उसी दुर्भावना से उसने चम्पकमाला को सुझाव दिया कि आप के भाई साहब के लिये शीलावती की जोडी ही श्रेष्ठ रहेगी जो अद्भूत सुन्दरी है। सारा विवरण सुनकर चम्पकमाला ने भी आनन्दसेन को आग्रह किया कि वह शीलावती को ही प्राप्त करके उसे अपनी महारानी बनावे। आनन्दसेन इस तथ्य से अधिक प्रभावित हुआ कि शीलावती दुर्लभ है इसलिये उसे प्राप्त करने मे उसके साहस को कठिन परीक्षा से गुजरना पडेगा। फिर सर्व गुण सम्पन्न पत्नि की प्राप्ति भी स्वयमेव मे एक विशिष्ट उपलब्धि रहेगी।

शीलावती को प्राप्त करने का निश्चय करके महाराजा ने अपने जानकार मन्त्रियों आदि को बुलाया तथा उन्हे अपना उद्देश्य बताया। आनन्दसेन ने कहा–हमने यह निश्चय किया है कि हम शीलावती के साथ ही विवाह करेगे और उसके लिये कल ही प्रस्थान कर देना है। मार्ग की विकट परिस्थितियो को देखते हुए हमे साथ मे सेना भी ले जानी होगी।

आनन्दसेन का निश्चय सुनकर मन्त्री आश्चर्य मे डूब गये और कहने लगे–महाराजा, जिस किसी ने आपको शीलावती से विवाह करने का सुझाव दिया है, वह अवश्य ही आपके प्राणो का शत्रु है। क्योकि आज तक अनेक वीर उसे प्राप्त करने के लिये गये लेकिन कोई वापिस नहीं लौटा। वह बडी मन्त्रवादिनी है और अपने मन्त्र बल से सबको पराजित कर देती है। इस कारण हमारा निवेदन है कि आप शीलावती का खयाल छोड दीजिये। उस से भी अधिक सुन्दर कन्याएँ हमारे ध्यान मे हैं और उनमें से जिसे भी आप पसन्द करे, उसके साथ आपके विवाह की व्यवस्था का जिम्मा हम लेते हैं।

आनन्दसेन ने उत्तर दिया–विवाह अवश्य महत्त्वपूर्ण होता है किन्तु उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह होती है कि जिसे सामान्य लोग प्राप्त नहीं कर सकते, उसे एक साहसी व्यक्ति अपने साहस के सम्बल पर प्राप्त करके दिखावे। इस रूप मे मैं भी अपने साहस की परीक्षा करना चाहता हूँ और जो काम आज तक अनेकानेक वीर पुरुष नहीं कर सके। उसे मैं अपने साहस को सफल बना करके पूरा कर दिखाना चाहता हूँ। कठिन कार्य को

सम्पन्न करले—इसी मे साहसी व्यक्ति की सफलता मानी जाती है। इसलिये सारे सकटो के बावजूद कल मैं अवश्यमेव प्रस्थान करूगा और शीलावती के साथ विवाह करके बता दूँगा कि मेरा साहस कही भी विफल होना नहीं जानता। अत आप लोग प्रस्थान के लिये सारी तैयारियाँ जल्दी पूरी कर लीजिये।

यह तो महाराजा का आदेश था अत मन्त्री गण विवश हो गये। तब मत्रियो ने महाराजा को बताया—राजन्, शीलावती का निवास स्थान यहाँ से बहुत ही दूर है। हमे पूर्व दिशा मे आगे से आगे बढते रहना होगा। मार्ग मे बहुत ही विकट अटवी पडती है, जिस मे भाति—भाति के खतरे सामने उपस्थित होगे। उसे पार कर लेने के बाद बडा ही रमणीय स्थान आवेगा—ऐसा रमणीय स्थान, जहाँ चारो ओर हरे—भरे वृक्ष, फूल वाली झाडियाँ और कल—कल करते हुए झरने दिखाई देगे। वहाँ के वातावरण मे फूलो की सुवास बिखरी हुई मिलेगी। सभी ऋतुओ मे प्राप्त होने वाले फल वहा सदैव उपलब्ध रहेगे। ऐसे रमणीय क्षेत्र के किनारे पर एक बहुत ही कलात्मक ढग से बनी हुई बावडी दिखाई देगी। उस बावडी पर ही खडे होकर शीलावती को आवाज लगानी होगी। अगर आवाज लगाने से वह बाहर आ जायेगी, तब तो अपना काम बन जायेगा लेकिन अगर तीन बार आवाजे लगाने के बाद भी वह बाहर नही आई तो बडी कठिन परिस्थिति का सामना करना पडेगा जिसका सामना करना शायद साहस से भी परे की बात हो।

सारी जानकारी लेने के बावजूद आनन्दसेन की इच्छा शक्ति कही से भी कमजोर नहीं हुई और उसने तैयारियाँ शीघ्र पूरी कर लेने पर ही बल दिया। अतन्त मन्त्रियो के सामने कोई चारा नही रहा और उन्होने सुरक्षा आदि की दृष्टि से सभी प्रकार की तैयारियाँ यथा समय पूरी कर ली।

दूसरे दिन दल—बल सहित आनन्दसेन अपने गन्तव्य की दिशा मे रवाना हुआ। आनन्दसेन के मन मे अपूर्व उत्साह था। उस के दो कारण थे। एक तो वह अपने अजेय साहस को आजमाना चाहता था और यह दिखा देना चाहता था कि उसका साहस सदा अजेय ही रहेगा। दूसरे, वह यह सोचता था कि विवाहोपरान्त पुत्र की उत्त्पत्ति के पश्चात् यथा समय वह अपनी राज्य व्यवस्था का भार उसे सम्हलाकर आत्म कल्याण के मार्ग पर आगे बढ सकता है। तब वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति साधु धर्म की साधना मे लगा सकेगा। वैसे उस समय वह युवक था किन्तु फिर भी वासना के अन्धड उसके यौवन को

परास्त नहीं कर पाये थे। वह सम्पूर्ण निष्ठा एव श्रम से राज्य व्यवस्था मे लगा रहता था और जनता को सर्वत सुखी बनाने के उद्देश्य से विविध प्रवृत्तिया सचालित करता था। मन मे रहे हुए अपने दोनो लक्ष्यो के कारण ही पूर्व दिशा मे आगे से आगे बढते हुए महाराजा आनन्दसेन का हृदय आन्तरिक आनन्द सरोवर मे हिलोरे ले रहा था।

शीलावती की गुणसम्पन्नता का जो विवरण आनन्दसेन ने सुना था उससे भी उसका हृदय आनन्दित था कि यदि ऐसी पत्नि प्राप्त होती है तो उसके साथ से समग्र जीवन का भी यथोचित विकास हो सकेगा। कठिनाई उसे प्राप्त करने की है जिसे यदि वह जीत लेता है तो उसके बाद सब तरह से आनन्द ही आनन्द बरतेगा।

मार्ग में आने वाली विविध विपदाओ को सहन करते हुए आनन्दसेन और उसका दल निरन्तर आगे बढता रहा। अटवी के खतरो को भी उसने झेला और रमणीय क्षेत्र मे प्रवेश कर गया। वहॉ चलते हुए कुछ ही समय बाद उनकी नजर उस बावडी पर पडी। आनन्दसेन, मन्त्री और सभी सैनिक बावडी तक पहुँचे। सलखू नाइन द्वारा दिये गये निर्देश के अनुसार आनन्दसेन ने अपने सैनिको से कहा–आप सभी तैयार रहे, क्योकि कोई खतरा सामने आवे तो उसका मुकाबला करना पडेगा। अब मैं बावडी की पाज पर चढकर शीलावती को आवाज लगाता हूँ। इतना कहकर आनन्दसेन उस बावडी की पाज पर चढ गया।

आनन्दसेन ने तब तेज आवाज लगाई–ओ शीलावती, तुम तुरन्त बार आ जाओ। मैं तुम से विवाह करने का निश्चय करके ही यहॉ पहुँचा हूँ।

शीलावती की मन्त्रवादिता यह थी कि ज्यो ही कोई वीर विवाह का प्रस्ताव लेकर इस बावडी तक पहुँचता और उसे बाहर निकल कर आने के लिये आवाज लगाता तो पहली आवाज के बाद ही वह और उसके सभी सगी साथी घुटनो तक पत्थर के हो जाते। और फिर जब दूसरी आवाज भी निष्फल चली जाती तब वे सभी कमर तक पत्थर के बन जाते। इसी प्रकार तीसरी आवाज के बाद भी शीलावती बाहर निकल कर नही आती तथा वे सभी आगत व्यक्ति कठ तक पत्थर के हो जाते, जिससे सास तक लेना उनके लिये कठिन हो जाता। किसी तरह के मुकाबिला करना तो उनके वश मे रहता ही नहीं। तब उन्हे अपनी भूल मालूम होती और वे पछताते कि उन्होने ऐसा दुस्साहस व्यर्थ ही किया।

आनन्दसेन की पहली आवाज निष्फल गई और वह अपने सभी साथियो सहित घुटनो तक पत्थर का हो गया। फिर भी उसने साहस को नही छोडा—आखिर अपने अदम्य साहस के बल पर ही तो वह वहाँ तक पहुँचा था। उसने कडक कर दूसरी बार आवाज लगाई जिसका फल यह हुआ कि वे सभी कमर तक पत्थर के बन गये। फिर भी आनन्दसेन भयभीत नही हुआ और उसने तीसरी बार भी गर्जना करते हुए आवाज लगा ही दी। तब तो सभी कठ तक पत्थर के हो गये। सास तक रुकने लगी, तब आनन्दसेन के मन मे पश्चाताप का विचार जगा कि उसने अपने मन्त्रियो की चेतावनी को क्यो नही मानी ? उसे यह भी अनुभव हुआ कि वास्तव मे सलखू नाइन ने उसे समाप्त करने का ही षड्यन्त्र रचा है। यहाँ तो अब साहस के प्रयोग का ही अवसर कहा बचा है? अपनी प्रतिष्ठा तो धूल मे मिलेगी सो मिलेगी ही, लेकिन अब तो प्राणो के भी लाले पड गये हैं। घातक विपत्ति के उस दौर मे आनन्दसेन अपने गुरु का नाम स्मरण भी भूल गया।

उसी समय मे अपने आश्रम मे ब्रह्मानन्द योगी जो श्रेष्ठ श्रावक का जीवन व्यतीत करते थे, ध्यान मुद्रा मे बैठे हुये थे। उनकी ध्यानमग्नता अचानक आनन्दसेन के उस कारुणिक दृश्य पर केन्द्रित हो गई। उन्होने अपनी ज्ञान दृष्टि मे जो कुछ देखा, वे स्तब्ध रह गये। उनका प्रिय शिष्य सकट की घडियॉ गिन रहा है और निरुपाय खडा है। वे उस क्षण वैक्रिय लब्धि का प्रयोग कर आनन्दसेन के पास पहुँच गये लेकिन अदृश्य रहे। आनन्दसेन ने महसूस किया कि उसके गाल पर किसी ने जोरदार तमाचा लगाया है और फटकारती हुई आवाज आई कि नवकार मन्त्र का जाप कर तथा गुरु का नाम सुमर।

आनन्दसेन ने जब यह आवाज भी साफ–साफ सुनी कि पुकार शीलावती को यह कहकर कि गुरु का आदेश है, बाहर आजा, तब उसकी चेतना लौटी। गुरु की आवाज प्रत्यक्ष सुनकर उसका मन ग्लानि से भर उठा कि ऐसे सकट काल मे वह अपने श्रद्धेय गुरु ब्रह्मानन्द योगी को कैसे भूल गया ? उसने उसके बाद एक पल भी बरबाद नही किया और नवकार मन्त्र तथा गुरु नाम का जाप करके जोर से आवाज दी–ओ शीलावती, गुरु का आदेश है कि बाहर आ जा।

इसी पहली आवाज के साथ भीतर बैठी शीलावती चौंक उठी। अरे यह भी उसी गुरु का शिष्य हे जिसकी वह शिष्या है। उसका मन्त्र ढीला हो

गया। तब पत्थरपने का असर आनन्दसेन सहित सभी लोगो के कठ से उतर कर कमर तक आ गया। ज्योही गुरु के आदेश की दूसरी आवाज आनन्दसेन ने लगाई कि कमर से घुटनो तक असर उतर आया और आनन्दसेन की तीसरी पुकार ने तो पत्थरपने के प्रभाव से सबको पूर्ण मुक्त कर दिया किन्तु दूसरी ओर शीलावती को भयाक्रान्त बना दिया कि उसका सारा मन्त्र–प्रभाव यों कैसे लुप्त हो गया है ? आनन्दसेन के आनन्द का पार नहीं था कि उसकी डूबती हुई किश्ती को गुरु ने बचा ली है।

कभी हार न मानने वाली शीलावती के सामने जब हार इस रूप मे आकर खडी हो गई तो वह क्षुब्ध होकर अपने मन्त्र बल से ब्रह्मानन्द योगी के पास पहुँच गई और बोली–गुरुदेव मैंने आपसे ही मन्त्र विद्या सीखी है और यह कौन युवक है जो मुझे इरादे से डिगाने की सफल कोशिश कर रहा है वह भी आपके ही नाम पर ? मैं महल से बाहर उस युवक के सामने नही जाना चाहती हूँ। आपके नाम प्रभाव से ही मेरा मन्त्र बल प्रभावहीन हो गया है, वरना मैं उस युवक को भी पहले आये वीरो की ही पक्ति मे खडा कर रही थी। अब आप ही बताइये कि मैं क्या करू ?

ब्रह्मानन्द योगी ने समझाने के स्वर मे कहा–शीलावती, मैंने तुझे मन्त्र विद्या इसलिये सिखाई थी कि तुम दुनियॉ मे लोगो की भलाई करती, किन्तु तुमने तो उल्टा काम कर लिया। उसी मन्त्र विद्या से तुम अभिमान की चोटी पर चढ गई और आने वाले वीर पुरुषो को पत्थर की मूर्ति बनाने लग गई। तुम भी मेरी शिष्या हो और अभी आया हुआ युवक आनन्दसेन भी मेरा शिष्य है। उसकी जीवन रक्षा मेरा कर्त्तव्य था तो तुम्हे अभिमान की बुराई से हटाना भी मेरा कर्त्तव्य है। तुम अपने स्थान को लौट जाओ और अपनी रीति नीति मे सुधार कर लो। उस अभिमानिनी को उस समय गुरु को श्रेष्ठ उपदेश भी भाया नहीं और वह निराश सी अपने महल मे लौट आई। महल मे उसे ऐसा अनुभव हुआ कि बाहर खडे युवक आनन्दसेन की उसको पुकारने की आवाज इस तरह गूज रही है कि उसका वहॉ ठहर पाना सभव नहीं रहा।

क्रोध मे पैर पटकती हुई शीलावती तब बाहर निकल आई और आनन्दसेन के सामने आकर खडी हो गई। उसने तीखी नजर से आनन्दसेन को देखा और बोली– बाहर निकल आने के लिये मुझे क्यो पुकार रहे हो ? मेरे से क्या कार्य है तुम्हारा ? समझते नहीं हो कि मेरे पास कितनी शक्ति है ? शक्ति का एक बार चमत्कार देखकर भी अपने जीवन के खतरे को क्या

समझ नही पाये हो ? यह तुम्हारा व्यवहार न तो तुम्हारे जीवन हित मे रहेगा, न ही सुखकारी। इसलिये अब भी चेत जाओ और वापिस लौट जाओ।

आनन्दसेन तो तब आनन्दित भाव मे विचर रहा था, मुस्कुराते हुए कहने लगा—ओ, शीलावती, क्या अब भी तुम्हारा अभिमान समाप्त नही हुआ है ? मैंने तुम्हे पुकारा है तो मेरे गुरु ब्रह्मानन्द योगी की आज्ञा से और वे गुरु मेरे परम रक्षक हैं। उन्होने ही मेरी प्रारम्भ मे भी जीवन रक्षा की थी, मेरा पालन पोषण किया और उनकी ही आज्ञा से मैं महाराजा बना हूँ। क्या तुम मेरे गुरु की तेजस्विता को जानती नही हो ? वे चाहे, तो पल भर मे तुम्हे ठिकाने लगा सकते हैं। किन्तु वे परम दयावान हैं। उनके नाम पर तुम्हे अपना जीवन सुधार लेना चाहिये। मैं भी तुम्हारा शत्रु नही हूँ। तुम अपने अभिमान को छोडो और तब देखो कि तुम्हारा जीवन कितना सरल और सुखी बन सकता है ? यही अभिमान तुम्हारे जीवन को पूर्णतया नष्ट किये बिना छोडेगा नही, अत इसी मे तुम्हारा हित रहा हुआ है कि तुम्ही इस दुष्ट अभिमान को छोड दो।

मन्त्र विद्या की शक्तियो से तनी हुई शीलावती जब गुरु के उपदेश को भी तुरन्त पकड नहीं सकी तो भला वह आनन्दसेन की इन बातो को सहज भाव से कैसे ग्रहण कर लेती ? उसने कडकती हुई आवाज मे कहा—ओ युवक बढ—बढ कर बाते करने की जरूरत नही। मेरी मन्त्र शक्ति का अभी तक तो तुमने एक ही चमत्कार देखा है लेकिन अब तुम्हे ऐसे चमत्कार दिखलाऊँगी तुम अपना यह सब उपदेश भूल जाओगे। लो, तो अब सावधान हो जाओ और मेरे से टकराने का फल भुगतो।

हसते हुए आनन्दसेन ने इतना ही कहा शीलावती, अभी तुम्हारा अभिमान मरा नहीं है और न तुम उसे मारने की कोशिश करना चाहती हो लेकिन तुम मेरा कुछ भी नही बिगाड सकोगी। गुरु का नाम ही तुम्हे सबक सिखायगा और तुम्हारे अभिमान को मारेगा। जो कुछ मन मे हो, कर डालो और तुम्हीं गुरु के प्रभाव का अच्छी तरह अनुभव कर लो।

शीलावती पर इस कथन का भी कोई असर नहीं हुआ और वह एक के बाद दूसरे मन्त्र का प्रयोग आनन्दसेन पर करने लगी। आनन्दसेन तो मात्र गुरु के नाम का एकचित स्मरण करता रहा। शीलावती अपने सारे मन्त्रो का प्रयोग करते—करते थक गई लेकिन किसी भी मन्त्र का कोई प्रभाव प्रकट नहीं हो रहा था। जब वह थक गई तो उसने अपनी हार मान ली। उसने हार मान ली यानि कि उसके अभिमान ने हार मान ली। अभिमान टूटा तो उसकी

भावना जुड गई एक ओर गुरु के प्रति उसकी आस्था बलवती बन गई तो दूसरी ओर उस आगत युवक के प्रति वह समर्पित सी हो गई जो गुरु प्रभाव से उस मन्त्रवादिनी के समक्ष अपराजेय बना खडा था।

आनन्दसेन ने अपने पैरो पर झुकी आई शीलावती को थाम लिया। शीलावती की ऑखो से पश्चात्ताप के आसू झर रहे थे और वह कहती जा रही थी—गुरु नाम सबसे बडा होता है। मत्र बल के अभिमान मे मैं उन गुरु को ही भूल गई जिन्होने मुझे यह विद्या दी और उनकी ही मैं अवज्ञा कर बैठी। मैं आपको अपना उपकारी मानती हूँ कि आपने गुरु नाम स्मरण करके मेरे कुत्सित अभिमान पर चोट की और उसे तोड डाला। इस तरह आपने मेरा उद्धार करके मुझे नया जीवन दिया है। इस नये जीवन का स्वामी अब आपके सिवाय अन्य कौन हो सकता है ? किन्तु सबसे पहले आप मुझे क्षमा प्रदान कीजिये। मैं लज्जित हूँ।

शीलावती का आश्वस्त करके आनन्दसेन बोला शीलावती, आखिर तुमने अपने अभिमान को मार दिया तो तुम जी उठी हो— इसकी मुझे बहुत खुशी है। तुम्हे मैं क्षमा करू—ऐसी कोई बात नहीं है। सच्ची क्षमा तो तुम्हे अपने दोनों के गुरुदेव ही प्रदान करेगे। तत्काल तो मैं तुम्हे एक ही निवेदन करना चाहता हू कि चारों ओर ये जो पत्थर की मूर्तिया खडी हैं, इनमे पुन जीवन भर दो क्योकि ये सब तुम्हारे मिथ्या अभिमान के नाम पर कलक रूप हैं। शीलावती ने तुरन्त अपने मत्र बल से उन सभी पत्थर की मूर्तियो को यथारूप जीवित बना दी। वहा देखते—देखते हजारो की सख्या मे वीर पुरुष और सैनिक चलने फिरने लगे। एक मेला सा मच गया और उस वीरान जगल मे आनन्दसेन के साहसिक प्रयोग से मगल का वातावरण छा गया। चारो ओर जय—जयकार की आवाजे गूँजने लगी।

तब शीलावती को लगने लगा कि उसके मत्रो का चमत्कार तो कुछ नहीं था, आनन्दसेन के व्यक्तित्व का चमत्कार तो अनुपम है। उसे समझ मे आने लगा कि चमत्कार वह नहीं होता जो मनुष्यो को कष्टो मे धकेल दे बल्कि सही चमत्कार वह होता है जो मनुष्यो को उनके कष्टो से उबार दे। चमत्कार वह नही था कि उसने जीते—जागते इन्सानो को पत्थर बना दिये। वास्तव मे चमत्कार यह है कि पत्थर की मूर्तियॉ पुन हसती खेलती सजीव प्रतिमाएँ बन गई हैं। गुरुदेव ने ठीक ही कहा था कि मत्र विद्या का सत्प्रयोग मनुष्यो के हित मे ही होना चाहिये। एक तरह से उसने अपनी मत्र विद्या का

दुरुपयोग किया, जिसके लिये उसने अपने आपको लज्जित और ग्लानिग्रस्त अनुभव किया। लज्जा और ग्लानि के इसी अधकार मे उसे आनन्दसेन का व्यक्तित्व एक चमकता हुआ प्रकाश स्तम्भ दिखाई दिया। इस दृष्टि ने उस समय उसके मन मे एक आकाक्षा को जन्म दिया कि काश, यह प्रकाश स्तम्भ सदा सदा के लिये उसके जीवन को आलोकित करता रहे—उसे आत्म विकास का मार्ग दिखाता रहे।

शीलावती के माता–पिता को जब ज्ञात हुआ कि शीलावती और आनन्दसेन परस्पर विवाह सूत्र मे बधने को इच्छुक हैं तो उन्होने अतीव हर्ष के साथ अपनी अनुमति दे दी। वे तो हर्ष और गौरव से अभिभूत हो गये कि उनकी हठी बेटी सुधर गई है और उन्हे आनन्दपुर के महाराजा आनन्दसेन जैसा वीर पुरुष जमाता के रूप मे प्राप्त हो रहा है। तभी शुभ मुहुर्त मे दोनो का विवाह सस्कार सम्पन्न करा दिया गया। पत्थर की मूर्तियो से पुन जीवन पाये हजारो व्यक्ति इस विवाह सस्कार मे सच्ची खुशी के साथ सम्मिलित हुए।

उधर आनन्दपुर मे जब यह उडती हुई खबर पहुँची कि आनन्दसेन और शीलावती का विवाह सम्पन्न हो गया है तो सलखू नाइन के पैरो तले की जमीन खिसक गई। उसका दुष्ट इरादा तो पूरा नही हुआ किन्तु अब तो उसकी जीवन रक्षा की सम्भावना ही नही रही थी। वह यह सोचकर ही काप उठी। दूसरो का अहित करने मे दुष्टो की हिम्मत बहुत होती है लेकिन अपने अहित की जब आशका खडी हो जाती है तब उनकी हिम्मत पूरी तरह से छूट जाती है। सलखू को तब यही चिन्ता लग गई कि वह अपनी जिन्दगी किस तरह बचावे ? आखिर उसने आनन्दपुर से चुपचाप भाग जाने का ही तय किया। वह रातो–रात वहॉ से भाग कर चम्पानगरी पहुँच गई।

इधर नव दम्पत्ति हजारो लोगो की जय जयकार के साथ आनन्दपुर पहुँचे। आनन्दपुर के सभी नर नारी हार्दिक प्रसन्नता से परिपूरित हो गये कि अब उनको अपने वीर महाराजा के साथ सर्वगुणसम्पन्ना महारानी भी प्राप्त हो गई ह। सम्पूर्ण नगर मे मनाये जाने वाले उत्सवो का अवलोकन करते हुए जब महाराजा आनन्दसेन और महारानी शीलावती राजमहल मे पहुँचे तो आनन्दसेन ने सबसे पहले अपनी पत्नी से अपनी बहिन चम्पकमाला का परिचय कराया और उसकी विशेषताओ का उल्लेख किया। शीलावती भी प्रेमपूर्वक चम्पकमाला स गले मिली और उसके आशीर्वाद की कामना की।

आनन्दसेन को तब सलखू का ध्यान आया और उसने अनुचरो से पूछा कि उसके गुरुदेव की बहिन सलखू नही दिखाई दे रही है। गुरुदेव की बहिन का उल्लेख सुनकर शीलावती चौंकी, क्योकि वह जानती थी कि योगी ब्रह्मानन्द के कोई बहिन नहीं थी। तब शीलावती ने कहा–स्वामी, अपने गुरुदेव के तो कोई बहिन नही है। यह सलखू का आप जो उल्लेख कर रहे हैं, वह वास्तव मे कोई शत्रु नारी होनी चाहिये जो आपके जीवन के विरुद्ध षडयन्त्र करने के दुष्ट निश्चय से यहाँ आई होगी, उससे अब आप सावधान ही रहे। तभी अनुचर पता लगा कर आये और बोले–राजन्, सलखू तो अपने स्थान पर नहीं मिली है। सैनिको का अनुमान है कि वह रातोरात शायद यहाँ से भाग निकली है। यह सुनकर सबने राहत की सास ली।

शीलावती ने उस समय अपने पतिदेव से निवेदन किया– स्वामी आपकी जीवन रक्षा की बात सर्वोपरि है। मेरी मत्र शक्ति उसके लिये सदा तत्पर रहेगी। कृपा करके आप मुझे बिना बताये न तो कहीं भी भोजन ग्रहण करे तथा न किसी अपरिचित स्थान पर पधारे। इतनी गम्भीर बात सुनकर भी आनन्दसेन हस पडा और विनोदी स्वर मे बोला–शीलावती, मैं तुम्हारा पति हूँ। क्या मैं तुम्हारा अनुचर बनकर रहूगा ? तुम निश्चिन्त रहो, मुझे अपने साहस पर पूरा–पूरा भरोसा है। मत्र विफल हो सकता है, साहस नहीं। मेरी जीवन रक्षा की क्या, तुम अपनी जीवन रक्षा की चिन्ता भी मुझ पर ही छोड दो। गुरुदेव ने मुझे भी आत्म विकास की कई विद्याएँ सिखाई हैं और उनके बल पर मैं अपने कर्त्तव्यो का शुभ भावो के साथ पूर्णतया निर्वाह करने मे सक्षम हूँ। तब शीलावती अपने पति के समक्ष नत मस्तक हो गई।

इस प्रकार आनन्दपुर के राज परिवार मे एक नये युग का सूत्रपात हुआ। शीलावती ने अपने सद्‌गुणमय व्यवहार से न सिर्फ पति के मन को ही जीत लिया, बल्कि चम्पकमाला भी पूरी तरह से अपनी भाभी पर रीझ गई। यही नहीं, सारे नगर तथा राज्य मे भी गुणसम्पन्न राजपरिवार की प्रशसा होने लगी। आनन्दसेन पहले की तरह ही राज्य व्यवस्था तथा जनहित के कार्यो मे डूबा रहता था, लेकिन शीलावती भी उसे कभी उसके कर्त्तव्यों से विलग नहीं करती थी बल्कि उसे अधिक प्रोत्साहन देती थी। उनका विवाह जनहित मे किसी प्रकार से बाधक नही बना, फिर भी दोनो अपने वैवाहिक जीवन को अतीव आनन्द के साथ व्यतीत करने लगे।

❑

18

दो बाते एक साथ घटी। इधर तो सलखू नाइन आनन्दपुर से भागकर चम्पानगरी पहुच गई तो उधर महाराजा चन्द्रसेन को जब आनन्दसेन की याद बहुत सताने लगी तब वे उससे मिलने चम्पानगरी से आनन्दपुर की तरफ चल पडे।

सलखू नाइन ने चम्पानगरी पहुचकर सबसे पहले रानियो से मुलाकात की और उन्हे आनन्दसेन के अजेय साहस का परिचय दिया। वह कहने लगी– मैंने आनन्दसेन की जीवन लीला समाप्त करने के अनेक उपाय किये। उसे सिह के मुह मे धकेला और भयानक गरूड के घोसले पर भेज दिया लेकिन वह अपने अपूर्व साहस से सकुशल लौट ही नही आया बल्कि मेरे द्वारा मागी गई वस्तुऐ भी ले आया। मैंने अन्तिम उपाय उसके मन मे शीलावती से विवाह करने की इच्छा जगा कर किया और सोचा कि अब उसका जीवनान्त होकर ही रहेगा क्योकि कोई भी वीर अब तक वहा से जीवित नही लौटा हे। किन्तु मेरे आश्चर्य का ठिकाना नही रहा जब मैंने सुना कि उसने शीलावती को भी जीत कर उसके साथ विवाह कर लिया है। तब तो मैं एक पल के लिये भी वहा नही ठहर सकी क्योकि तब मेरा जीवनान्त निश्चित था। अब में वहा से भागकर यहा आ गई हू और आप सभी से निवेदन करना चाहती हू कि अब आप ही जो चाहे करे– यह काम किसी भी तरह मेरे वश का नहीं हे। यह कहकर सलखू जब अपने घर चली गई तो रानियो ने सोचा कि अब आनन्दसेन को समाप्त करने के लिये उन्हे ही कुछ उपाय करना पडेगा। उन्होने परस्पर राय मिलाई कि अभी महाराजा चन्द्रसेन कहीं बाहर पधारे हैं सो वहा से जब लौट आवे तो उन्हे ही प्रेम दिखाकर आनन्देसेन को चम्पानगरी बुलाने का आग्रह करेगी और फिर उसके यहा आने पर कुछ कारगर उपाय काम मे लेगी।

उधर जब महाराजा चन्द्रसेन चम्पानगरी से आनन्दपुर पहुचे तो आनन्दसेन तथा चम्पकमाला से मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। किन्तु उनकी प्रसन्नता तव कई गुनी बढ गई जब उन्हे आनन्दसेन के विवाह की बात वालूम हुई ओर वे गुणसम्पन्ना सुन्दरी शीलावती से मिले। शीलावती ने महाराजा चन्द्रसन को देखा तो उसने उन्हे झुक कर नमस्कार किया। इस पर चन्द्रसेन ने भी उस खुले दिल से आशीर्वाद दिया और उसके सुखद व दीर्घ जीवन की कामना की।

महारानी शीलावती बडी विचक्षण थी। उसने पहली दृष्टि मे ही अनुमान लगा लिया कि ये महानुभाव जिन्हे चम्पानगरी का महाराजा बताया जा रहा है, निश्चित रूप से आनन्दसेन के पिता श्री हैं। यह निष्कर्ष उसने दोनो की आकृतियो तथा गुणो का मन ही मन सूक्ष्म मिलान करके निकाला था। इस विचार से उसने महाराजा चन्द्रसेन की बहुत ही भक्तिभाव से सेवा की। शीलावती के ऐसे सद्व्यवहार ने चन्द्रसेन के मन मे आनन्दसेन तथा चम्पकमाला से भी ऊचा स्थान दे दिया। वे मन ही मन आनन्दसेन को सौभाग्यशाली समझने लगे जो ऐसी सुरूपा गुणसम्पन्ना पत्नि प्राप्त करके भी अपने जनहित सम्बन्धी कर्त्तव्यो पर पूरी निष्ठा एव सजगता से डटा हुआ है ।

महाराजा चन्द्रसेन को आनन्दपुर मे रहते हुए ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे वे अपने ही परिवार मे रह रहे हो और उनके स्नेह से इस तरह भींजे हुए हो कि उनसे विलग होना ही नहीं चाहते। क्योकि उस समय तक ही उनकी जानकारी तो यही थी कि आनन्दसेन उनके पडोसी राज्य का युवा शासक है और उनके प्रति उनका ही नही, उसकी बहिन तथा अब उसकी पत्नी का पूर्ण आदर भाव है। उनका वश चलता तो वे सदा के लिए आनन्दपुर रह जाते किन्तु बहुत दिन रह जाने के बाद जब चम्पानगरी के राज्य कर्त्तव्यों का उन्हें स्मरण हो आता तो उन्हे वहा से प्रस्थान करने का निश्चय करना ही पडता। इस बार तो आनन्दपुर छोडना उनके हृदय के लिए बडा बठिन हो रहा था फिर भी एक दिन वे भारी मन से वहा से प्रस्थान कर ही गये।

किन्तु चम्पानगरी पहुच कर महाराजा चन्द्रसेन के मन को उस समय बडा सुख मिला जब ग्यारह रानियो ने मिल कर महाराजा से यह आग्रह भरा अनुरोध किया कि वे आनन्दपुर के महाराजा आनन्दसेन को सपरिवार चम्पानगरी मे बुलावे और हमे उनके दर्शन पाने का अवसर प्रदान करे। जब आप हमेशा उनके व्यवहार की सराहना करते रहते हैं तो हम भी उनके स्नेह से आभारी होना चाहती हैं। अब तक आप ही वहा पधारते रहे हैं, किन्तु जब उन्हे भी यहा आमन्त्रित करेगे तो यह स्नेह की धारा अधिक प्रगाढ बन सकेगी। उन रानियो के इस अनुरोध से चन्द्रसेन को बडी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उत्तर दिया— मैं स्वय महाराजा आनन्दसेन को सपरिवार अपनी राजधानी मे आमन्त्रित करने की इच्छा कर रहा था किन्तु अब तुम्हारे अनुरोध से तो शीघ्र ही इस इच्छा की मैं पूर्ति करना चाहूगा। किन्तु एक बात जरूर कह देना चाहता हू कि आनन्दसेन का सम्मान यहा पर सुरक्षित रहना चाहिए। कोई ऐसी प्रिय घटना न घटने पाए कि जिससे मेरी प्रतिष्ठा को

धक्का लगे। इस पर तो उन रानियो ने मन मे कपट ओर बाहर हर्ष दिखा कर एक स्वर से कह दिया कि वे निश्चिन्त रहे– उनकी ओर से महाराजा आनन्दसेन का भव्य स्वागत किया जायेगा। तब महाराजा ने आश्वासन दिया कि वे शीघ्र ही महाराजा आनन्दसेन को सपरिवार अपने यहा आमन्त्रित करेगे।

राज–काज से समय निकाल कर महाराजा चन्द्रसेन यथासाध्य शीघ्र इस हेतु आनन्दपुर पहुचे। उन्होने आनन्दसेन को सपरिवार चम्पानगरी आने का निमन्त्रण दिया और आग्रह किया कि सबकी इच्छा को मान देते हुए वह अपने भ्रमण का कार्यक्रम बनावे। निमन्त्रण स्वीकार करने से पहले आनन्दसेन ने इस कार्यक्रम के लिए चम्पकमाला और शीलावती से भी विचार विमर्श किया जिन्होने गम्भीर दृष्टि से सोच कर उस समय चम्पानगरी नही जाने की सलाह दी क्योकि उनका अनुमान था कि वहा किन्ही दुष्ट व्यक्तियो द्वारा उसके प्राणो के विरूद्ध कोई षडयन्त्र हो सकता है। किन्तु आनन्दसेन का उत्तर यह था कि मैंने महाराजा को वचन दे दिया है। अत जाना अनिवार्य है। इस पर शीलावती ने सुझाव दिया कि फिर आनन्दसेन अकेले ही जाना स्वीकार करे, सबको साथ न ले जाये क्योकि यही कार्यक्रम हितकारी रहेगा। इस पर आनन्दसेन ने अपने चलने की बात कह कर महाराजा चन्द्रसेन से निवेदन किया कि चम्पकमाला एव शीलावती स्वय ही आपके दर्शन करने के लिए यही आ रही हैं। तभी चम्पकमाला और शीलावती ने कक्ष मे प्रवेश किया तथा महाराजा को प्रणाम कर उनका सत्कार किया। चन्द्रसेन ने भी आशीर्वाद देकर उनकी कुशल क्षेम पूछी। फिर चम्पानगरी के निमन्त्रण की बात चली तो दोनो ने नम्रतापूर्वक कहा– आप तो हमारे लिये पिता तुल्य हैं। आपके वहा चल कर हमे बहुत ही प्रसन्नता होती किन्तु इस समय हम यहा चलने की स्थिति मे नहीं हैं अत आप हमे क्षमा करे। महाराजा ने उनकी असमर्थता पर खेद व्यक्त किया।

महाराजा चन्द्रसेन के साथ तब केवल आनन्दसेन के ही जाने का कार्यक्रम बना। प्रस्थान से पूर्व शीलावती ने आनन्दसेन से कहा कि आप यहा से जब भी रवाना हो मुझे निश्चित समय बता दीजियेगा तथा चम्पानगरी पहुचने के अनुमानित समय का भी सकेत दे दीजियेगा। आप कब और कैसा भोजन करेगे इसकी जानकारी भी मुझे चाहियेगी और आप वहा एक दिन से अधिक न रूके। आनन्दसेन ने यह बात सुनी, लेकिन उस पर खास ध्यान नहीं दिया। जब आनन्दपुरी से रवाना हुआ तो वह समय भी शीलावती को सूचित

करवाना भूल गया। उसने तो गरूड और शेर बच्चे को साथ मे लिया तथा महाराजा चन्द्रसेन के साथ हो लिया।

चम्पानगरी पहुचने पर वहा के नागरिको ने महाराजा आनन्दसेन का हार्दिक स्वागत किया। सारे नगर मे आनन्द छा गया और स्थान–स्थान पर उत्सव आयोजित किये जाने लगे। इसी बीच आनन्दसेन को याद आया कि उसने शीलावती के निर्देश का कोई पालन नही किया है। इससे उसे चिन्ता हो आई कि उसके निर्देशो का कुछ न कुछ महत्त्व अवश्य रहा होगा। तब उसने द्रुतगामी गरूड पक्षी के गले में सन्देश लगाकर उसे शीलावती के पास भेजा। वह तेजी से उडता हुआ कुछ ही समय मे शीलावती के पास पहुच गया। शीलावती ने उस सदेश को सावधानी से पढा और अपनी सूचना लिखकर गरूड पक्षी को वापिस चम्पानगरी रवाना कर दिया।

आनन्दसेन के स्वागत मे भोज की तैयारी होने लगी। दोनो महाराजा अपने सगी साथियो के साथ भोजन करने के लिए बैठे। भोजन रनिवास मे उन ग्यारह रानियो की देख–रेख मे बनाया गया था तथा वही से भोजन प्रत्येक व्यक्ति के लिये थालो मे परोस कर बाहर भेजा जाने लगा। प्रत्येक थाल मे चार–चार लडडू रखे हुए थे । लड्डू दीखने मे भी इतने आकर्षक थे कि सबकी नजरे उन लडडूओ पर टिक गई थीं।

जैसे ही सब भोजन करने को तत्पर हुए ठीक उसी समय एक आश्चर्यजनक घटना घटी। आकाश मार्ग से बहुत ही तेज गति से उडता हुआ एक पक्षी (चील) वहा आया और सबके देखते–देखते वह आनन्दसेन के थाल के चारों लड्डू उठा कर वापिस उड गया। देचाने वाले दातो तले अगुली दबा कर देखते रहे कि कैसे यह पक्षी राजमहल के भीतरी कक्ष मे आ पहुचा और किस कारण केवल आनन्दसेन के थाल के ही लडडू उठा कर तुरन्त वापिस उड गया ? सामान्य दर्शन तो इस घटना पर आश्चर्य ही करते रहे, किन्तु ग्यारह रानियों ने घोर निराशा से अपने सिर पीट लिये। क्योकि आनन्दसेन की जीवन लीला समाप्त करने का जो घातक उपाय उन्होने आजमाया था वह यो निष्फल हो गया।

आनन्दसेन भी इस घटना को नहीं समझ पाया। शीलावती ने भलामण दी थी कि वह चम्पानगरी मे एक दिन से अधिक नहीं रुके अत वह लौटने के लिये तैयार हो गया। तब महाराजा चन्द्रसेन बहुत ही भाव विह्वल हो गये और वे भी आनन्दसेन को पहुँचाने के बहाने पुन साथ–साथ आनन्दपुर पहुँच

गये। वहा पहुँचने पर चम्पकमाला तथा शीलावती ने दोनो का स्वागत किया एव चम्पानगरी का वृत्तान्त पूछा। आनन्दसेन ने अपनी यात्रा का विवरण सुनाया किन्तु पक्षी द्वारा उसके थाल के चारो मोदक ले जाने वाले घटना के रहस्य से उसने अपनी नाजानकारी जाहिर की। यही बात महाराजा चन्द्रसेन ने भी बताई। किन्तु जब वे ही चारो लड्डू,शीलावती लेकर उनके सामने आई तो उनके आश्चर्य की सीमा नही रही। वे देखते ही रह गये कि वे ही लड्डू यहा कैसे पहुँच गये और इनमे क्या रहस्य छिपा हुआ है ? वे शीलावती से उन लड्डूओ का रहस्य जानने के लिये आतुर हो उठे।

महाराजा चन्द्रसेन एव आनन्दसेन की आतुरता पर शीलावती को मन ही मन हसी भी आ रही थी। और चन्द्रसेन की दशा पर दु ख भी हो रहा था। पर उसने अपने मन को दृढ करके महाराज चन्द्रसेन से निवेदन किया। अभी आप विश्राम करे। समय आने पर सारा रहस्य आपको ज्ञात हो सकेगा।

महाराजा चन्द्रसेन विश्राम करने विशेष अतिथि गृह जो कि राजमहल के अन्तर्गत ही था, चले जाते हैं। आत्मीय भावना एव शिष्टता के तौर पर आनन्दसेन भी उनको पहुँचाने वहाँ तक साथ–साथ जाता है। वहाँ उन्हे पहुचाकर शीघ्र शीलावती के पास पहुँचा। और कहने लगा तुम भी कैसी औरत हो कि हमारे को नये–नये आश्चर्य मे डालती रहती हो। तुम लड्डूओ का रहस्य बताने के लिये महाराजा चन्द्रसेन को टाल सकती हो। पर मुझको नही– में तो तुम्हारे से वह रहस्य आज जानकर ही रहूगा।

शीलावती ने स्तिमित मुस्कान के साथ कहा–स्वामी ! आपसे मैं कोई बात छिपाना नही चाहती। मैं आपको पूरा रहस्य बताऊगी पर अभी नही क्योकि अभी समय का परिपक्व नही हुआ है। अभी तो आप इतना ही पर्याप्त समझे कि जिन बाबा ब्रह्मानन्द के आप शिष्य हैं मैं भी उन्ही की शिष्या हूँ। यह सब उन्हीं की कृपा का सुफल है।

शीलावती ने आगे कहा–पतिदेव, मेरी एक अभिलाषा है–इतना कहकर शीलावती चुप हो, आनन्दसेन की तरफ देखने लगी। आनन्दसेन ने शीलावती को चुप देखकर कहा– प्रिय ! तुम चुप क्यो रह गयी ? क्या तुझे मुझ पर विश्वास नहीं हो रहा हे। जो तुम अपनी अभिलाषा व्यक्त करने मे सकोच कर रही हो। तुम निश्चिन्त होकर अपनी भावना व्यक्त करो। में तुम्हारी इच्छा को पूर्ण करने का हर सम्भव प्रयास करूगा।

आनन्दसेन से इस प्रकार उत्तर पाकर शीलावती पुलकित हो उठी। वह कहने लगी—नाथ, में धन्या हूँ, कृत्य पुण्या हूँ जो आपको पति रूप मे प्राप्त कर सकी हूँ। आप पर मुझे किंचित् मात्र भी अविश्वास नही है। पर मैंने सोचा कहीं आप मेरी इच्छा को विनोद की सज्ञा न दे दे। इसलिए मैं अपनी अभिलाषा व्यक्त करते—करते रुक गयी। पर जब आपने मुझे आश्वस्त किया है, तो मैं निर्भयता पूर्वक आपसे निवेदन करती हूँ कि चम्पानगरी की समस्त प्रजा आबाल गोपाल सहित महाराज चन्द्रसेन को एक भोज दिया जाय। यही मेरी चाहना है।

शीलावती की अचिन्त्य माग को सुनकर आनन्दसेन आवाक हो उसको निहारने लगा। सहसा उसके मुह से कोई शब्द ही नही निकले। तब शीलावती ने ही पुन बोलना प्रारम्भ किया और कहा—नाथ! आप विचार मग्न क्यो हो गये। क्या मेरी यह माग आपको उचित नहीं लगी ? आनन्दसेन ने मौन भग करते हुए—प्रिय! रजाई जितनी लम्बी हो उतने ही पैर पसारने चाहिये। तुम्हारी भावना का समादर करता हूँ। पर सम्पूर्ण चम्पानगरी के नागरिकों सहित महाराजा चन्द्रसेन को भोज देना कोई मामूली बात नहीं है। उसके लिये पर्याप्त समय एव साधन सामग्री की आवश्यकता होगी। आनन्दपुर अभी उतना सुविशाल राज्य कहाँ है, जो वह इस प्रकार का आयोजन कर सके ? शीलावती ने व्यवस्था सम्बन्धी सम्पूर्ण उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेते हुए कहा—व्यवस्था सम्बन्धी आप किसी प्रकार का विचार नहीं करे। वह सारी जवाबदारी मैं अपने ऊपर लेती हूँ। साथ ही आपको यह विश्वास भी दिलाती हूँ कि आपके यश मे कहीं भी न्यूनता नहीं आने दूगी। आप से तो मेरा मात्र इतना ही निवेदन है कि आप इसके लिये महाराज चन्द्रसेन को तैयार कर दीजिये। आप उनसे आग्रह पूर्व कहेगे तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे आपके आग्रह को कभी नहीं टालेगे।

आनन्दसेन शीलावती के मुह से निकलने वाले एक—एक शब्द की गहराई को मापता हुआ सुन रहा था। साथ ही उसने शीलावती की आखो मे झाककर देखा तो वहाँ पूर्ण आत्म विश्वास की झलक दृष्टिगत हुई अत शीलावती की भावनानुसार महाराज चन्द्रसेन को भोज देने मे आनन्दसेन भी सहमत हो गया।

आनन्दसेन वहाँ से उठकर जाने को तैयार हुआ ही था कि इतने मे चम्पकमाला भी वहाँ पहुँच गयी। वह कहने लगी क्या बात है भैया ? क्या

मेरा आना उचित नही रहा, जो आप जाने लगे। आनन्दसेन ने चुटकी लेते हुए कहा कि जाऊँ नही तो क्या करू। नीतिकारो ने तिरिया हठ को जबरदस्त बताया है। पहले तुम एक थी। पर अब शीलावती के आ जाने से दो हो गयी हो। पहले भी तुम्हारी हठ के कारण मुझे इससे विवाह करना पडा और अब
।

इतना कहकर आनन्दसेन तीक्ष्ण दृष्टि से शीलावती की ओर देखने लगा तब शीलावती ने अवशेष वाक्य पूर्ण करते हुए कहा अब मेरे आग्रह से इनको महाराजा को भोज देना पडेगा।

चम्पकमाला कब चुप रहने वाली थी ? वह भी चहक कर बोली, नही । मैं इससे सहमत नही हूँ। बार-बार चन्द्रसेन महाराज को ही केवल भोज देना कहा तक उचित है ? यदि महाराज चन्द्रसेन को भोज ही देना हो तो उनको राज परिवार सहित आमत्रित कीजिये। अन्यथा भोज देने मे कोई मजा नहीं आयेगा।

आनन्दसेन जो अब तक ननद-भाभी की बात सुन रहा था बोला-अरे केवल महाराज चन्द्रसेन को ही भोज देने की बात होती अथवा उनके परिवार तक की माग होती, तब तो कोई बात ही नही थी पर तुम्हारी भाभी की माग तो यह हे कि चम्पानगरी के समस्त नागरिक आबाल गोपाल सहित महाराज चन्द्रसेन को भोज दिया जाय ? आनन्दसेन की बात पूर्ण होते ही चम्पकमाला ने जोर देते हुए कहा-भाभी ने यह माग आपके सामने पहली बार की है। आपका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि भाभी की माग को आप तत्काल स्वीकार करे। मैं भी भाभी को माग से सहमत हूँ।

स्वीकार करने के अलावा और चारा ही क्या हे ? कहते हुए आनन्दसेन ने कहा इसलिए ही तो मैं कह रहा था कि अब तुम दो हो गयी हो। इतना कहकर महाराज आनन्दसेन विशेष अतिथि गृह की ओर प्रस्थान कर गये। वहॉ चन्द्रसेन उनकी बडी बेताबी से इन्तजार कर रहा था।

आनन्दसन ने विशेप अतिथि गृह मे प्रवेश करते ही महाराज के कुशल मगल की पृच्छा की ओर राज्य व्यवस्था एव राजनीति सम्बन्धी बातो म मशगूल हो गय।

दूसरे दिन महाराज चन्द्रसेन आनन्दसन आदि भोजन कर रह थे बीच-बीच म बातचीत का दौर भी चल रहा था। बात ही बात मे आनन्दसेन न महाराज चन्द्रसेन को सबोधन कर कहा-राजन् । शीलावती एव चम्पकमाला

की हार्दिक अभिलाषा है कि वे आपको चम्पानगरी के समस्त नागरिको आबाल गोपाल सहित स्नेह भोज दे। उसमे आपकी स्वीकृति चाहती है। अत आप उनको इसकी स्वीकृति देकर अनुगृहीत करे। महाराज चन्द्रसेन ने गम्भीर होते हुए कहना प्रारम्भ किया निश्चय ही शीलावती एव चम्पकमाला की भावना स्तुत्य है। पर आप स्वय अनुभव करे। यह कार्य अव्यवहार्य एव असम्भव सा है। क्योकि राज्य को एक दम सूना करना सुरक्षा की दृष्टि से कैसे उपयुक्त रह सकता है तथा राज्य के सारे नागरिक पहुँच भी कैसे सकते हैं ? मुझे भोज देने की इनकी भावना तो समय–समय पर फलित होती ही रहती है। मैं एक बार नहीं कई बार यहाँ आ चुका हूँ। अत चम्पानगरी के समस्त नागरिको सहित भोज का आमत्रण स्वीकार करना गम्य नहीं लगता।

नगर की सुरक्षा की आप तनिक भी चिन्ता न करे उसका उत्तरदायित्व मैं लेता हू। आनन्दसेन ने जैसे यह कहा शीलावती ने कहा, चम्पानगरी के व्यक्तियो को यहाँ तक लाने की सुविधा आप मेरे पर छोड दे।

महाराज विचार मग्न हो गये। अब आनन्दसेन ने कहा–आप किसी तरह का विचार न करे। आपके यश गौरव मे कहीं भी आच नही आवेगी। चम्पानगरी के एक–एक बच्चे की सुविधा का पूरा ध्यान रखा जायेगा।

महाराज ने कहा, यह कार्य बडा दुरूह है। अत इस विषय मे मैं अपने मन्त्रियो से परामर्श करके ही आपको कुछ जवाब दे सकता हूँ। यद्यपि आप मेरे परम हितैषी हैं। फिर भी राज्य मर्यादानुसार इस विषय मे मुझे मन्त्रियों से परामर्श करना योग्य रहता है।

आपका कथन न्याय सगत है। अत हम आपको यह आग्रह नहीं करेगे कि आप यहीं स्वीकृति दे दे। पर हाँ आप जब भी यहाँ से प्रस्थान करेगे। तब हमारा प्रतिनिधि आपके साथ रहेगा। वहा पहुँचकर उस प्रतिनिधि के माध्यम से आप स्वीकृति एव अनुकूल तिथि का सकेत भेजने का अवश्य ही अनुग्रह करे। यह हमारा बार–बार आग्रह है। क्यो सही है न शीलावती', कहकर आनन्दसेन चुप हुआ। तो शीलावती ने कहना प्रारम्भ किया, आपका कथन अक्षरश सत्य है हम तो इन्हे पूज्य पिताजी के रूप मे मानते हैं। इसलिए हमारी छोटी सी माग उनको स्वीकार करनी ही है। मैं तो इनकी तरफ से आज ही स्वीकृति मान रही हूँ। राजनीति के अनुसार औपचारिकता की पूर्ति भले बाद मे हो।

शीलावती के इस कथन से महाराज चन्द्रसेन कहने लगे, यह तो पुत्र वधू से भी अधिक अधिकार जमाने लग गयी है।

चम्पकमाला जो अब तक चुप थी महाराज के चुप होने पर कहने लगी। आपने हमको मुह जो लगा रखा है। इस पर सभी के चेहरे पर मधुर मुस्कान बिखर गयी। भोजनोपरान्त विश्राम करके महाराज चन्द्रसेन चम्पानगरी जाने की तैयारी करने लगे। महीप आनन्दसेन ने अपना विशेष प्रतिनिधि भी उनके साथ कर दिया।

भूधर चन्द्रसेन ने चम्पानगरी पहुॅचकर विशिष्ट व्यक्तियो की एक गुप्त मीटिग बुलायी। उसमे आनन्दसेन द्वारा दिये गये आमन्त्रण पर विचार विमर्श चलने लगा।

एक सभासद ने शकित हृदय से अपने विचार प्रकट करते हुए कहा–राजन् ! राजनीति के दायरे मे यदि चितन करे तो पडौसी राजा आनन्दसेन द्वारा दिये गये आमन्त्रण के सन्दर्भ मे कई प्रश्न उपस्थित हो जाते हैं। जैसे कि–महाराज आनन्दसेन द्वारा भोज देने का उद्देश्य क्या है ? चम्पा के समस्त नागरिको को भोजन क्यो देना चाह रहे हैं। क्या इसके पीछे कही कूटनीति तो काम नही कर रही है। चम्पानगरी के नागरिक भोजन के निमित्त आनन्दपुर पहुॅचे तो आनन्दपुर के राजा को चम्पा पर अधिकार जमाने का अच्छा मौका मिल जाय ? आदि

सभासद द्वारा उपस्थित प्रश्नो पर सभी गहराई से चितन करने लगे। कई उनका समर्थन भी करने लगे। तो कई यो भी कहने लगे–धराधीश ! महाराजा आन्दसेन कहीं आपकी हसी करवाना तो नही चाहते ? क्योकि आनन्दपुर अभी नया–नया बसा है। उसमे इतने साधन नहीं हैं कि वे चम्पा के समस्त नागरिको के भोजन की व्यवस्था कर सके। अत इसमे गम्भीर चितन की आवश्यकता है। महीधर चन्द्रसेन सबकी बात को बडे ध्यान से सुन रहे थे एव प्रत्येक व्यक्ति के चेहरे पर आने वाले उतार चढाव का निरीक्षण भी कर रहे थे। इसके साथ–साथ वे आनन्दसेन की भावना एव राजनीति का तुलनात्मक समीक्षण भी कर रहे थे।

अवनिपति ने प्रधान आमात्य की ओर निहारा तो पाया वे गम्भीरता के साथ अपने आसन पर जमे हुए हैं। महाराज ने उनको सम्बोधन कर कहा–महामात्य आप चुपचाप क्यो बैठे हैं। आप भी अपने विचारो से सभा को लाभान्वित कीजिये।

महामत्री ने कर युगल को शिर पर लगाते हुए विनम्र शब्दो मे निवेदन करना प्रारम्भ किया। नरनाथ ! अनेक महानुभाव अपने विशिष्ट भावो को सभा मे प्रस्तुत कर ही रहे हैं। मैं भी उन भावो को श्रवण कर ही रहा था। श्रवण के साथ–साथ चिन्तन भी तीव्र गति से चल रहा था। एक तरफ इन सभी महानुभावो की भावोक्ति से इनका राष्ट्र प्रेम राष्ट्र भक्ति पर गौरव हो रहा था तो दूसरी ओर महाराज आनन्दसेन द्वारा दिये गये आमन्त्रण पर चिन्तन चल रहा था। यद्यपि राजनीति के धरातल पर चिन्तन किया जाय तो उनके द्वारा दिया गया आमन्त्रण कई शकाये पैदा कर देता है। तथापि व्यक्तिगत जीवन के आधार पर जब मैं चिन्तन करता हूँ तो मुझे मुछ ओर ही सूझता हे।

महाराज ! आप स्वय एक बार नहीं वरन् कई बार उनके मेहमान बन चुके हैं। उनकी पुण्य प्रभा से भी आप भलीभाति परिचित हैं। वे विस्तारवादी नीति के राजा नही हैं। बल्कि जहॉ तक उनके विषय मे सुना समझा है वे वडे मिलनसार व्यक्ति हैं। एव प्रभु महावीर का उद्घोष जीओ और जीने दो को जीवन मे लेकर चलते हैं। ऐसे व्यक्ति एकाएक आक्रामक नहीं हो सकते। हॉ, आक्राता का प्रतिकार कर सकते हें। किन्तु अपनी तरफ से हिसक प्रवृत्ति को बढावा ऐसा दे नही लगना।

यदि उनको चम्पानगरी के प्रति ही लगाव होता तो वे यदि चम्पा को हडपना ही चाहते तो वे कभी के इसमे सफलता प्राप्त कर सकते थे। आपको याद होगा। जब आप शिकारी की पोशाक मे आनन्दपुर के आरक्षक दल द्वारा पकडे गये थे तो उस समय वे आपको बन्दी बना सकते थे ओर चम्पा को भी हथिया सकते थे। लेकिन उन्होने वैसा नहीं किया। बल्कि आपके प्रति वडे उदार दिल से पेश आये थे। इतना ही नही वे आपको अपना पूज्य मानकर चल रहे थे। अत मेरा जहॉ तक निजी विचार है। मैं यह मानता हूँ कि उनके द्वारा दिया गया निमन्त्रण अवश्य ही कुछ शुभ सन्देश के रूप मे साबित हो सकता है।

आनन्दपुर मे इतने व्यक्तियो की व्यवस्था के विषय मे जो आशका की जा रही है उसे भी वहा के सीमित साधनो के आधार पर नकारा नहीं जा सकता है। पर दूसरी तरफ जब उनके द्वारा घटित अनहोनी घटनाओ को सुनते है तो वह आशका भी निर्मूल हो जाती है। अत इस दृष्टि स उनके आमन्त्रण को स्वीकारने मे मुझे कोई अनौचित्य प्रतीत नहीं होता।

इतना कहकर महामात्य अपने आसनारूढ हो गये। सबकी निगाह अब महाराज की ओर लगी हुई थी। महीप ने गम्भीर स्वर मे अपना वक्तव्य प्रारम्भ किया। सभासदो, मैं आप सभी महानुभावो के भावो को श्रवण कर रहा था। आप सबकी निष्ठा देश के लिये ही हितकर है। प्रत्येक विषय में तुलनात्मक दृष्टिकोण से चिन्तन करना चाहिये। कई प्रसग ऐसे होते हैं। जिन पर केवल राजनीति से चिन्तन करना कभी-कभी नुकसानदेह साबित हो जाता है। इसलिए ऐसे प्रसगो पर सर्वागीण चिन्तन अपेक्षित रहता है।

अभी आप सब ने महामात्य के विचारो को भी सुना है। उन्होने अपने चिन्तन मे राजनीति एव व्यावहारिक दृष्टि का समन्वय किया है। उन्होने महाराजा आनन्दसेन के विषय मे जो कुछ भी कहा है वह अतिश्योक्ति पूर्ण नही, यथार्थ है। मैंने स्वय उनको निकट से परखा है। यद्यपि बाह्य बन्धन से उन्होने मेरे को बन्दी नही बनवाया तथापि मैं यह मानता हूँ कि भावात्मक दृष्टि से मैं उनके बन्धन मे हूँ। उनमे सरलता, सौम्यता, सद्-व्यवहारिकता आदि ऐसे गुण हैं कि उससे मैं अत्यन्त प्रभावित हूँ। मुझे आज तक उनमे विस्तारवादी नीति की 'बू' नजर नही आयी। अत उनके द्वारा दिया गया सस्नेह आमन्त्रण ठुकराना उचित प्रतीत नही होता।

समागत आनन्दपुर के प्रतिनिधि को आमन्त्रण की स्वीकृति के साथ अनुकूल तिथि का सकेत भी दे दिया गया। प्रतिनिधि ने जय विजय करते हुए महाराजा चन्द्रसेन का आभार व्यक्त किया।

जय हो, विजय हो, महाराजा आनन्दसेन की जय हो, विजय हो की ध्वनि के साथ चम्पानगरी से लौटा प्रतिनिधि राजसभा मे प्रवेश करता है। महाराजा आनन्दसेन उसके प्रफुल्लित वदन को देख कर ही समझ गये कि वह कार्य मे सफलता प्राप्त करके आया है। क्योकि वे जानते थे। व्यक्ति जब साधारण कार्य मे भी सफलता पा लेता है तो वह हर्षित हो जाता है। वही यदि दुरुह कार्य में सफलता प्राप्त कर ले तो उसकी खुशी का कहना ही क्या ?

प्रतिनिधि ने महाराजा का अभिवादन कर चन्द्रसेन राजा का सदेश सुनाया। यह सदेश सुनकर सभा स्थित सभासद अवाक् रह गये। क्योकि उन्हे इस आमन्त्रण की जानकारी नहीं थी। तब महीप आनन्दसेन ने सभासदो को कहा कि हमने ही यहॉ से महाराजा को आमन्त्रित किया था। पर महाराजा यहॉ हॉ या ना कहने की स्थिति में नही थे, अत अपना प्रतिनिधि उनके साथ भेजा गया था ताकि वह वहॉ का सदेश शीघ्र यहा ला सके।

सभासदो में से एक ने कहा, कृपानाथ! सदेश मे चम्पानगरी के नरेश ने जो तिथि का सकेत दिया है वह तो बहुत नजदीक है। इतने कम समय मे इतने व्यक्तियो के भोजन की व्यवस्था कैसे बन सकेगी ?

आपका कथन उचित है पर इस विषयक व्यवस्था का सारा भार महारानी शीलावती ने अपने ऊपर ले रखा है। अत अपने कोई विशेष चिन्ता करने जैसी कोई बात नहीं रही। कहते हुए आनन्दसेन ने उस बात को वहीं समाप्त कर दी। शीलावती ने व्यवस्था का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया है। यह जानकर सभी सभासद आश्वस्त हुए क्योकि वे शीलावती की शक्ति से भली–भाति परिचित थे।

महाराजा आपने जो आज्ञा दी तदनुसार मैं आनन्दपुर की हल–चल पर निगाह रखकर आया हूँ। आपको दिये जाने वाले भोज की तिथि अत्यन्त समीप होते हुए भी वहा तद्विषयक अभी तक कोई तैयारियॉ दृष्टिगत नही हो पाई है।

महाराजा चन्द्रसेन द्वारा भेजे गये पत्र जासूस विभाग के व्यक्ति ने आकर उपर्युक्त रिपोर्ट दी। उसकी रिपोर्ट सुनकर महीधीश ने अपने प्रधान आमात्य को तत्काल बुलाया और आनन्दपुर की रिपोर्ट से अवगत कराया। वे दोनों परस्पर मे चिन्तन कर ही रहे थे कि द्वार रक्षक ने आकर सूचना दी कि आनन्दपुर से एक दूत आया है। वह नरनाथ की सेवा मे उपस्थित होना चाहता है।

उसे सादर यहीं लिवा लाओ नरेश ने आदेश दिया। दूत ने नरेश का अभिवादन कर आनन्दपुर नरेश का सन्देश सुनाया कि आपका वे वेताबी से इन्तजार कर रहे हैं। भोज का समय भी सन्निकट आ रहा है। अत आप अब यहॉ से शीघ्र ही प्रस्थान की तैयारिया करावे।

महाराजा चन्द्रसेन दूत के आगमन को सुन कर विचार कर रहे थे कि शायद भोज स्थगित करने की सूचना लाया होगा। पर दूत द्वारा शीघ्र प्रस्थान की बात सुनकर वे कुछ विचार मे पड गये। उन्होने दूत से पूछा भाई तुम हमे शीघ्र प्रस्थान के लिये सदेश दे रहे हो पर कुछ विश्वस्त सूत्रो से ऐसा भी सदेश मिला है कि आनन्दपुर में भोज की कोई तैयारी नहीं है।

दूत ने कहा धराधीश आपका फरमाना काफी अश मे यथार्थ है। पर इस विषय मे आपको किसी तरह की शका करने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि हमारे स्वामी विशिष्ट शक्तियो से सम्पन्न हैं। उन्हे व्यवस्था करने में

ज्यादा समय की आवश्यकता नही है। आप जब भी पधारेगे आपको पूर्णतया व्यवस्था मिलेगी।

सुनो ! सुनो ! सुनो ! चम्पानगरी के निवासियो, महाराजा चन्द्रसेन के आदेश को सुनो ! नरेश का आदेश है कि नगर के सारे निवासी अपने बाल बच्चो सहित तैयार हो जाये। कल सवेरे महाराजा चन्द्रसेन के साथ उन्हे आनन्दपुर नरेश के यहा भोज मे सम्मिलित होना है। छोटा बच्चा भी घर में नही रहना चाहिये। चल अचल सम्पति का पूरा बन्दो–बस्त रहेगा। अत नरेश की आज्ञा सबको ध्यान मे रखनी है। बडे ठाट बाट के साथ चतुर्गिणी सेना परिवृत एव नगर निवासियो वेस्टित महीधर चन्द्रसेन चम्पानगरी से प्रस्थान करते ही महाराजा को शुभ शकुन होने लगे। महाराजा एव प्रधान आमात्य शुभ शकुनो को देख प्रमुदित होने लगे।

चम्पानगरी के नरेश ने चम्पा से प्रस्थान कर दिया है, यह जानकर आनन्दसेन को बडी चिता हुई। वह तत्काल शीलावती के पास पहुँचा और शीलावती से कहने लगा, तुम अब भी निश्चित बैठी हो। उसने कहा महाराजा–आप कहना क्या चाह रहे हैं ? मैं समझी नही। आनन्दसेन कुछ खीज सा गया और कहने लगा–अरे तुम समझी नही। तुम्हे याद है या नहीं कि तुमने महाराजा चन्द्रसेन को चम्पा के समग्र निवासियो के साथ भोज के लिये आमन्त्रित किया है ? तुमको यह भी ज्ञात होना चाहिये कि वे वहाँ से प्रस्थान भी कर चुके हैं। उनके आवास–निवास एव भोजन व्यवस्था का उत्तरदायित्व तुमने अपने ऊपर लिया था। यह तुमको स्मृति मे होगा ही पर अभी तक तुमने कोई भी व्यवस्था नही की। यह चिन्ता का विषय नही तो और क्या है ?

शीलावती ने हस कर कहा–ओ हो यह बात है क्या ? मेरे कारण आपको इतना मानसिक कष्ट हुआ इसके लिये क्षमा चाहती हूँ। अब आप निश्चित हो जाइये। कल सवेरे सारी व्यवस्था हो जायेगी। दूसरे दिन की सुबह वस्तुत सबके लिये आश्चर्यकारी था। क्योकि कल तक जहा खण्डहर थे वहा आज अट्टालिकाए खडी हैं। सारे आनन्दपुर मे मधुर पकवानो की महक फैल रही है। रातो–रात यह कार्य किसने किया और कैसे किया ? यह सबके जिज्ञासा का कारण बना हुआ था।

ठीक समय पर चम्पा नरेश निवासियो के साथ आनन्दपुर पहुँच गये। उन्होंने वहा की आवास व्यवस्था देखी तो वे भी आश्चर्य चकित हुए बिना नहीं

रह सके।

आनन्दसेन ने आनन्दपुरी की जनता को सदेश प्रसारण करवाया कि आनन्दपुर के सारे निवासियो का भोजन आज चम्पा के निवासियो के साथ होगा। अत ठीक समय वे वहॉ पहुॅच जाय।

आनन्दपुर की जनता भी ठीक समय भोज मण्डल मे पहुॅच गयी। शीलावती आदि भी महाराजा चन्द्रसेन के स्वागतार्थ उपस्थित हुई। उसने जब महाराजा के साथ बारह महारानियो को देखा तो उसने निवेदन किया कि पूज्यवर क्या चम्पा के सारे निवासी आ चुके हें। तब चन्द्रसेन ने कहा, हॉ। शीलावती तुम्हारी भावनानुसार चम्पा के सारे निवासी आ गये। आदरणीय आपके साथ मैं ग्यारह ही महारानियो के दर्शन कर पा रही हूॅ, पर मेंने सुन रखा है कि आपके महारानिया बारह हैं। तो एक महारानी के दर्शनो से मुझे वचित क्यो रहना पड रहा है। महाराज ने दु ख भरी नि श्वास छोडते हुए कहा शीलावती, तुम उसका नाम भी मत लो। मैं उस कलकिनी का मुह देखना तो दूर, नाम भी सुनना नही चाहता। कहते–कहते महाराजा के आखो से दो मोती लुढक पडे।

पूज्यवर मैं आपको कष्ट नहीं देना चाहती थी। पर में अपनी जिज्ञासा को रोक नहीं पायी। इसलिये ही कह बैठी। आपको दु ख हो वैसा मैं नहीं करना चाहती। पर क्या आप ऐसा चाहेगे कि मेरे मन मे शल्य बना रहे। यदि एक महारानी जी के मैं दर्शन नहीं कर पायी तो मेरे मन मे सदा के लिए खटक रह जायेगी। मैंने चम्पानिवासियो को भी आपके साथ आमन्त्रित किया है। आप उन्हे महारानी की हैसियत से नहीं तो कम से कम चम्पा निवासी की हैसियत से तो बुला ही सकते हैं। आशा है, मेरी मनोव्यथा को आप समझकर उचित आदेश देगे।

यद्यपि महाराजा चन्द्रसेन विश्वसुन्दरी को बुलाना नही चाहते थे पर शीलावती के तर्कपूर्ण आग्रह को वे टाल नहीं पा रहे थे। फिर भी उन्होने बात को टालने की दृष्टि से कहा, शीलावती ! तुम्हारी भावना देख कर मैं उसको बुला भी लेता पर अब इतना समय नही रहा कि वह चम्पा से यहॉ तक पहुॅच सके। अत अब उसको बुलाने के लिए स्वीकृति देने न देन का कोई औचित्य नही रहा।

शीलावती जो मन्त्र विद्या मे निपूर्ण थी वह इस छोटी सी बात मे कहा मानने वाली थी। उसने तपाक से उत्तर दिया कि राजन् ! अवज्ञा के लिए क्षमा

कर। यदि आप अनुमति दे तो मैं इतने स्वल्प समय मे भी विश्वसुन्दरी को यहा बुलाने का प्रयास कर सकती हूँ। इतना कह कर शीलावती महाराजा चन्द्रसेन के अनुमति सूचक शब्दो को सुनने के लिए चुप हो गयी।

'यदि तुम्हारा इतना ही आग्रह है और तुम इस स्वल्प समय मे भी उसे यहा बुलाने का आग्रह कर रही हो तो तुम अपना प्रयास कर सकती हो।" निश्वास छोडते हुए चन्द्रसेन ने उत्तर दिया।

शीलावती ने तत्काल अपनी मन्त्र शक्ति के माध्यम से महारानी विश्वसुन्दरी को चम्पा से आनन्दपुर बुला लिया।

सहसा महारानी विश्वसुन्दरी का वहा पहुचना सब के लिए आश्चर्य था। पर ग्यारह महारानिया अन्दर ही अन्दर घबराने लगी। उस अवस्था से उनके मुह से बोल ही नही निकल रहे थे। वे मन ही मन विचार करने लगी यहा कहीं हमारा भण्डाफोड नहीं हो जाय ?

बन्धुओ कुकृत्य कर लेना सरल हो सकता है। पर कुकृत्य करने के पश्चात् अपने आपको सुस्थिर रख पाना बडा कठिन होता है। चोर का मन कच्चा होता है। यद्यपि वह साहस करके बडी-बडी चोरियाँ भी कर लेता है फिर भी उसके मन के किसी कोने मे भय छिपा रहता है। इसलिए चोर को पहचानने के लिए कहावत चरितार्थ है कि 'चोर की दाढी मे तिनका'। इसी तरह अन्यान्य कुकृत्य करने वालो के विषय मे भी समझना चाहिये। उन ग्यारह ही महारानियो का कुकृत्य आज उनके सामने भयावह रूप से चित्रपट की भाति उभर रहा था। फिर भी वे सभल कर चल रही थीं कि कहीं उनका कुकृत्य प्रकट न हो जाय।

विश्वसुन्दरी भी स्वय मे सकोच करती हुई एक कोने मे दुबककर बैठी थी।

शीलावती ने अपने विद्यागुरु बाबा ब्रह्मानन्द का स्मरण किया जिससे बाबा ब्रह्मानन्द भी दूर से आते हुए दृष्टिगोचर हुए। सबने उठकर बाबा का स्वागत किया। बाबा के आ जाने पर भोज प्रारम्भ हुआ। चम्पा एव आनन्दपुर की जनता आनन्द के साथ विभिन्न तरह के व्यञ्जनो का आस्वादन करती हुई उन व्यञ्जनो की सराहना कर रही थी कि ऐसे व्यञ्जन तो हमने पूर्व मे कभी [illegible] खाये। और तो क्या स्वय महाराजा चन्द्रसेन भी आश्चर्यचकित थे। [illegible] कर रहे थे कि ऐसा सुस्वादु भोजन शीलावती ने कैसे क्या निष्पादित किया। [illegible] तक ऐसा भोजन पूर्व मे कभी नही किया था। यद्यपि मैं

शीलावती के हाथ का भोजन पूर्व मे भी कर चुका हूँ। पर आज का भोजन तो उससे अलग ढग का ही है। इस प्रकार विचार करते हुए राजा, राजमन्त्री आदि सभी मत्र मुग्ध से भोजन कर रहे थे।

भोजन सम्पूर्ण हो जाने पर वह भवन सभा भवन के रूप मे परिवर्तित हो जाता है।

'शीलावती ! आज अब तुमको उन लड्डुओ का रहस्य अवश्य बताना होगा। तुमने उस दिन कहा था कि समय आने पर आपको इनका रहस्य भी ज्ञात हो सकता है।' चन्द्रसेन ने कहा। पूज्यवर, आपकी जिज्ञासा मैं अवश्य पूर्ण करूगी। उसका सकेत मिलते ही दासिया उन चार मोदको को जो सुरक्षित रखे हुए थे ले आयीं। उन मोदको को देखते ही ग्यारह रानियो के तो होसले पस्त हो गये। वे एक दूसरी के सामने देखने लगीं। एक दूसरी के सामने देखती नहीं तो ओर क्या करती। व्यक्ति यह जानता है कि मिर्च खाने से मुह जलेगा फिर भी जिह्वा–लोलुपता के कारण मिर्च खा लेता है। जब वह मिर्च खा लेता है तो उसका नतीजा भी उसी को भुगतना ही पडेगा। व्यक्ति चाहे कि मैं धूप मे खडा भी रहू और पसीना भी न बहे तो क्या यह शक्य है। नहीं। वैसे ही कोई व्यक्ति चाहे कि मैं पाप कार्य तो करता ही रहू पर उसका फल मुझे न मिले, ऐसा कभी सम्भव हो सकता है ? आप कहेगे नही हो सकता। बन्धुओ विचार करिये आप और हम अथवा अन्य साधारण व्यक्तियो का तो कहना ही क्या ? पर जो सर्वज्ञ सर्वदर्शी हो जाते हैं उनको भी कर्मो का फल भोग तो करना ही पडता है। कर्म का फल भोगे बिना उनको भी मुक्ति नही होती।

दुरात्मा पाप करती हुई हर्षित होती है। कुछ समय तक मिली सफलता में फूली नहीं समाती, पर जब पाप का घडा फूटने लगता है तो उनके पैर जमीन मे धसने लगते हैं। उनकी आखो के सामने अधेरा छाने लगता है। उनकी बुद्धि उस समय इतनी कुण्ठित हो जाती है कि उनको अपने बचाव का कोई उपाय नहीं सूझता। यही दशा उन ग्यारह महारानियो की बन रही थी। इतने समय तक तो वे अपनी योजना बना–बनाकर मुग्ध हो रही थी। पर अब जब उनके पाप का पर्दा फास होने वाला था तो उनकी दशा देखते ही बनती थी।

मोदको के आ जाने पर शीलावती ने बाबा ब्रह्मानन्द को प्रणति पूर्वक निवेदन किया कि–'गुरुदेव इन मोदको पर आप ही कुछ प्रकाश डालने की

कृपा करे। तब बाबा ब्रह्मानन्द ने महाराजा चन्द्रसेन को सम्बोधित कर कहाकि महाराजा। पत्नी का धर्म होता है कि वह पति की सुरक्षा का, पति के रहन सहन का पूरा-पूरा ध्यान रखे। शीलावती ने उसी कर्त्तव्य पालन की भावना से कुछ चिन्तन किया। जब आनन्दपुर के महाराजा के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ तो उसके मन मे विचार आया कि "मेरे विषय मे इनको जानकारी कैसी मिली ?" उसे जब यह ज्ञात हुआ कि मेरे साथ विवाह करने की प्रेरणा बाबा ब्रह्मानन्द की बहिन ने दी है, तो उसे इसमे कुछ दाल मे काला नजर आया। तब वह विचारने लगी कि मैं बाबा ब्रह्मानन्द को अच्छी तरह से जानती हूँ। वे मेरे शिक्षा गुरु हैं। उनके कोई भी बहन न थी, और न है। फिर उनकी बहन यहा आनन्दपुर मे कैसे आयी ? क्या कुछ षड्यन्त्र है ? उसका मस्तिष्क उस षडयन्त्र की खोज करने की कल्पना मे खो गया। उसने आनन्दसेन से भी निवेदन कर दिया कि आप कही भी पधारे तो उसकी सूचना उसे अवश्य दे दे ताकि कोई अनहोनी घटना हो तो वहा कुछ उपाय कर सके। उसने इसके लिए कई अत्यन्त विश्वसनीय व्यक्तियो को भी इधर-उधर भेजा। उनसे कुछ अस्पष्ट सूत्र मिला कि स्वय को बाबा ब्रह्मानन्द की बहिन बताकर आनन्दपुर मे रहने वाली औरत चम्पानगर मे रहती है। इससे वह और भी सतर्क हो गयी।

महाराज जब आपने आनन्दसेन के साथ उनको भी चम्पानगरी के लिए आमन्त्रित किया तो आपके सस्नेह आमत्रण को टालने का भी यह एक मुख्य कारण था कि वे तीनो एक साथ वहा नही जावे क्योकि चम्पा मे आनन्दसेन के प्रति षड्यन्त्र करने वालो का कुछ सूत्र जो मिल चुका था।

जब आनन्दसेन को साथ लेकर आप चम्पा के लिए प्रस्थान कर गये और इसकी सूचना जब उसे मिली तो उसने वहा की रिपोर्ट जानने के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग किया। उससे मिली जानकारी से वह बडी व्यग्र हो गयी। क्योकि चम्पा मे बडा भारी षड्यन्त्र रचा गया था। उस षडयन्त्र से महाराज आनन्दसेन का जीवन खतरे से खाली नही था। अत रूप परिवर्तनीय विद्या से रूप परिवर्तन कर वह आनन्दसेन की सुरक्षा के लिए तत्पर हुई। चम्पा मे भोजन के लिए थाल परोसे गये और जैसे ही भूपाल आनन्दसेन भोजन के लिए तत्परित हुए कि शीलावती जो चील के रूप मे थी उन मोदको को लेकर उड गयी। यह दृश्य आप सबने प्रत्यक्ष देखा ही था। उन्ही मोदको को आप अभी यहाँ देखकर इतना तो जान ही गये कि चील के रूप मे शीलावती ही थी।

बाबाजी यहॉ तक तो ठीक है कि यह मोदक वही होने से यह समझा जा सकता है कि चील के रूप मे शीलावती ही थी। पर शीलावती ने ऐसा किया क्यों ? महाराज चन्द्रसेन ने पूछा।

महाराज मुख्य रहस्य की बात तो यही है। आप जब जानना ही चाहते है तो वह रहस्य भी अब रहस्य नहीं रह पायेगा। कहकर बाबा ने पानी लाने का सकेत किया। दासियॉ तत्काल पानी के भरे दो बर्तन ले आयी। बाबा के आदेश से उन लड्डुओ मे से एक लड्डु को पानी मे घोलने का आदेश दिया। पानी मे मोदक को घोलते ही वह पानी एकदम हरा हो गया। उस पानी को महाराज चन्द्रसेन को दिखाते हुए बाबा ने कहा—महाराज ! इमसे इतना तीव्र विष (जहर) मिलाया गया है कि जो व्यक्ति इन मोदको का एक नवाला भी खाले तो उसकी जीवन लीला तत्काल समाप्त हो जाय। इसी तरह इन चारो मोदको मे भयकर विष (Poison) मिलाया हुआ है।

मोदको का रहस्य जानकर महाराजा चन्द्रसेन एकदम से कुपित हो गये। उस कोप मुद्रा मे उन्होने ग्यारह महारानियो की तरफ देखा। वे एकदम सहम गयीं। इतने मे पुन बाबा ने कहना प्रारम्भ किया। महाराज ! थोडी बात और सुनिये उसके पश्चात् ही कुछ निर्णय लेना योग्य रहेगा।

महाराज पुन बाबा की बात सुनने मे तल्लीन हो गये। बाबा ने कहा महाराज आपको भी यह तो ज्ञात हो ही गया कि—आनन्दसेन के माता—पिता का अभी तक कोई पता नही लग पाया है। इस आनन्दसेन का बाल्यकाल मेरे पास बीता। इनका लालन—पालन भी करुणा के वशीभूत होकर मैंने ही किया। पर इनको मारने का षडयन्त्र जब राज परिवार से सम्बन्ध रखता है। इसके पीछे कोई भारी राज होने का सकेत मिलता है। कुछ क्षण रुककर बाबा पुन कहने लगे—राजन् ऐसे कई प्रबल प्रमाणो से यह भली भाति सिद्ध होता है कि यहा आनन्दसेन और चम्पकमाला चम्पा नरेश चन्द्रसेन की सन्तान एव महारानी विश्वसुन्दरी के अग जात हैं।

महाराजा चन्द्रसेन गम्भीर मुद्रा मे बोले—बाबाजी ! आप गृहत्यागी है आपको झूठ साच करने की आवश्यकता भी नही है। यह मैं जानता हूँ। आपकी शक्ति से अपरिचित नहीं हूँ। पर आप जो कह रहे हैं काश ! एसा ही होता ? मेरी कहा नसीब कि ऐसी सन्तानो का मैं पिता कहलाऊ।

महाराज अब जैसे—जैसे परते खुलती जायेगी वैसे—वैसे बात भी स्पष्ट होती जायेगी। सर्व प्रथम तो यह 'बाल' शिशु के रूप मे मुझे एक जंगल

कूप मे रोते हुए मिले थे। यह जिस दिन मुझे मिले थे, वे कुछ घन्टो पूर्व ही जन्मे हुए थे। उसी दिन महारानी विश्वसुन्दरी द्वारा कुतिया के पिल्ले जन्म देने की बात सुनने को मिली थी। यद्यपि मुझे उसी समय की स्थिति को देखकर मैं उस समय मौन रहा। मेरे पास रहते हुए इन्हे सोलह वर्ष व्यतीत हो गये। एक बार चम्पा के वार्षिकोत्सव मे मल्ल युद्ध मे भाग लेने इसका मन मचल उठा। मैंने रोका भी सही पर इसकी बलवती भावना से मुझे अनुमति देनी पडी। उस समय भी ग्यारह महारानियो द्वारा इस पर झूठा आरोप लगाया गया। उससे मेरा विश्वास और पुष्ट हो गया।

खासकर गला साफ कर पुन बात को आगे बढाते हुए बाबा बोले—उसके पश्चात् का सारा घटना क्रम आपके ध्यान मे ही है। आप दोनो के पारस्परिक प्रीति सद्भाव—वात्सल्य आदि भी पिता—पुत्र होने मे साधक प्रमाण हैं। इसके उपरान्त अभी जो इन मोदको का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इससे यह भलीभाति सिद्ध है कि महारानी विश्वसुन्दरी ने आनन्दसेन एव चम्पकमाला को ही जन्म दिया था। पर भयकर षड्यत्र से इनकी हर परिस्थिति मे मारने का प्रयास किया गया। यह तो उनका एव चम्पा नगरी का अखण्ड सौभाग्य है कि ये उस षड्यन्त्र से बाल—बाल बचते रहे। अत इन दोनो के पिता होने का गौरव आपको ही है। इसमे कतई सशय का अवकाश नही।

महाराज ने जो अब तक बाबा ब्रह्मानन्द को सुन रहे थे, गम्भीरता के साथ कहा—बाबा जी आपका कथन सत्य के अत्यन्त निकट है। पर इसमे आपने यह नहीं बताया कि इस षड्यन्त्र मे किसका हाथ है ?

महाराज ! यह सामान्य बात है। महारानी विश्वसुन्दरी के प्रसव के समय आपने जिस नाइन को भार सौंपा सारी जानकारी उससे ज्ञात हो सकती है।

महाराज ने तत्काल सलखू नाइन को पकडने का आदेश दिया। सलखू नाइन भागने की कोशिश कर रही थी पर शीलावती के सकेत से उसके अनुचरो ने उसे भाग निकलने मे सफल नही होने दिया। महाराज चन्द्रसेन का आदेश पा उनके सैनिको ने तत्काल उसे बन्दी बनाकर महाराज के सन्मुख उपस्थित किया।

महाराज का चेहरा क्रोध से तमतमा रहा था। महाराज ने गरजते हुए सलखू नाइन से कहा, सलखू अभी तुमने बाबा का वक्तव्य सुना होगा ? तुम यदि सत्य—सत्य बात बतला दोगी तो तुझे अभयदान दिया जा सकता है

अन्यथा मृत्यु दण्ड के अलावा ओर कोई चारा नही हे।

सलखू महाराज के भय से थर–थर काप रही थी। महाराज द्वारा सत्य यात बतलाने पर अभयदान की बात सुनकर थोडी आश्वस्त हुई उसने बडी कठिनाई से शक्ति बटोर कर हकीकत से महाराज को अवगत कराया।

नाइन द्वारा हकीकत सुनकर महाराज ने तत्काल आदेश जारी किया कि ग्यारह ही महारानियो को बन्दी बनाकर उपस्थित किया जाय ?

महारानिया जो कभी पर्दे की आड मे रहती थीं, अनेक दास–दासियॉ जिनकी सेवा में हाथ बाधे खडे रहते थे आज उनको सहयोग देने वाला उस समा मे कोई नही था। महाराजा के भय से उनके शरीर थर–थर धूज रहे थे। वे स्वय में असहाय महसूस कर रही थीं।

'सलखू नाइन ने जो बात कही क्या वह सत्य ह। तुम सबको मजूर है। महाराजा ने गर्जते हुए कहा ?

महारानियो के पास नामजूर करने का कोई उपाय ही नही था। उन्होने सिर झुकाकर अपना दोष स्वीकार कर लिया। महाराजा ने दूध का दूध और पानी का पानी रूप न्याय करते हुए कहा।

ग्यारह महारानियो एव सलखू नाइन इन बारहो का अपराध भयकर एव अक्षम्य है। किन्तु सलखू नाइन को हमने सत्य बात बताने के लिए अभयदान दे दिया था। अत ग्यारह महारानियो को मृत्यु दण्ड एव सलखू नाइन को देश (निकाला) की सीमा को तत्काल छोडने का आदेश दिया जा रहा है।

यह आदेश देकर महाराजा अपने सिहासन से उठे और एक तरफ बैठी विश्वसुन्दरी के पास पहुँचकर कहने लगे–प्रिय, मेरा अपराध माफ करना। मेरे अविवेक से तुम्हे जो कष्ट हुआ उसका मुझे भारी खेद है।

स्वामी आप यह क्या कह रहे हैं। आपका इसमे कोई दोष नहीं दोष एक मात्र मेरे कर्मो का ही है। अत आपको क्षमा मागने की कोई आवश्यकता ही नही हैं। कहते हुए विश्वसुन्दरी महाराजा के पैर छूने नीची झुकी कि महाराजा ने उसे अपने सीने से लगाते हुए कहा–प्रिय ! पुत्र पुत्र वधु एव पुत्री इन तीनो को आशीर्वाद दो। तुम्हारी जैसी तपस्विनी सती सुन्दरी का आशीर्वाद उनके लिए अवश्य अखण्ड सौभाग्य कारक हागा।

स्वामी ! यह क्या कह रहे हैं। मैं तो श्री चरणो की दासी हूँ। मेरे मे इतना सामर्थ्य कहा फिर भी आपकी पुण्य प्रभा से उनके सौभाग्य की शहनाई युगो–युगो तक बजती रहेगी।

दोनो उठकर सभा के बीच पहुँचे। आनन्दसेन एव चम्पकमाला ने अपनी–जननी को आज पहली बार देखा था। उनका हृदय बासो उछलने लगा। वे अपने जनक एव जननी के निकट पहुँच कर उनके चरण स्पर्श करने लगे कि माता–पिता ने उनको गले लगा लिया। शीलावती भी कहा पीछे रहने वाली थी वह भी चरण स्पर्श करने पहुँची कि उसे भी विश्वसुन्दरी ने गले लगा लिया। यद्यपि महाराजा चन्द्रसेन पहले भी आनन्दसेन आदि से कई बार मिले थे पर आज के मिलने मे उनको जो आनन्द आ रहा था वैसा पहले कभी नही आया।

विश्वसुन्दरी के आनन्द का तो पारावार ही नही था। अन्धे को ऑखे मिलने से शायद उतनी खुशी नही होगी, जितनी अभी विश्वसुन्दरी को हो रही थी। उसका मातृ हृदय उनको अपने से अलग ही नही करना चाह रहा था। वह बार–बार उनके चेहरे को देखती, उनके माथे को सूगती। उसको इतना हर्ष हुआ कि उसकी चर्म चक्षुए उस हर्ष को सहन नही कर पा रही थी जिससे मोती बरसने शुरू हो गये।

सबके सामान्य होने पर महाराजा चन्द्रसेन ने आनन्दसेन को अपने साथ अर्ध सिहासन पर बिठाया। पिता–पुत्र सूर्य, चन्द्र की भाति सुशोभित हो रहे थे। उपस्थित सारी जनता दोनो के जय–जयकार करने लगी।

महाराजा के आदेश से 11 महारानियो एव सलखू नाइन को वहा ले जाया जाने लगा। इतने मे विश्वसुन्दरी ने खडे होकर महाराजा से निवेदन किया, स्वामी ! हमारे लिए आनन्दसेन एव चम्पकमाला का जन्म आज ही हुआ है। इसलिए क्या यही अच्छा हो कि जन्मोत्सव की खुशिया आज ही हो।

हा–हा तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है। हम अभी आदेश देते हैं कि याचको को मुहमागा दान दिया जाय, बन्दियो को केद से मुक्त कर दिया जाय आदि। महाराजा के मुह से ये शब्द निकलते ही विश्वसुन्दरी बोली–पतिदेव ! आज मे धन्य–धन्य हो गयी। अब कृपा कर मेरी ग्यारह बहनो एव सलखू नाइन को भी बन्धन मुक्ति का आदेश फरमावे। क्योकि आपने बन्दियो को मुक्त करने का आदेश फरमाया ही है। विश्वसुन्दरी जैसे ही चुप हुई कि

आनन्दसेन कहने लगा–पिताश्री, माताजी की माग वस्तुत सत्य है।

महाराजा चन्द्रसेन कहने लगे–तुम लोग क्या कह रहे हो ? जो राजकुल को ही समाप्त करने को तुली हों, क्या उनका अपराध क्षमा करने योग्य है ?

पिताश्री उसमे उनका क्या अपराध, अपराध प्रत्येक व्यक्ति के स्वार्जित कर्मों का है। वे माताए तो केवल निमित्त मात्र हैं। दूसरी बात यदि पुत्र के जन्मते ही माता मर जाती है तो उस पुत्र का जन्म इतना मगलकारी कैसे हो सकता है ? अत जब आपश्री मेरा जन्मोत्सव मना रहे हो तो क्या इस खुशी मे मेरी उन माताओं को सम्मिलित नहीं रहना चाहिये। मेरे जन्म (प्रकट होने से) से यदि माताओ पर सकट आता है तो मेरा यह जन्म मगलकारी नहीं मानता।

महाराजा विश्वसुन्दरी एव आनन्दसेन की ऐसी विशुद्ध भावना देखकर गद्‌गद् हो उठे। वे विचार करने लगे–कहा तो उन ग्यारह रानियो के विचार और कहा इनके विचार। आखिर विश्वसुन्दरी एव आनन्दसेन के विचारो को सम्मान देते हुए महाराजा ने ग्यारह महारानियो से कहा–यद्यपि तुम लोगो का अपराध भयकर है जिसे माफ करना न्याय के अन्तर्गत नहीं है तथापि न्याय व्यक्ति को सुधारना चाहता है। अत तुम लोग यदि विश्वसुन्दरी एव आनन्दसेन आदि से अपनी गल्ती की क्षमा याचना कर लेती हो और वे तुम लोगों को क्षमा कर दे तो मृत्यु दण्ड को देश निष्कासन में परिवर्तित किया जा सकता है।

महाराज के न्याय पुरस्सर वचन सुनकर ग्यारहों महारानिया विश्वसुन्दरी एव आनन्दसेन के पास पहुँच उनके चरणो में गिरकर क्षमा मागने लगीं। पर विश्वसुन्दरी एव आनन्दसेन ने उनको बीच मे ही सम्भाल लिया ओर कहने लगे आप यह क्या कर रही हैं। मे तो आपकी लघु भगिनी हूँ। मैं तो आपका पुत्र हूँ आपके लिए यह शोभा नहीं देता।

रुदन करती हुई सी ग्यारहो महारानिया बोल पडी–हमे अब और लज्जित न करे। हमने उच्चकुल मे जन्म अवश्य लिया है पर सस्कारो की दृष्टि से हम एक दम निकृष्ट हैं। आप हमारे अपराधो को क्षमा कर दे जिससे हमारे मन को कुछ सन्तुष्टि मिल सकेगी।

विश्वसुन्दरी एव आनन्दसेन कहने लगे कि आप ऐसे हीन विचार अपने मन मे मत लाइये आप महाराज चन्द्रसेन की महारानियाँ हो आपके मन मे सम्मान एव गौरव रहना चाहिये। कभी–कभी ऐसा होता है कि चलता हुआ

व्यक्ति भी गिर जाता है। पर वह यदि गिरकर पुन सम्भल जाता है तो वह गिरा हुआ नही कहा जाता। अत अब आपको किसी तरह का मन मे खेद नही रखना चाहिये।

महारानी विश्वसुन्दरी एव आनन्दसेन द्वारा आश्वस्त करने पर उन महारानियो का मन काफी हल्का हो गया।

महारानी विश्वसुन्दरी एव आनन्दसेन ने महाराजा चन्द्रसेन से काफी आग्रह किया कि इनके देश निष्कासन दण्डादेश को निरस्त कर दिया जाय। पर महाराजा चन्द्रसेन ने वह निवेदन अस्वीकार करते हुए कहा—नहीं यह दण्डादेश अब निरस्त नही हो सकता। भविष्य मे ऐसी गल्ती कोई नहीं करे इसलिए यह दण्ड तो उन्हे भुगतना ही पडेगा।

महाराजा के वचनो को सुनकर आनन्दसेन आनन्दसेन ने घोषणा की कि मेरी ग्यारहो माताओ को महाराजा ने देश निकाला देने का आदेश दिया है, वह दण्डादेश भारी मन से हमे भी स्वीकार करना ही होगा ? पर मैं मेरी ग्यारहो माताओ से कर बद्ध निवेदन करूगा कि वे चम्पा नगरी की सीमा से अलग बसे उस आनन्दपुर के राजमहलो मे सानन्द पधारे और वहीं पर बिराजे जिससे महाराज की आज्ञा का भी पालन हो जायेगा और मेरी भावना भी पूर्ण हो जायेगी।

ग्यारहो महारानियो ने कहा—आनन्दसेन तुम्हारी भावना उच्च है पर हमारे पाप का प्रायश्चित करने के लिए हमको इधर—उधर की खाक छानना ही योग्य है।

आनन्दसेन ने इसका तीव्र विरोध करते हुए कहा—नहीं ऐसा कदापि नही होगा, आपको यहा रहना ही होगा ? क्या मा अपने लडके के घर रहना नहीं चाहेगी ? क्या मैं इतने वर्षो के बाद भी अपनी इतनी माताओ के स्नेह से वचित रहूगा ?

दृश्य बडा करुणाप्रद था। सारी जनमेदनी की आखो मे मोती छलक रहे थे। चम्पा एव आनन्दपुर की जनता आनन्दसेन के विराट व्यक्तित्व पर मुग्ध थी, और स्वय को गौरवान्वित मान रही थी।

बाबा ब्रह्मानन्द भी उस दृश्य से द्रवित हो उठे। वे विचार करने लगे—अहो ! यह ससार क्या है ? इसका कही ओर छोर भी है या नहीं ? कुछ समय पहले जो एक के प्राण हरने की कलुषित भावना सजोये थी उन्हीं के हृदय मे अब वात्सल्य का झरना निर्झर रहा है। इस तरह वे इस ससार की

मोहमाया आदि के स्वरूप का चिन्तन कर ही रहे थे कि इतने मे उद्यान रक्षक द्वारा दी सूचना उनके कर्ण मे पडी। उद्यान रक्षक महाराजा चन्द्रसेन से निवेदन कर रहा था कि जय हो, विजय हो महाराजा चन्द्रसेन की जय हो। स्वामी तरण तारण की जहाज, मन के उद्वेगो से शात, इन्द्रियों का दमन करने वाले, सागर के समान गम्भीर, निर्मल ज्ञान दर्शन चारित्र के आराधक, तप से तेजस्वी, भव्य प्राणियो के आधार गुणो के भण्डार आर्य जिन सेन का शिष्य मण्डली सहित उद्यान मे पर्दापण हुआ है।

उद्यान रक्षक द्वारा दी गयी जानकारी से महाराज चन्द्रसेन आनन्दसेन एव अन्य सभी लोग बडे प्रमुदित हुए। महाराज ने अपने सिहासन से उठकर जिस दिशा में आर्य जिनसेन विराज रहे थे उस दिशा मे भाव वन्दन किया। जनता ने भी महाराज का अनुकरण किया। इसके पश्चात् महाराजा ने कहा–ऐसे वीतरागता के साधक सत महात्माओ के दर्शन बडे पुण्योदय से ही प्राप्त होते हैं। दर्शन तो क्या ऐसे सत महात्माओ का नाम गौत्र श्रवण भी आनन्ददायक होता है। इतना कहकर महाराजा ने उद्यान रक्षक को भरपूर पुरस्कार दिया।

फिर महाराजा ने मुनि दर्शन जाने की घोषणा की। सारी जनता भी मुनि दर्शन को लालायित थी। महारजा चन्द्रसेन एव आनन्दसेन चतुर्गिणी सेना सजाकर आर्य जिनसेन के दर्शनार्थ जाने लगे।

बन्धुओ, आप लोग विचार कर रहे होगे कि महाराजा को मुनि दर्शन के लिए ही जाना था तो इस प्रकार आडम्बर की क्या आवश्यकता थी ? क्या लोगो को यह देखना था कि महाराजा मुनि दर्शन को जा रहे हैं ? आप सोचते हो न सोचते हो पर आज के कई व्यक्ति ऐसा सोचते हैं कई प्रश्न भी करते हैं कि महाराज बाहर से इतने दर्शनार्थी आते हैं। वे सब आपके दर्शन के निमित्त आते हैं तो क्या उनका आवागमन से होने वाला पाप आपको नही लगेगा ? मै उनको उत्तर भी देता हूँ। आज मै आप से पूछ रहा हूँ कि क्या आपको मैने बुलाया या आप लोग अपने से आये ?

सभासद–अपने मन से।

तो बन्धुओ विचार कीजिये आपके आने जाने का पाप हमको क्यो लगेगा। भगवान महावीर के दर्शनार्थ भी हजारो हजार मानव आते थे। देव भी देवलोक से हजारो योजन पार कर भगवान की सभा मे उपस्थित होते थे। उनके आवागमन से हिंसा होना सुनिश्चित था। इतना धर्म मे उल्लास के

आया है। महाराजा श्रेणिक जब भगवान के दर्शनार्थ जा रहा था तो एक घोडे के टाप से नन्दन मणिहार का जीव जो उस समय मेढक के रूप मे था, समाप्त हो गया। इस प्रकार की हिसा जानते हुए भी भगवान ने किसी को ऐसा नहीं कहा कि मेरे दर्शन करने क्यो आते हो अथवा नही आना चाहिये।

भगवान महावीर ने सूत्रकृताग सूत्र मे स्पष्ट फरमाया है कि जिस कार्य मे पुण्य पाप दोनो होते हो ऐसे कार्य मे साधु को मौन रहना चाहिये। क्योकि ना करने से व्यक्तियो के पुण्य मे अन्तराय आती है। हा कहने से आरम्भ समारम्भ का अनुमोदन लगता है। अत ऐसे कार्य जिसमे पुण्य भी होता हो, और पाप भी हो, साधु को हा या ना नही कहना चाहिये।

बन्धुओ, यह विषय काफी लम्बा है। अधिक विस्तार मे जाना उचित नहीं समझता फिर भी महाराज चन्द्रसेन अथवा अन्य राजा महाराजा सत दर्शन जाते समय जो सेना सजाकर जाते थे उसके पीछे उनका उद्देश्य जिनशासन की प्रभावना का भी रहा हुआ था।

महाराजा चन्द्रसेन एव आनन्दसेन के साथ उपस्थित जनता भी उनके पीछे–पीछे चलने लगी। उद्यान के निकट पहुँचने पर महाराजा आदि सवारी से नीचे उतरे और पाच अभिगमन को ध्यान में लेकर आर्य जिनसेन की सेवा मे पहुँचे। उस विशाल परिषद् को आर्य जिनसेन ने धर्म का उपदेश दिया।

आर्य जिनसेन बतला रहे थे हे कि भव्य प्राणियो, यह ससार क्षण भगुर है, क्षण भगुर का तात्पर्य–ससार के भौतिक सुखो से है जिसके पीछे मानव रात–दिन पडा रहता है। वे सुख वस्तुत सुख नहीं– सुखाभास मात्र है। उनसे कभी शाश्वत सुख मिल नहीं सकता। यदि किसी को सच्चा सुख प्राप्त करना हो तो वीतराग मार्ग का अवलम्बन लेना श्रेयस्कर है।

आर्य जिंनसेन ने यह भी फरमाया कि ससार का मूल क्रोध, मान, माया, लोभ, राग–द्वेष आदि हैं। इन्हीं के कारण यह जीव पुन पुन जन्म–मरण के चक्कर मे पडा रहता है। इसलिए व्यक्ति को प्रत्येक क्रिया के पहले सोचना चाहिये कि कोनसी क्रिया पुण्योपार्जन कराने वाली हे ओर किस क्रिया से पाप की वृद्धि होने वाली हैं। क्योकि बतलाया गया है कि जो भी शुभाशुभ क्रिया की जाती है, वह फलदायिनी होती है। जो व्यक्ति दूसरे के प्रति द्वेष भाव रखता हे तो उससे कभी–कभी वैरानुवन्धी वेर कर्मो का भी उपार्जन कर लेता है। और जब तक उन पूर्वाजित कर्मो का क्षय नहीं हो जाता तब तक आत्मा शाश्वत शाति को वर नहीं सकती। 

19

प्रवचन सभा मे एक जिज्ञासु खडा हुआ और विनयपूर्वक पूछने लगा–महाज्ञानी गुरुदेव आपने फरमाया सो परम सत्य है कि ससार मे घटित होने वाले घटनाचक्रो मे प्राणियो के पूर्वार्जित कर्मो का फल भोग ही अधिकाशत दृष्टिगत होता है। किन्तु मेरी जिज्ञासा है कि चन्द्रसेन–आनन्दसेन के घटना चक्र में ग्यारह रानियों तथा सलखू नाइन के कार्यो में प्रतिशोध की आग क्यों जलती रही तथा वे निरन्तर आनन्दसेन की हत्या करने का षडयत्र क्यो रचती रहीं ? कृपा करके इस तथ्य का स्पष्टीकरण फरमावे ताकि व्यक्तियो के प्रत्यक्ष आचरण का रहस्य समझ मे आ सके।

भद्रजनो जिज्ञासु ने जो प्रश्न किया है, वह जीवन के रहस्यो को समझने की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यह सब एक प्रकार से कर्मो का ही चक्र है। सामान्य जन तो जो कुछ भी बाहरी वातावरणमे घटित होता है उसे ही अपनी स्थूल दृष्टि से देखता है लेकिन ज्ञानी जन उन घटनाओ की आन्तरिकता मे अपनी ज्ञान दृष्टि फैलाते है उनके मूल कारणो को समझते है तथा जीवन विकास की समीक्षा करके आत्मोत्थान की प्रक्रिया उपदेशित करते है। चन्द्रसेन आनन्दसेन के इस घटना चक्र को इसी दृष्टि से समझाने के लिये हम आपको सभी सम्बन्धित व्यक्तियो के पूर्व का भव का विवरण सुना रहे है।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र मे तिलकपुर नाम से एक शहर था जहां के राजा का नाम सुमती था। उसके एक राजकुमार था। जिसका नाम राघव था। राघव राजपुत्र था और युवावस्था मे कुसगति मे पड गया जिसके कारण वह अतीव दुराचारी एव उद्दण्ड हो गया। उसके बारह पत्नियां थीं किन्तु इसके बावजूद वह पर–स्त्रियो को ताकता रहता था तथा अपनी वासना पूर्ति के हेतु उनके पीछे भटकता रहता था।

तिलकपुर मे ही एक सेठ रहते थे जिनका नाम सुदत्त था। इस सेठ की पत्नि अत्यन्त सुन्दरी तथा रूपवती थी। उसका नाम गुणसुन्दरी था। एक बार राजकुमार राघव ने गुणसुन्दरी को देख लिया और देखते ही उसके रूप पर वह मोहित हो उठा। तब मुग्ध भाव से वह गुणसुन्दरी को प्राप्त करने की चेष्टा करने लगा। एक दिन मौका पाकर वह गुणसुन्दरी के पास पहुंचा और प्रणय याचना करने लगा। इस पर गुणसुन्दरी ने तिरस्कार की दृष्टि से देखा। किन्तु उस की [illegible]

आया है। महाराजा श्रेणिक जब भगवान के दर्शनार्थ जा रहा था तो एक घोडे के टाप से नन्दन मणिहार का जीव जो उस समय मेढक के रूप मे था, समाप्त हो गया। इस प्रकार की हिसा जानते हुए भी भगवान ने किसी को ऐसा नहीं कहा कि मेरे दर्शन करने क्यो आते हो अथवा नही आना चाहिये।

भगवान महावीर ने सूत्रकृताग सूत्र मे स्पष्ट फरमाया है कि जिस कार्य मे पुण्य पाप दोनो होते हो ऐसे कार्य मे साधु को मौन रहना चाहिये। क्योकि ना करने से व्यक्तियो के पुण्य मे अन्तराय आती है। हा कहने से आरम्भ समारम्भ का अनुमोदन लगता है। अत ऐसे कार्य जिसमे पुण्य भी होता हो, और पाप भी हो, साधु को हा या ना नहीं कहना चाहिये।

बन्धुओ, यह विषय काफी लम्बा है। अधिक विस्तार मे जाना उचित नहीं समझता फिर भी महाराज चन्द्रसेन अथवा अन्य राजा महाराजा सत दर्शन जाते समय जो सेना सजाकर जाते थे उसके पीछे उनका उद्देश्य जिनशासन की प्रभावना का भी रहा हुआ था।

महाराजा चन्द्रसेन एव आनन्दसेन के साथ उपस्थित जनता भी उनके पीछे—पीछे चलने लगी। उद्यान के निकट पहुँचने पर महाराजा आदि सवारी से नीचे उतरे और पाच अभिगमन को ध्यान मे लेकर आर्य जिनसेन की सेवा मे पहुँचे। उस विशाल परिषद् को आर्य जिनसेन ने धर्म का उपदेश दिया।

आर्य जिनसेन बतला रहे थे हे कि भव्य प्राणियो, यह ससार क्षण भगुर है, क्षण भगुर का तात्पर्य—ससार के भौतिक सुखो से है जिसके पीछे मानव रात—दिन पडा रहता है। वे सुख वस्तुत सुख नही— सुखाभास मात्र है। उनसे कभी शाश्वत सुख मिल नहीं सकता। यदि किसी को सच्चा सुख प्राप्त करना हो तो वीतराग मार्ग का अवलम्बन लेना श्रेयस्कर है।

आर्य जिनसेन ने यह भी फरमाया कि ससार का मूल क्रोध, मान, माया, लोभ, राग—द्वेष आदि हैं। इन्हीं के कारण यह जीव पुन पुन जन्म—मरण के चक्कर मे पडा रहता है। इसलिए व्यक्ति को प्रत्येक क्रिया के पहले सोचना चाहिये कि कौनसी क्रिया पुण्योपार्जन कराने वाली है और किस क्रिया से पाप की वृद्धि होने वाली हैं। क्योकि बतलाया गया है कि जो भी शुभाशुभ क्रिया की जाती है, वह फलदायिनी होती है। जो व्यक्ति दूसरे के प्रति द्वेष भाव रखता हे तो उससे कभी—कभी वैरानुबन्धी वेर कर्मो का भी उपार्जन कर लेता है। और जब तक उन पूर्वाजित कर्मो का क्षय नहीं हो जाता तब तक आत्मा शाश्वत शाति को वर नहीं सकती। 

19

प्रवचन सभा मे एक जिज्ञासु खडा हुआ और विनयपूर्वक पूछने लगा–महाज्ञानी गुरुदेव, आपने फरमाया सो परम सत्य है कि ससार में घटित होने वाले घटनाचक्रो मे प्राणियों के पूर्वाजित कर्मो का फल भोग ही अधिकाशत दृष्टिगत होता है। किन्तु मेरी जिज्ञासा है कि चन्द्रसेन–आनन्दसेन के घटना चक्र में ग्यारह रानियो तथा सलखू नाइन के कार्यो में प्रतिशोध की आग क्यों जलती रही तथा वे निरन्तर आनन्दसेन की हत्या करने का षड्यत्र क्यो रचती रही ? कृपा करके इस तथ्य का स्पष्टीकरण फरमावे ताकि व्यक्तियो के प्रत्यक्ष आचरण का रहस्य समझ मे आ सके।

भद्रजनो, जिज्ञासु ने जो प्रश्न किया है, वह जीवन के रहस्यो को समझने की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यह सब एक प्रकार से कर्मो का ही चक्र है। सामान्य जन तो जो कुछ भी बाहरी वातावरणमें घटित होता है उसे ही अपनी स्थूल दृष्टि से देखता है लेकिन ज्ञानी जन उन घटनाओ की आन्तरिकता मे अपनी ज्ञान दृष्टि फैलाते हैं उनके मूल कारणों को समझते हैं तथा जीवन विकास की समीक्षा करके आत्मोत्थान की प्रक्रिया उपदेशित करते हैं। चन्द्रसेन आनन्दसेन के इस घटना चक्र को इसी दृष्टि से समझाने के लिये हम आपको सभी सम्बन्धित व्यक्तियो के पूर्व का भव का विवरण सुना रहे हैं।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र मे तिलकपुर नाम से एक शहर था जहाँ के राजा का नाम समती था। उसके एक राजकुमार था। जिसका नाम राघव था। राघव राजपुत्र था और युवावस्था मे कुसगति में पड गया जिसके कारण वह अतीव दुराचारी एव उद्दण्ड हो गया। उसके बारह पत्निया थीं किन्तु उनके बावजूद वह पर–स्त्रियो को ताकता रहता था तथा अपनी वासना पूर्ति के हेतु उनके पीछे भटकता रहता था।

तिलकपुर में ही एक सेठ रहते थे जिनका नाम सुदत्त था। इन सेठ की पत्नि अत्यन्त सुन्दरी तथा रूपवती थी। उसका नाम गुणसुन्दरी था। एक बार राजकुमार राघव ने गुणसुन्दरी को देख लिया और देखते ही उसके रूप पर वह मोहित हो उठा। तब मुग्ध भाव से वह गुणसुन्दरी को प्राप्त करने की कल्पना करने लगा। एक दिन मौका पाकर वह गुणसुन्दरी के पास पहुँचा और प्रणय याचना करने लगा। इस पर गुणसुन्दरी ने समझाने की दृष्टि से कहा। किन्तु उस की वाणी में शील रक्षा की दृढता भरी हुई थी कि वे

राजकुमार हैं, राजवश की गरिमा को जानते हुए उन्हे ऐसा निकृष्ट व्यवहार नही करना चाहिये। राघव तो अपनी वासना मे अन्धा हो रहा था, उसने बलात्कार करने की कुचेष्टा की। इस पर सतीत्व का तेज प्रस्फुटित हो गया और गुणसुन्दरी ने ऐसी ललकार लगाई कि राघव को वहॉ से भागते ही बना। वह भाग तो गया किन्तु उसकी वासना ने उसको अधिक क्रूर बना दिया। वह किसी भी तरह गुणसुन्दरी को अपने अधीन करने के उपाय सोचने लगा।

उधर गुणसुन्दरी ने सारी घटना अपने पति सुदत्त सेठ को बताई और यह सुझाव दिया कि उस उद्दण्ड राजकुमार का हम सामना नहीं कर सकेगे और वह इस सम्बन्ध मे फिर कोई मुसीबत खडी कर सकता है, इसलिये हमको यह नगर छोडकर कहीं अन्यत्र जा बसना चाहिये। लेकिन सुदत्त सेठ को यह सुझाव अच्छा नही लगा क्योकि उसने इस तरह भाग जाने को कायरतापूर्ण माना। उसने स्वय ने नवकार मत्र का जाप आरम्भ कर दिया तथा गुणसुन्दरी को भी वैसा ही करने की सलाह दी। दोनो एक चित्त से महामत्र का जाप करने लगे।

ठीक उसी समय राजकुमार राघव रात के घने अधकार मे चमचमाती नगी तलवार थामे सुदत्त सेठ की हवेली पर जा पहुॅचा और द्वार खटखटाने लगा। सुदत्त सेठ और गुणसुन्दरी ने जब यह देखा कि राजकुमार राघव क्रूर बनकर अपने मलिन उद्देश्य को पूरा करने के लिये आ ही पहुॅचा है तो उन्हे उस समय उससे बचाव करने का यही उपाय समझ मे आया कि हवेली के सभी दरवाजो को भीतर से अच्छी तरह बद कर लिया जाय और वे दोनो तलघर मे जाकर छिप जाय। उन्होने ऐसा ही किया। हवेली के सभी दरवाजे तथा खिडकियॉ बन्द हो जाने के कारण राजकुमार हवेली मे प्रवेश नहीं कर पाया और हवेली के चारो ओर रात भर चक्कर लगाता रहा। सुबह होते-होते निराश होकर राजकुमार महलो को लौट गया।

सुदत्त सेठ ने प्रात काल विचार किया कि राघव राजकुमार को उसके कुकृत्य की उचित शिक्षा देना चाहिये। इस विचार से उसने स्त्री का सुन्दर वेश धारण किया और वह उसी अन्दाज मे महल मे पहुॅचकर राजकुमार राघव से मिला। वहॉ औरतो सी झीणी बोली बनाकर सेठ इस तरह बोला जैसे कि घूॅघट मे मुह छुपाए गुणसुन्दरी ही उससे बोल रही हो—राजकुमार, मैं जानती हूॅ कि मैं भी आपसे प्रेम करती हूॅ लेकिन जिस तरीके से आप आए उससे भारी लोकनिन्दा का भय जानकर मैंने आपको डाटा फटकारा। आप मुझे उसके

लिये माफ करे। आज रात को उचित अवसर देखकर मैं आपकी सेवा मे उपस्थित होऊँगी। यह कहकर प्रसन्न मन स्त्री वेशधारी सुदत्त सेठ अपने घर लौट आया तो राजकुमार राघव भी प्रसन्नता से फूल उठा कि अब तो गुणसुन्दरी उसे प्राप्त हो जायगी।

सुदत्त सेठ ने घर पहुँचकर अपना वेश बदला। अब उसने इत्र बेचने वाले की पोशाक पहन ली। फिर इत्रो से भरी पेटी लेकर वह पुन राजकुमार के अन्त पुर में पहुँच गया। उसने राजकुमार की सभी रानियो को ऐसे मनमोहन इत्र की शिशीयाँ भेट कीं कि जिसकी सुगन्ध से वे मदमस्त हो गई। फिर सेठ भी परम स्वरूपवान था सो उसके प्रति वे आसक्त भी बन गई। रानियों ने कहा—इतना मस्त इत्र तो हमने पहली बार सूघा है, इसकी क्या कीमत होगी ? गधी का रूप धरे सुदत्त ने अपनी मस्ती बिखेरते हुए जवाब दिया—मूल्य की कोई बात नहीं। इससे भी बढिया इत्रो का मजा लूटना हो तो आप सब आज रात मे उद्यान मे पहुँच जावे। उस समय हम सब आनन्द रस मे गोते लगा सकेंगे।

राजकुमार राघव जैसे चरित्र का था, वैसे ही चरित्र की उसकी रानियाँ भी थीं। जैसा वे देखती थीं, वैसा ही चरित्र उन्होने अपना भी बना लिया था। गधी पर वे आसक्त तो हो ही चुकी थीं, अब उसके प्रेम—निमन्त्रण पर तो वे निहाल हो गई और उन्होने रात समय उद्यान मे पहुँच जाने का वादा कर लिया।

उधर रात होने पर सुदत्त सेठ ने पुन स्त्री वेश धारण किया और महल में राजकुमार राघव के पास पहुच गया। वह अपने साथ तेज नशे वाली मदिरा ले गया था जो सुगन्ध से भरपूर थी। सेठ ने वह मदिरा राजकुमार को अतिशय मात्रा मे पिला दी जिसका राजकुमार पर ऐसा नशा छाया कि वह गहरी बेहोशी में डूब गया। तब सुदत्त ने उसे रस्सियों से बाधकर अपनी पीठ पर उठाया और अधरे—अधेरे घर ले आया। वहाँ पहुँचकर उसने राजकुमार को अपने तलघर में बन्द कर दिया।

तब सेठ ने पुन गधी का वेश धारण किया और उद्यान में पहुँच गया। बारहों रानियाँ विषय भाव से गधी का इन्तजार कर रही थी अत उसके वहाँ पहुँचते ही वे खुशी से नाच उठीं। वे सब गधी से प्रणय निवेदन करने लगी तब उसने साफ—साफ कह दिया कि वह परस्त्री को माँ बहिन मानता है इसलिये अपने चरित्र का पतन वह कतई नहीं करेगा। जैसी कि उन्होने माग

रखी थी यदि उन्हे बढिया इत्र की चाहना हो तो वे उसके घर पर चली चले सरे वह उन्हे उससे भी बढिया किस्म के भांति-भांति के इत्र भेंट करेगा। वासनाग्रस्त रानियो ने उसकी बात मजूर कर ली यह सोचकर कि गधी अपने मकान पर ले जाकर उनकी इच्छा पूरी कर देगा। हवेली पर सब रानियो को ले जाकर सुदत्त ने उन्हे भी राजकुमार के साथ ही तलघर मे बन्दी बना ली। अट्ठारह माह तक वे सेठ के तलघर में बन्दी बने रहे। राजा ने राजकुमार व उसकी रानियो की चारो ओर खूब खोज कराई किन्तु उनका जब अता-पता नहीं चला तो राजा यह समझकर चुप बैठ गया कि उनका दुष्चरित्र राजकुमार न जाने किसी प्रलोभन मे किसी दूरस्थ राज्य मे सपरिवार बस गया है।

अट्ठारह माह बाद केवलज्ञानी भगवान् तिलकपुर मे पधारे। वहाँ उन्होने अपनी देशना मे कर्म विपाक पर प्रकाश डालते हुए फरमाया कि अज्ञानवश जीव हसते-हसते पाप कर्मों का बध करते हैं लेकिन उन्हे फिर रोते-रोते उनका फल भोगना पडता है। अत कर्मों को बाधते समय उनके कटु फल भोग की कल्पना करके अशुभ कर्म बधन से भव्य जीवो को बचना चाहिये। यह देशना सुनकर सुदत्त सेठ तथा गुणसुन्दरी को अपने कृत्य पर बहुत ही पश्चात्ताप हुआ और उन्होने राजकुमार राघव तथा उसकी बारहो रानियो को तत्काल बधन से छोड देने का निश्चय कर लिया। उन्होने यह भी निर्णय लिया कि इस प्रकार से बाधे गये कर्मों को क्षय करने के लिये वे साधु धर्म भी ग्रहण कर लेगे। तब वे अपनी हवेली पर पहुँचे और तलघर मे जाकर राजकुमार राघव से बोले-आपके राक्षसी कृत्यो से आपको सावधान बनाने के लिये हमने यह व्यवहार किया जिसके लिये हम क्षमाप्रार्थी हैं। आप भविष्य मे ऐसे कृत्य नहीं करेगे-यदि आप ऐसा हमे आश्वासन दे तो हम आपको बन्धन मुक्त कर देगे। उनसे प्रतिज्ञा कराकर सेठ ने सबको छोड दिया।

राजकुमार राघव तथा उसकी बारह रानियाँ वहाँ से उद्यान मे पहुँचे तथा महाराजा को खबर करवाई कि वे विदेशो मे भ्रमण करने चले गये थे सो लौट आये हैं। सयती ने सबका स्वागत किया और बिना पूछे जाने के लिये उलाहना दिया। तब सभी राजमहल में आनन्दपूर्वक रहने लगे।

सुदत्त सेठ और गुणसुन्दरी ने सयम अगीकार करने के बाद कठोर तपाराधना की और आत्म विकास के पथ पर अग्रगामी बन गये। विहार करते-करते वर्षों बाद उनका तिलकपुर मे आगमन हुआ। तब सयती की मृत्यु

के बाद राघव राजा बन चुका था। दोनो के नगर मे आने पर राघव राजा भलीभाति पहिचान गया कि उनको बन्दी बनाने वाले सेठ दम्पत्ति ये ही हैं। इससे उसके हृदय में वैर भावना जाग उठी जिसके फलस्वरूप उसने मुनिजी महाराज एव महासतीजी को जहर डालकर तैयार किये गये लड्डु बहराये। उन्होंने समभाव से उन लड्डुओं को आहार किया और मृत्यु प्राप्त कर देवलोक मे उत्पन्न हुए।

देवलोक की आयु समाप्त करके वे ही सुदत्त व गुणसुन्दरी के जीव यहाँ आनन्दसेन तथा चम्पकमाला के रूप मे उत्पन्न हुए हैं। राजकुमार राघव को सलखू नाइन का जन्म मिला है तो उसकी रानियाँ महाराजा चन्द्रसेन की रानियाँ बनी हैं। पूर्वभव के वैर के कारण ही इस भव में इन सब सम्बन्धियो द्वारा यह ज्ञात घटना चक्र उपस्थित हुआ है। महाराजा चन्द्रसेन की पहली महारानी सत्सग का सयोग मिलने से समता भाव की आराधना मे तत्पर रही। योगी ब्रह्मानन्द और शीलावती के जीव पूर्वभव मे सुदत्त सेठ के मित्र थे अत इस भव में भी उन्होने आनन्दसेन की भलाई की और विपदाओं के समय सहायता पहुँचाई।

अत भव्य जीवो, यह सब कर्मो का ही खेल है किन्तु इस खेल को तोडने की क्षमता भी इसी आत्मा में है। जब वह कर्मों के जोर पर नाचती रहने की बजाय कर्मो की लगाम अपने हाथ मे थाम लेती है और उनसे अपने को मुक्त बना लेती है तो वह स्वयभू हो जाती है। कर्मों के इस खेल के रहस्य को बहुत गहराई से समझने की जरूरत है जिससे आत्मा उन पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर अपनी वृत्तियों को समता के सम्बल से सचालित कर सके। मूल रूप से कर्मो पर आत्मा का नियन्त्रण समता की साधना से सम्भव होता है अन्यथा विषमता की दुर्भावनाओ में जकडकर आत्मा बेभान बनी कर्मों के हाथों मे नाचती रहती है। इसलिये विषमता को त्याग कर भव्य जीवों को समता की साधना की ओर अग्रसर बनना चाहिये।

बाबा ब्रह्मानन्द ने जो ससार के घटना चक्र को सुनकर द्रवित हुए जा रहे थे, खडे होकर कहा—पूज्य गुरुदेव वैसे मैं देशत ससार से हटकर साधना मार्ग मे लगा हूँ। किन्तु उसमें भी कुछ मात्रा में तेरा मेरा रह ही जाता है। इसलिए अब से आपश्री के चरणों मे सर्व विरति चारित्र अगीकार करना चाहता हूँ।

आर्य जिनसेन ने जनता को सम्बोधित करते हुए कहा—वैसे आप बाबा ब्रह्मानन्द को अन्य लिग मे देखकर अन्य कुछ कल्पना कर रहे होगे पर इन्होने अन्य लिग मे रहते हुए अणुव्रत आदि श्रावक धर्म स्वीकार कर रखा है। जैसा कि प्रभु महावीर के समय अम्बड सन्यासी ने देशचारित्र स्वीकार कर रखा था। इन्होने देशव्रत की आराधना करते हुए अपने जीवन को साधना मार्ग पर आरूढ कर रखा है। इनकी साधना से चम्पानगरी एव आस—पास के राज्य अच्छे खासे प्रभावित हैं। अब सर्वविरति चारित्र को स्वीकार करने को तत्परित हैं।

महाराजा एव उपस्थित जन समुदाय से अनुमति प्राप्त हो जाने पर आर्य जिनसेन ने बाबा ब्रह्मानन्द को अणगार धर्म मे प्रव्रजित किया।

महाराजा चन्द्रसेन ने जिनके हृदय से वैराग्य की लहरे हिलोरे ले रही थी आर्य जिनसेन से निवेदन किया—भत्ते ! मैं भी इस ससार से उबरना चाहता हूँ। ये बाबा ब्रह्मानन्द जी तो स्वतन्त्र थे इसलिए इन्होने तत्काल प्रव्रज्या स्वीकार कर ली। पर मुझे तो अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन भी करना पडेगा। अत मेरा सानुरोध निवेदन है कि मैं राज्य की समुचित व्यवस्था कर शीघ्र ही आपके श्री चरणों मे उपस्थित होने की मेरी भावना है। इसलिए आप चम्पानगरी को भी पावन करने की महत्ती कृपा करे।

महाराजा चन्द्रसेन अपनी पहली महारानी, आनन्दसेन, विश्वसुन्दरी, चम्पकमाला, शीलावती आदि सभी के साथ चम्पानगरी के लिए प्रस्थान करते हैं। स्वय के पहुँचने के पूर्व जनता को पहुँचने के आदेश देते हैं। साथ ही चम्पा को नई हवेली की तरह सजाने की आज्ञा भी प्रसारित करते हैं। तदनुसार चम्पा को सजाया सवारा गया।

महाराजा के पहुँचने पर भव्य समारोह के साथ चम्पा मे प्रवेश करवाया।

महाराजा ने राजसभा मे प्रवेश कर सिहासन पर आरूढ होते ही आनन्दसेन को अपना उत्तराधिकारी बनाने की घोषणा की। साथ ही शीघ्र राज्याभिषेक कर स्वय के दीक्षित होने की भावना भी व्यक्त की।

चम्पानगरी मे आज सौभाग्य की शहनाईयॉ बज रही हैं। चारो तरफ मनुष्यो मे खुशहाली नजर आ रही थी। मानो घर—घर मे मगल कार्य हो रहा हो। वस्तुत प्रत्येक के लिए मगल कार्य होने जा रहे थे। वह यह है कि—आज महाराजा चन्द्रसेन का स्थान युवराज आनन्दसेन ग्रहण कर रहे थे। यानी

आज युवराज का राज्याभिषेक होने जा रहा था। अत घर–घर मगल वाद्य एव गीत लहरियॉं गूज रही थीं। बडे उल्लासमय वातावरण के अन्दर शुभ मुहूर्त में आनन्दसेन को चम्पानगरी का उत्तरदायित्व सौंप दिया गया। महाराजा चन्द्रसेन की वैराग्य भावना अब द्रुतगति से हिलौरे ले रही थी। वे सत महात्माओं का इन्तजार कर रहे थे।

एकदा वे धर्म जागरण करते हुए पिछली रात्रि के समय चिन्तन करने लगे व वह नगर, पुर पाटन धन्य है जहा सर्वज्ञ सर्वदर्शी अरिहत अथवा भावितात्मा अणगार भगवन्तो का विचरण हो रहा हो। वे राजा, मन्त्री, सेठ, साहूकार, तलवर माडविक धन्य हैं जो वीतराग वाणी को श्रवण करते हो, तथा वे तो धन्य–धन्य हैं ही जो उस वीतराग वाणी को अपने जीवन में साकार रूप देते हो। यदि अर्हंत महाप्रभु या उनके आज्ञानुवर्ती अणगार भगवन्तो का यहा पर्दापण हो जाय तो मैं भी ससार से उपरत हो, उनकी चरण शरण कर वीतराग मार्ग का अनुशरण करू।

सूर्योदय के पश्चात् वे दैनिक कार्य से निवृत्त हुए ही थे कि उद्यान रक्षक द्वारा आर्य जिनसेन का सपरिवार चम्पानगरी के उद्यान मे पर्दापण के समाचार मिले। महाराजा को अत्यन्त आल्हाद हुआ।

महाराजा सपरिवार आर्य जिनसेन के दर्शनार्थ पहुँचे। नव अभिषिक्त महाराजा आनन्दसेन भी आर्य जिनसेन के चरणो मे समक्ति पहुँच पर्युपासना करने लगे।

आर्य जिनसेन ने मानव जीवन को क्षण भगुर बतलाते हुए कहा–हे भव्य प्राणियो, यह मानव जीवन अत्यन्त दुर्लभता से मिलता है। अनन्त–अनन्त पुण्य कर्मो के सयोग से प्राप्त यह मानव का चोला भी कुछ अवधि के लिए ही है। जैसे ओस का बिन्दु कुशाग्र पर कुछ समय का ही मेहमान होता है, वैसे ही यह मानव जीवन सावधि तक ही टिकने वाला है। समय रहते जो सावधान हो जाता है, विषय भोगो से उपरत हो जाता है उसी का जीवन धन्य–धन्य होता है। अन्यथा यह आत्मा इस ससार समुद्र मे पुन निमज्जित हो जाती है। अत भव्य प्राणियो को पानी के पहले पाल बाधने की उक्ति को चरितार्थ कर बुद्धिमानी का परिचय देना चाहिये आदि।

आर्य जिनसेन का उद्बोधन क्या था मानो महाराजा चन्द्रसेन की भावना का ही प्रवाह चल रहा हों। प्रवचन की परिसमाप्ति के साथ ही महाराजा उठ खडे हुए और कहने लगे–भगवान् ! 'मैं इस ससार सागर की

विषयरूपी आग से झुलसता रहा हूँ। में इस आग से बचने के लिए वीतराग वाणी रूपी सलील का आश्रय चाहता हूँ। इसलिए मुझे अपनी शरण मे लेकर कृतार्थ करे।

महाराजा के साथ तेरहो महारानियो एव राजकुमारी चम्पकमाला एव अन्य कई मन्त्री, सेठ, सभासद आदि जैन भागवती प्रव्रज्या ग्रहण करने को तत्परित हुए।

महाराजा आनन्दसेन ने सबका भव्य निष्क्रमण महोत्सव मनाया। हजारो हजार मानवो से परिवृत हो, महाराजा चन्द्रसेन आदि मुमुक्षु आत्माए आर्य जिनसेन ने यथाविधि सबको सर्व विरति चारित्र स्वीकार करवाया। नवदीक्षित श्रमणियो को महाश्रमणी सोमवती ने अणगार धर्म की शिक्षा दी।

चारित्र स्वीकार कर गुरुचरणो मे रहकर उसका यथा विधि पालन कर महाराजा चन्द्रसेन आदि ने जीवन का श्रेष्ठ विकास सम्पादित किया। महाराजा आनन्दसेन ने श्रावक व्रतो को स्वीकार करते हुए पूछा–भते ! मैं श्रमण जीवन स्वीकार कर पाऊगा या नही ?

हे अखण्ड सोभागी ! तुम इस जीवन मे चारित्र धर्म स्वीकार करोगे पर अभी तुम्हारे कुछ भोगावली कर्मो का उदय भाव चल रहा है अत वे जब क्षय हो जायेगे तो शीलावती की कुक्षी से जन्म लेने वाले कुमार रत्नो का यथा योग्य लालन–पालन कर उनका राज्याभिषेक कर तुम दोनो वीतरागता की ओर कदम बढाओगे और यथा समय अपने जीवन मे चरम लक्ष्य प्राप्त करोगे।

